सिद्धार्थ

[शांतिके अग्रदूत महाश्रमण गौतम बुद्ध की गवेषणात्मक जीवनी, बौद्ध दर्शन और वाङ्मय सहित]

लेखक

प्रो० राधाकृष्ण चौधरी एम्० ए०

गणेशदत्त कालेज

बेगूसराय

प्रकाशक

अभिनव ग्रन्थागार

पटना-४

मुद्रक—श्री महादेव लाल दास, सिद्धार्थ प्रेस पटना-३

आमुख

प्रस्तुत पुस्तकमें विश्वके सर्वश्रेष्ठ महापुरुष सिद्धार्थ गौतम
जीवन-यात्रा पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डालने का प्रयत्न
ा गया है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी में आज ऐसी पुस्तकों की
श्यकता बढ़ गई है क्योंकि जब तक हम अपनी भाषा को
न्नत नहीं करेंगे तब तक विश्वसाहित्य की अभिरुचि इस
नहीं बढ़ेगी। विदेशी भाषाओं में सिद्धार्थ के जीवन पर
ानी पुस्तकें हैं, उस ढंगकी आज एक भी पुस्तक हमारी राष्ट्र
भाषा में नहीं है। ऐसे महापुरुष पर, जिन्होंने विश्वके तृतीयांश
को अपने विचार, धर्म एवं दर्शन से प्रभावित किया है,
राष्ट्र-भाषा में एक सुन्दर ग्रन्थकी आवश्यकता थी। उनके
जीवन दर्शन के मूल तत्वों को समझना आज हमारा पुनीत
कर्तव्य है। उनके पद-चिह्नों पर चलकर ही आज हम लोग इस
्रत मानव समाज को सुख और शान्ति के पथपर ले जा सकते
। उपरोक्त विचारों से प्रेरित होकर ही मैंने सिद्धार्थ-गौतमके
जीवन-चरित्र पर लिखने की धृष्टता की है। बौद्ध-उपदेश के
रे तत्वोंको समझनेके लिये धम्मपदका अध्ययन आवश्यक है।
तः पाठकों की सुविधा के लिये परिशिष्ट में सम्पूर्ण धम्मपद
से बौद्ध धर्म की गीता कह सकते हैं, का गद्यानुवाद किया
या है। धम्मपद बुद्ध की उपयुक्त वाणी एवं उनके उपदेश से
पूर्ण हैं। इस तुच्छ प्रयास में मुझे कहाँ तक सफलता मिली
इसका निर्णय पाठक ही कर सकेंगे।

शीघ्रता में लिखे जाने के कारण पुस्तक में कुछ त्रुटियों का
ना आवश्यक है। समयाभाव के कारण यथोचित सुधार न
सका अतः जो कुछ भी त्रुटियाँ रह गई है उसके लिये लेखक
्षमाप्रार्थी है। सहायक पुस्तकों, ग्रन्थों और अन्यान्य साधनों
सूची प्रत्येक पृष्ठ के नीचे की टीका में दे दी गई है जिससे,

पाठक आवश्यकता पड़नेपर मौलिक ग्रन्थों का व्यवहार कर सकें। यही कारण है कि सहायक-पुस्तकों की अलग सूची नहीं दी गई है। जिस भाषा में जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनसे ही सहायता ली गई है और मूल-ग्रन्थों के लिये अंग्रेजी, हिन्दी, और बंगला अनुवादोंका भी आश्रय लिया गया है। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्री, पाली और संस्कृत ग्रन्थों से भी सहायता ली है। जिन लेखकों की पुस्तकों से सहायता मिली है, मैं उन सब का आभारी हूँ। पुस्तक लिखने में मुझे सुप्रसिद्ध बौद्ध-विद्वान श्री नागार्जुन जी से विशेष प्रोत्साहन मिला है। इसमें उन्होंने मेरी पूरी सहायता की है। श्रीमती इन्दुलेखा देवी एम. ए. ने बंगला पुस्तकों से मेरी पूरी सहायता की है और समय-समयपर पांडुलिपि पढ़ी है तथा मुझे अनेकानेक सुझाव देकर कृतार्थ किया है। प्रो. राम शरण शर्मा एम.ए. ने भी मेरी पूरी सहायता की है। पाण्डुलिपि तैयार करने में मेरे शिष्य श्री भुवनेश्वरप्रसादसिंह ने मेरी काफी सहायता की है। उन सबको धन्यवाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता। मैं अपनी पत्नी का भी विशेष आभारी हूँ क्योंकि प्रारम्भ से अन्त तक उसने इस पुस्तक को लिखने में मुझे काफी प्रोत्साहित किया है।

सिद्धार्थ-प्रेस के विद्वान संचालक एवं सुप्रसिद्ध लेखक श्री भोला लाल दासजी का मैं आभारी हूँ क्योंकि उनकी प्रेरणा से ही यह पुस्तक लिखी गई है। कठिन परिस्थितियोंके बावजूद भी उन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन का भार अपने ऊपर लेकर मेरा बड़ा उपकार किया है। उनके इस प्रयास के लिये मैं उन्हें [वि]शेष धन्यवाद देता हूँ।

खी पूर्णिमा } राधाकृष्ण चौधरी

प्रकाशन सम्बन्धी वक्तव्य

सिद्धार्थ-प्रेस की स्थापना जब मेरे आत्मज श्रीजगदीशप्रसाद कर्ण के द्वारा १९४९ ई० की पहली दिसम्बरको हुई तब से ही हमारी आन्तरिक इच्छा रहती आई कि हम विश्व-शान्ति के अग्रदूत, सत्य प्रेम और अहिंसा के अवतार, संसारको विश्व-बन्धुत्व का सर्वप्रथम पाठ पढ़ाने वाले महाश्रमण सिद्धार्थकी प्रामाणिक और यथासंभव पूर्ण जीवनी प्रकाशित करें। इसी अभिप्रायसे हमने सिंहल और तिब्बत आदि बौद्ध देशों के पर्यटक, पाली-संस्कृतके बौद्धवाङ्मयके विशेषज्ञ, हिन्दी एवं मैथिली के प्रसिद्ध एवं प्रतिभाशाली जनवादी कवि तथा लेखक श्रीनागार्जुनजी से एक ऐसी पुस्तक लिखने का आग्रह किया। उन्होंने कुछ सामग्री इकठी भी की परन्तु पूर्व स्वीकृत व्यस्तताके कारण वे इस कार्य में हाथ नहीं डाल सके। इसी बीच प्रस्तुत लेखक से मुझे इस सम्बन्ध में बातें हुई। वे इतिहास के प्रकांड विद्वान ही नहीं बल्कि अपनी गवेषणाओं और मौलिक रचनाओंके लिये काफी ख्याति भी प्राप्त कर चुके हैं। इस विषय में उनका उत्साह सचमुच प्रशंसनीय है। उन्होंने पुस्तक लिखने का भार स्वयं उठा लिया। पीछे नागार्जुनजीने भी अपनी इकठी की हुई सामग्री देकर उन्हीं को मनोनीत किया। सुतरां प्रोफेसर साहब ने पुस्तक लिख कर कुछ ही महीनों में मेरे पास भेज दी।

कितने कारणों से हम इसका प्रकाशन उसी समय नहीं कर रुके। हमने देखा, पुस्तक साहित्यिक रचना की अपेक्षा ऐतिहासिक निबंध के रूपमें प्रस्तुत हुई है। श्री युत नागार्जुन जी की सम्मति भी कुछ इसी प्रकार की थी अतः लेखक के परामर्शानुसार हमने नागार्जुन जी

से इसे आद्योपांत देखने एवं इसे साहित्यिक रूप देने का आग्रह किया। लेखक से मिलकर और इसे आद्योपांत पढ़कर उन्होंने भाषा- सम्बन्धी सुधार कर दिये। फिर भी इसके प्रकाशनमे कई कारणों से विलम्ब हुआ।

उधर लेखक महोदय बार बार प्रकाशन के लिये लिख रहे थे। उनको अधिक प्रतीक्षा में रखना उचित नहीं जान पड़ा, प्रकाशित करना ही अनिवार्य देख पड़ा। बीच बीच में जो उनसे पत्र व्यवहार हुआ तथा भेंट होने पर बातें हुईं, उससे लेखक ने मुझे भी यथेच्छ अधिकार इसके सम्पादन के सम्बन्ध में दिया। धम्मपद के सम्बन्ध में उनसे पहले भी राय हो चुकी थी कि उसके कई संस्करण हिन्दी निकल चुके हैं, अतः इस पुस्तक के परिशिष्ट रूप में उसे छापने आवश्यकता नहीं है। शेष अंशों में हमने इतनी कतरव्योंत अवश्य की है कि जातक कथाओं को एकदम छोड़ दिया है क्योंकि उन्हें सिद्धार्थकी प्रस्तुत जीवनी से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे काल्पनिक हैं: लेखकने जिस प्रकार पुस्तक को ऐतिहासिक तथ्यों पर ही विशेषतः आधारित किया है, उस विशेषता की भी इस में हानि होती और शायद यह बात लेखक की अपनी सरुचि के विरुद्ध भी होती। इसके अतिरिक्त शिष्य सम्बन्धी कथाओं को भी अन्यान्य कथाओं के साथ ही कर दिया गया है, जिससे उस अध्याय की सार्थकता और भी बढ़ जाए। कुछ ऐसी कथायें जिनकी चर्चा दूसरे स्थल पर हो चुकी थी या जो उतनी उपयोगी नहीं थीं छोड़ दी गई हैं एवं कुछ को संक्षिप्त कर दिया गया है, मेरे विचार में इससे पुस्तक की सरसता में बट्टा नहीं लगने पायगा। सारे सम्पादन का काम भी शीघ्रता के कारण मुझे ही करना पड़ा है इसलिये इसकी कुल त्रुटियों की जिम्मेदारी अब मेरे ही ऊपर है। हाँ, संयोगवश नागार्जुन जी भी इन दिनों पटनें ही हैं, अंतः उनकी सम्मति भी इसमें ली गई है।

यथार्थ पूछा जाय तो सिद्धार्थका जीवन चरित्र समुद्र जैसा अगाध है। कोई उसकी थाह नहीं पा सकता। फिर भी जो जितना गहरा पैठ सकेगा, उसे उतने ही रत्नों की उपलब्धि होगी। इस दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि लेखक महोदय ने मूल एवं अनुवाद के आधार ग्रन्थों में काफी परिश्रम किया है और उन्होंने उनके जीवन सम्बन्धी प्रायः सभी विषयों का समावेश इस पुस्तक में वैज्ञानिक ढंग से कर दिया है। इसलिये कितनी बातें जो पहले अनुश्रुतियों और परम्पराओं के अनुसार भली तथा आकर्षक प्रतीत होती थीं, ऐतिहासिक विवेचन के प्रकाशमें निराधार, अप्रतिभ और संदेहास्पद देख पड़ने लगी हैं। इससे पुस्तककी रोचकता भले ही घट जाय किन्तु उसका महत्व कम नहीं हो सकता। स्मरण रखना चाहिये कि किसी कपोल-कल्पना या अंधभक्ति से हम सिद्धार्थ के व्यक्तित्वको ऊँचा उठाने के बदले विकृत ही करेंगे। प्रत्यक्ष भी है कि हिन्दू पंडितोंने उन्हें विष्णु के दशावतारमें सम्मिलित कर न केवल उनको अप्रतिष्ठा ही की वरन् उनके धर्म को भीभारतवर्ष में लुप्तप्राय कर दिया। वे राम कृष्ण जैसे प्रागैतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं। प्रत्युत् भारतवर्ष का इतिहास उनसे ही निश्चित ऐतिहासिक युग में पदार्पण करता है। इसलिये आवश्यकता है कि उनके जीवन सम्बन्ध को प्रत्येक घटना की छानबीन ऐतिहासिक ढंग से की जाय। दुर्भाग्यवश अबतक उनकी जितनी भी जीवनियाँ हिन्दी में उपलब्ध हैं, साहित्य की दृष्टि से रोचक होने पर भी इस दृष्टि से समयोपयोगी नहीं है। यद्यपि इसमें भी अनेक कथानकों का सहारा लिया गया है फिर भी उनके पारस्परिक विरोधोंका उल्लेख करके अनुसंधान का द्वार उन्मुक्त कर दिया गया है और विशेष अध्ययनके ‹ उनका हवाला दे दिया गया है। लेखक महोदय के ऐसा हमें इसे जैसा चाहिये वैसा होने का संतोष नहीं है, दावा तो दूर की बात है। हाँ, हम इसे और भी अधिक उपयोगी बनाने के प्रयत्न में लगे रहेंगे।

फिर भी यह पाठकों को नई प्रेरणा देगी, इसमें सन्देह नहीं है।

महात्मा सिद्धार्थकी जीवनीसे आज का विश्व सचमुच नई प्रेरणा ले सकता है। महात्मा गांधीने सत्य, अहिंसा और प्रेम का जो संदेश संसार को आये दिन दिया है, वह इसी अमर ज्योतिका प्राचीन प्रवाह है। बुद्धने पहले पहल मानव जातिको सिखलाया कि घृणा अथवा द्वेष का अंत द्वेषसे नहीं होता, प्रेम से ही उसका अंत होता है। यही विश्व-बन्धुत्व का मूलाधार है। बुद्धके उपदेशों को यद्यपि 'धर्म' विशेष का नाम दिया गया है फिर भी बुद्धने कभी उस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार नहीं किया। संसार की स्वाभाविक घटनाओं को ही बुद्धने 'धर्म' कहा है। इसे धर्मों का धर्म भले ही कहा जा सकता है। इनके उपदेशों का पालन साधारण धर्म की नाईं किसी भी धर्म का आदमी कर सकता है। इसीसे व्यक्तियों, जातियों और राष्ट्रों का पारस्परिक वैमनस्य मिट सकता है। यह ठीक है कि जनसाधारण की स्वाभाविक प्रवृत्ति के प्रतिकूल उन्होंने नितांत सन्यासकी शिक्षा दी किन्तु वह उन भिक्षुओं के लिये ही विहित है जिन्हें अपने स्वार्थ से ऊपर उठाकर मानवमात्र या जीव मात्रके कल्याण में लगना उनका अभीष्ट था। कोई भी व्यक्ति जबतक निजी लौकैषणा का सर्वथा परित्याग नहीं करता, अखंड ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करता है, तबतक संसार का कल्याण नहीं कर सकता है, बहुजनसुखाय, बहुजन हिताय, ऐसे सच्चे लोक सेवकों की आवश्यकता भी अनिवार्य ही है चाहे उनकी संख्या उंगली पर गनने लायक क्यों न हो। शेष बातें तो बुद्ध की ऐसी ही हैं जो मानवको केवल मानव बनाने वाली हैं, जिनकी आवश्यकता आज और भी अधिक है।

जगत, जीव और परमात्माको लेकर ही तो विश्व में इतने मत मतान्तर हैं, इन्हीं के कारण आज भी कितनी बर्बादियाँ और संहारलीलाएँ हो

रही हैं। वैदिक आर्य भलेही किसी विश्व-व्यापी चेतनशक्ति में विश्वास करते हों और अपने देवोंको उसीका प्रतीक मानते हों, किन्तु उनके देवगण सवितृ, अग्नि, आकाश, वायु, वरुण, इन्द्र आदि सभी प्रत्यक्ष थे। ऐसा विदित होता है, मानो उपास्य और उपासक आमने-सामने बैठा हो और उनमें प्रत्यक्ष आदान-प्रदान होता हो। किन्तु उपनिषदों और आरण्यकों में जब आत्मा, परमात्मा एवं जगत् की 'यत्र वाचा निवर्तन्ते मनसा अप्राप्य स इ' वाली सूक्ष्म व्याख्या होने लगी और वैदिक कर्मकाडों को गौण बतलाया जाने लगा तो प्रत्यक्षसे परोक्ष को ही अधिक प्रधानता मिली। यद्यपि इस विषय का विशेष विश्लेषन यहाँ नहीं किया जा सकता, तथापि इतना कहना आवश्यक है कि एक ओर वैदिक यज्ञ-याजनों की स्वार्थ-परता और दूसरी ओर उपनिषदों की कोरी तार्किकता मानवता को विनाश की ओर ले जा रही थी। इसी विचित्र परिस्थितिमें बुद्धदेव का आविर्भाव हुआ। हम इस पुस्तक में सर्वत्र और विशेषतः दशवें अध्याय में देखेंगे कि बुद्धने मध्यमार्ग का अवलम्बन किया।

उन्होंने सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, परोपकार, सहानुभूति, निःस्वार्थता आदि की शिक्षा देकर लोगों को वास्तविक कर्म की ओर प्रेरित किया और इस प्रकार मानव हृदयको कोरे तर्कवाद एवं स्वार्थ के पंजों से छुड़ाकर भावुकता से ओत-प्रोत कर दिया। ज्ञानके क्षेत्रमें भी उन्होंने मध्य मार्गकाही अवलम्बन किया। लोक-परलोक आत्मा परमात्मा, आदि के आद्यन्तकी समीक्षा न कर उन्होंने प्रत्यक्ष सत्यके ऊपरही अधिक जोर दिया। "नादत्ते कस्यचित् पापम् न चैव सुकृत विभुः'— अर्थात् परमात्मा किसी का पाप या पुण्य नहीं लेता, इस भगवद् वाक्य को उन्होंने नहीं माना, वरन् ईश्वर या ब्रह्म की इसी बिना पर उन्होंने उपेक्षा कर दी और उद्धरेदात्मनात्मान् अपनी आत्माका उद्धार आप ही करो का सिद्धान्त स्वीकृत किया।

आत्माको उन्होंने कोई नित्य या ध्रुव वस्तु नहीं माना, फिर भी उसमें चार्वाकों की उच्छृंखलता नहीं है, बल्कि कर्म सिद्धान्तके अनुसार अच्छे और बुरे कर्मोंके कारण उसका पुनर्जन्म मानकर नैतिकताके स्तर को और भी ऊँचा किया। सचमुच यह आत्मनिर्भरता और पौरुषकी पराकाष्ठा है कि बिना किसी अलौकिक दिव्य शक्ति ईश्वर या ब्रह्म और उसका अविनश्वर अंश आत्मशक्तिआदि का सहारा लिये उन्होंने मानव मात्र को अपने वास्तविक दुःखों से छुटकारा पाने का मार्ग बतलाया। उन्होंने स्पष्ट कहा मानव जीवन में दुःख है उससे छूटने का उपाय है और वह मनुष्य के साध्य है।

सिद्धार्थ के इन आर्य सत्यों को समझने में यदि इस पुस्तकसे थोड़ी भी सहायता मिली तो लेखक और प्रकाशक अपने प्रयास को सफल समझेंगे। हाँ, पुस्तक कुछ शीघ्रता में छपी है, इसलिये मुद्रण आदि की त्रुटियों के लिये हम पाठकों से क्षमा याचना करते हैं।

पटना
विजया दशमी
२०१०



निवेदक :—
भोलालाल दास
व्यवस्थापक
अभिनव ग्रंथागार

"वसुधैव कुटुम्बकम्"

विश्व के उन सभी महात्माओं को,
जिन्होंने विश्व-शान्ति एवं विश्व-
बन्धुत्व की स्थापना के लिये
अपना प्राणदान दिया,
सादर समर्पित

—लेखक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय	
बौद्धकालके पूर्व भारतीय संस्कृतिका	
सिंहावलोकन	१
द्वितीय अध्याय	
सिद्धार्थ-सम्बन्धी ऐतिहासिक साधन :—	
जन्म और परिवार	१३
इस सम्बन्धकी कुछ बातें	२७
तृतीय अध्याय	
बचपन और तरुणाई	३३
चतुर्थ अध्याय	
महाभिनिष्क्रमण और ज्ञानबोध	४२
पंचम अध्याय	
भ्रमण और धर्म प्रचार :—	
उपदेश प्रदान	६७
भ्रमण	८७
षष्ठ अध्याय	
आर्य-अष्टांगिक मार्ग और निर्वाणकी व्याख्या :—	
आर्य अष्टांगिक मार्ग	९५
निर्वाणकी व्याख्या	१०५
सप्तम अध्याय	
बुद्धकी कथायें	११४

अष्टम अध्याय

भिक्षु-संघ, उनके नियम और बुद्धका महापरिनिर्वाण :

संघ और उसके नियम १४७
बुद्धका महापरिनिर्वाण १६७

नवम अध्याय

प्रकीर्ण—

बुद्धकी लोकसेवा १७१
बुद्धकी सौजन्य-कुशलता १७५
बुद्ध और महावीर १७७
बुद्ध और वैशाली १८०
बुद्ध और राजन्य वर्ग १८५
बौद्ध धर्मका प्रचार और इतिहास १८७

दशम अध्याय

बौद्ध दर्शन २०९

एकादश अध्याय

बौद्ध-साहित्य २२४
परिशिष्ट (क) श्रावस्ती और जेतवन २३४
परिशिष्ट (ख) भारतमें बौद्ध खंडहर एवं प्रसिद्ध स्थान २४०

चित्र परिचय

आवरण पृष्ठका चित्र सरकारी पुरातत्व विभाग, पटनाकी आज्ञासे छपा है जिसमें बोधगयाका मंदिर और नालन्दामें मिली एक प्रस्तर बौद्ध मूर्तिका ऊपरी भाग सम्मिलित है।

 —प्रकाशक

प्रथम अध्याय

बौद्ध-कालके पूर्व भारतीय-संस्कृतिका सिंहावलोकन

प्राचीन कालसे ही हमारा देश संस्कृतियोंका केन्द्र रहा है। अन्य देशोंकी तुलनामें भारतवर्ष ही एक ऐसा देश देखा जाता है जहाँ विभिन्न राजनीतिक उथल-पुथलके बावजूद भी संस्कृति अमर रही है और जहाँसे विश्वको सांस्कृतिक आलोकका दर्शन बराबर होता रहा है। भूगर्भ-वेत्ताओंकी खोजसे हमें यह ज्ञात होता है कि हमारे देशका प्रायद्वीपीय भाग सबसे प्राचीन है और लाखों वर्ष पूर्व उसका सम्बन्ध दक्षिणी आफ्रिका और आस्ट्रेलियासे स्थापित था। ऐतिहासिक सामग्रीके अभावके कारण यहाँके आदि-निवासियोंके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता है किन्तु पुरातत्त्व-वेत्ता-प्राप्त सामग्रीके आधारपर उस कालकी सभ्यताको प्रस्तर-युग कहते हैं।

आवश्यकता विकासकी जननी कहलाती है। सदियों तक अभ्यस्त होनेके बाद मनुष्यों ने अस्त्र इत्यादि के रूपमें सुधार किया। मिट्टीका बरतन बनाया जाने लगा और मृतकों का सम्मान शुरू हुआ। इस प्रकार एक नवीन प्रस्तर युगका अभ्युदय हुआ। इस युग में साधारणतः लकड़ीके औजारोंका

प्रयोग होता था। लोग पत्ते, छाल और खाल इत्यादि से अपना तन ढँकते थे। आग पैदा करनेकी कलासे भी वे लोग अच्छी तरह परिचित थे। धार्मिक भावनाका सम्भवतः उनमें उदय नहीं हुआ था—कम से कम प्रारंम्भिक काल में। अपने मृतकोंको हवा-पानी में नष्ट होने या जंगली जीव-जन्तुओंका भोजन बननेके लिये वे यों ही खुला छोड़ देते थे। उनकी इस प्रथाका अवशेष बादके ऐतिहासिक कालमें भी पाया जाता है [१]। नवीन या उत्तर-प्रस्तर-काल के अवशेषों का पता बेलारी जिलामें श्री-ब्रूसफूटने लगाया है। उस कालके मिट्टीके बरतन भी प्राप्त हुए हैं। वे लोग एक जगह बस कर जीवन व्यतीत करते थे और झोपड़ियाँ बनाकर रहते थे। उन्होंने पशु-पालन भी सीख लिया था। रूई, कंघी, गले के आभूषण इत्यादि का भी व्यवहार होने लगा था। हड्डियों और शंखसे आभूषणका निर्माण होता था। वे लोग पत्थलों और मृतात्माओं की पूजा करते थे। जन्म, नाम-करण, विवाह और मृत्यु-सम्बन्धी प्रथायें चल पड़ी थीं। मानसिक शक्ति द्वारा शरीरके नियंत्रण और प्रकृतिकी अदृश्य शक्तियोंके सम्मुख मानवकी परवशताने ही उन विभिन्न संस्कारों तथा रीति-रिवाजों का जन्म दिया।[२]

द्रविड़ लोग साहसी, योद्धा और व्यापारीके रूपमें प्रसिद्ध थे। वे व्यवस्था और अनुशासनके प्रेमी थे और प्राचीन कालमें ही उन्होंने राजतन्त्रकी स्थापनामें सफलता प्राप्त कर ली थी। उनकी धार्मिक भावनायें अपरिष्कृत थीं। वे शिश्न और शेषकी पूजा करते थे। उन लोगोंमें जाति-प्रथा नहीं थी और गुरू आदि द्वारा धर्म

१—रंगाचार्य "प्रा हिस्टारिक इन्डिया" पृ० ५४

२—वहीं—परिच्छेद

शिक्षाका कोई आयोजन नहीं था। इनकी सभ्यताका प्रभाव आर्योंपर काफी पड़ा था। धर्म और दर्शनके सम्बन्धमें आर्योंके विचार ज्यादा परिष्कृत थे। आर्य और द्रविड़ोंका यहाँ अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। हमारे इतिहासमें इन दोनों का इतना पूरा सामञ्जस्य हो गया है कि आज उन दोनोंको अलग नहीं किया जा सकता है।

आरम्भिक मनुष्यका गुजारा शिकारसे होता था। उसके बाद पशु-पालनका समय आया और फिर धीरे-धीरे मानव-समुदाय खेतीकी ओर प्रवृत्त हुआ। कृषि-युगमें स्थावर सम्पत्तिका उदय हुआ और इसके फलस्वरूप समाजमें स्थिरता आई। इसके बाद ही राज्यका आविर्भाव हुआ और सभ्यता का विकास। आर्योंके बीच विवाह और पितृ-मूलक-संस्था स्थापित हो चुकी थी। वैदिक समाजका संघटन कबीलोंके रूपमें था जिन्हें लोग जन[१] कहते थे। एक जनकी समूची जनता विश[२] कहलाती थी। जन या विशःका ही राजा होता और राजनैतिक रूपसे संगठित विशः राष्ट्र कहलाता।[३]

आर्योंकी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक परिवारपर आधारित थी अतः उनकी वंश-परंपरा पितासे चलती थी। राजा तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति एकसे अधिक भी विवाह करते थे। पितृ मूलक परिवार होनेपर भी, माता से अनेक बार अपना गोत्र खोजना और बहुपतिक विवाह आदिकी प्राचीन प्रथायें मातृ-मूलक समाजके अवशेषों और

१—अथर्ववेद १२, १, ४५,

२—वहीं १५, ६, १-२

३—ऋग्वेद, १०, १७३, १, १०, १७४, ५

स्मारक चिन्होंके रूपमें उनमें चली आतीं थीं या कभी-कभी प्रगट हो जाती थीं। विवाहकी संस्थामें भी शिथिलता थी। अनुश्रुतिसे यह स्पष्ट है कि दीर्घतमा ऋषिके समय तक विवाह-पद्धति स्थिर न हुई थी[४]। स्त्रियोंमें आचार-विचार का ध्यान रखा जाता था। उनकी नैतिक शक्ति बहुत ऊँची थी। पुरुष-संतानको ऊँचा स्थान दिया जाता था। विवाह संस्कार जीवन का अनिवार्य अंग था। संयुक्त परिवारकी प्रथा स्थापित हो चुकी थी। बाल-विवाहकी प्रथा नहीं थी।

आर्योंका धार्मिक जीवन प्रकृतिके शुभ रूपोंकी उपासना पर आधारित था। प्रकृतिके विभिन्न उपादानोंको विभिन्न नाम दिये गये थे और इनकी उपासनासे शुरू करके उन्होंने एक विश्वव्यापी चेतनाकी भी कल्पना की थी। वैदिक देवता प्रकृतिके कल्पनात्मक मूर्त मानव थे जिसमें धार्मिक प्रवृत्तिके साथ-साथ काव्य-कल्पनाका भी बहुत अंश था। कल्पना मधुर एवं दिव्य थी। आर्य-देवता स्तुति और आहुतिसे तृप्त होते थे और उपासकको वर देते थे। देवता और उपासकके बीच बहुत अच्छा सम्बन्ध था[५]। भक्ति-भावका समावेश वैदिक धर्ममें नहीं मिलता है। वैदिक देवताओंकी गणना द्यावापृथिवीसे शुरू होती है। द्यौः अथवा आकाशका आवाहन पृथ्वीके साथ होता था। वरुणका मित्रके साथ होता था; इन्द्र, सूर्य और सवित्री, अग्नि, वायु, मरुत्, रुद्र और यम—ये सभी प्रकृतिके विभिन्न रूपोंके प्रतीक थे और सभीको एक विश्व-व्यापी चेतनाका अंग माना जाता था।

४—महाभारत, १, १०४, ३४-३६

५—अथर्ववेद २०, ६, १

ऋग्वेदमें ऐसी अनेक ऋचाएं हैं, जिनमें इस अखण्ड चेतना का, एक महान स्रष्टाके रूपमें चर्चा मिलती है। सूर्य्यके भिन्न-भिन्न गुणोंसे कई देवताओंकी कल्पना हुई थी। ऊषा प्रभात समय एक सुन्दरी देवीके रूपमें प्रकट होती है। उदय होता हुआ सूर्य ही मित्र है—सौहार्दपूर्ण देवता मनुष्योंको नींदसे उठाता और अपने धन्धेमें जुटाता है[१]। मित्र जैसे सूर्यके तेजका सूचक है, सविता वैसे ही उसकी जीवन-शक्ति का[२]।

प्रकृतिमें जो कुछ घातक और भयंकर है, उसका नेतृत्व रुद्र करता है। वही भूमि और अन्तरिक्षपर अपना आयुध फेंकता है जिनसे गौओं और मानवोंका संहार होता है[३]। वह वैद्योंका वैद्य कहलाता है[४]। यजुर्वेदके शतरुद्रिय-प्रकरणमें रुद्रकी महिमापर विशेष प्रकाश डाला गया है। अग्नि और सोमकी महिमा केवल इन्द्रसे कम है। अग्निके तीन रूप हैं—सूर्य, विद्युत् और अग्नि या मातरिश्वा। देवताओंकी तृप्ति यज्ञमें आहुति या बलि देकर की जाती थी। दूध, घी, अनाज, मांस और सोमरस, इन सभी वस्तुओंकी आहुति देवताओंके लिये दी जाती थी। वैदिक युगमें यज्ञकी प्रधानता रही। आडम्बर बहुत बढ़ जानेपर यज्ञ धनाढ्यों का काम हो गया। वे यज्ञ पुरोहितोंके द्वारा होते थे। उनमें ऋचायें पढ़ी जातीं, साम गाये जाते और अनेक रस्मोंके साथ

१—ऋग्वेद ७, ३६, २

२—अथर्ववेद, १४, २, ३९

३—ऋग्वेद १, ११४, ७, ४६

४—वहीं २, ३३, १३

आहुतियाँ दी जातीं। यज्ञोंके विकासके साथ-साथ पुरोहितों की एक श्रेणी बनती गई। ऋग्वेदसे ब्राह्मणोंके कर्म और पदका हाल मालूम होता है। मंत्रोंमें पुरोहितको दान देने की चर्चा है।

ऋग्वेदमें एक हजारसे अधिक मंत्र हैं। सामवेदमें १५४९ मंत्र हैं और इनमेंसे केवल ७५ को छोड़कर शेष सब ऋग्वेदसे लिये गये हैं। यजुर्वेद का एक चौथाई भाग ऋग्वेद से ही लिया गया है। अथर्व वेदमें ६००० मंत्र हैं किन्तु उसके मंत्रों का पाँचवाँ भाग ऋग्वेदसे लिया गया है। ऋग्वेद आदि कालकी काव्यात्माको प्रस्तुत करता है। प्रारम्भमें यह अव्यवस्थित और असंकलित था और इसमें प्राचीन मंत्र, जादू-टोना, दर्शन-सम्बन्धी मंत्र, धर्म-प्रधान जन-गीत इत्यादि सभी संग्रहीत थे। ऋग्वेदमें पुरोहित वर्गके और अथर्व वेद में जन-साधारणके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले मंत्रोंका बाहुल्य है। वैदिक साहित्यमें तीन श्रेणीके ग्रंथ मिलते हैं—(१) मंत्र, जो शीघ्र ही संकलित होकर चार वेदोंके रूप में परिणत हुए, इन्हें संहिता भी कहते हैं [२] ब्राह्मण जिनमें विभिन्न संस्कारों और पूजा-पद्धतियोंका प्रतिपादन है और उपनिषद जिनमें दार्शनिक तत्वोंकी प्रधानता है तथा [३] सूत्र जिनमें वैदिक प्रथाओं एवं सामाजिक विधि-निषेधों का संकलन है १।

संहिता कालमें पूर्व भारतमें आर्योंका विस्तार हुआ। कुरुक्षेत्र उनके सभी कार्योंका केन्द्र बन गया। बड़े-बड़े राज्यों

१—देखिये—ग्रिसबोल्ड, रिलीजन आफ दि ऋग्वेद,
ब्लूम फील्ड, रिलीजन आफ दि वेद,
मैकडानेल्ड—संस्कृत लिटरेचर,
ग्रिफीथ—हिम्न्स आफ दि ऋग्वेद।

का निर्माण हुआ और इसके फलस्वरूप राजाका अधिकार भी बढ़ने लगा। वैभवकी वृद्धिके साथ-साथ बलि अनुष्ठान भी शुरू हुआ और नये मंत्रोंकी रचना तीव्र गतिसे होने लगी। पूजा-विधिकी रूपरेखा निश्चित कर दी गई और विभिन्न ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें इन्हींका संकलन हुआ। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें मृत्यु और जीवनपर अनेकानेक प्रवचन पाये जाते हैं। इन प्रवचनोंकी रचना ऋषि लोग उन जंगलोंमें करते थे जहां वे तपस्या करते थे इसीलिये ये प्रवचन आरण्यक कहलाते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अन्तिम भाग उपनिषद कहलाते हैं। पंचविंश ब्रह्मण सामवेदके साथ, ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण ऋग्वेद के साथ, तैतरेय ब्राह्मण कृष्ण यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेदके साथ सम्बद्ध है। इन सभी ग्रंथोंके द्वारा 'हमें विश्व-चेतना सम्बन्धी दार्शनिक ज्ञानका पता लगता है। इसके अलावा दो महाकाव्योंका भी उल्लेख आवश्यक है। रामायण और महाभारतका हमारे इतिहासमें महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संहिता-काल तक आते-आते यहाँके आदि निवासी और आर्योंके बीच समन्वय शुरू हुआ जिसके फलस्वरूप पाँच प्रमुख जातियोंका निर्माण हुआ। एकने उत्तरी गंगा और यमुनाके प्रदेशमें अपने राज्यकी स्थापना की। ये लोग कुरु कहलाते थे और हस्तिनापुर इनकी राजधानी थी। गंगासे उत्तरका विस्तृत प्रदेश पाञ्चालोंके हिस्सेमें गया और कांपिल्य इनकी राजधानी था। उत्तर कोसल, विदेह और काशी अलग-अलग केन्द्र बन गये। कृषि और उद्योग-धन्धों के क्षेत्रमें काफी प्रगति हुई एवं कला-कौशलकी उन्नति हुई। धातु-सम्बन्धी ज्ञानका विस्तार हुआ। समाजमें भी हेर-फेर हुए। स्त्रियोंकी स्थितिमें अवनति हुई। पुत्रका जन्म

अधिक सौभाग्य-सूचक समझा जाता था। धार्मिक क्षेत्रमें भी काफी परिवर्तन हुआ। राजसूय और अश्वमेध यज्ञ इसी कालकी देन हैं। नये देवताओं का आरोहण हुआ यहाँ तक कि नाग-पूजा भी होने लगी। पुनर्जन्मके सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ। आत्माको ज्ञानका स्रोत और प्रकाशका स्वरूप माना गया। नक्षत्र-सम्बन्धी ज्ञान का अविष्कार हुआ।

इस प्रकार जो नये ज्ञान उपलब्ध हुए उसे ६ वेदांगोंमें संकलित कर दिया गया। धर्म सूत्रों की रचना हुई और प्रत्येक वर्गके लोगों का कर्त्तव्य निर्धारित हुआ। समाजमें जाति-प्रथाका विकास हुआ और इस युगमें आकर वही प्रथा परिपक्व हो गई। आर्योंमें ही अनेक श्रेणियाँ बन चुकी थीं। जब धार्मिक अनुष्ठानोंकी प्रधानता हुई तब वेदोंके अध्ययन, वेद मंत्रोंकी व्याख्या और अनुष्ठानोंको सम्पन्न करनेके लिये एक विशेष श्रेणी की आविर्भूति हुई और इस श्रेणी को ब्राह्मण कहा गया राजन्या' और क्षत्रियवर्ग भी बिलग हो गया, व्यापारीवर्ग वैश्य श्रेणीमें रखा गया और देशके आदिनिवासी शूद्र श्रेणीमें। कहा गया है कि यह भेद जातिगत नहीं वरन् कर्मगत था किन्तु धीरे-धीरे अभिजात्यकी भावना दृढ़ होती गई। सामाजिक प्रगतिके फलस्वरूप कृषि-व्यापार और अनेक शिल्प-व्यवसायोंकी भिन्नता फूटने तथा अंकुरित होने लगी। इस प्रकार श्रमकी विभिन्नता प्रकट होने लगी।

१—निरुक्त १३, १२, २,—अधस्ताद्रामोऽधस्तात् कृष्णः कस्मात् समान्यादित्यग्निं चित्वा न रामामुपेयात्, रामा रमणायो पेयते न धर्माय कृष्ण जातीयै तस्मात् सामान्यात्।

ईसा पूर्व ६ठीं शताब्दी तक आते-आते हम देखते हैं कि समाजका एक अच्छा खासा ढाँचा प्रस्तुत हो चुका था। सोलह महाजनपदोंका उल्लेख हमें उस समयके साहित्यमें मिलता है। उस कालकी महत्त्वपूर्ण घटनाओंका उल्लेख भी साहित्यमें पाया जाता है। उन घटनाओंमें से एक विदेह की राज्यक्रान्ति है। विदेहका राजा कराल जनक बहुत कामी था, एक कन्या पर आक्रमण करनेके कारण प्रजाने उसे मार डाला[1]। कहा जाता है कि इसके बाद ही वहाँ संघ राज्य स्थापित हुआ[2]। विदेहों और लिच्छिवियोंके पृथक-पृथक संघोंको मिला कर एक नया संघ बना जिसका नाम वृज्जि (वज्जी) गण था। सातवीं शताब्दी तक तो काशी राज्यकी प्रधानता रही किन्तु धीरे-धीरे इसकी सत्ता क्षीण होने लगी। मगधमें बार्हद्रथ वंशका राज्य इसी युगमें समाप्त हो चुका था और शिशुनाग वंश सत्ताधिकारी हुआ। सोलह महाजन-पदों के अलावा और भी कई छोटे-छोटे राष्ट्र थे। कोशलके उत्तर और मल्ल राष्ट्र के पश्चिमोत्तर में आधुनिक नेपाल तराई में अचिरावती (राप्ती) और रोहिणी नदीके बीच शाक्यों का एक छोटासा गण-राष्ट्र था। उसीमें संसारके इतिहास का शायद सर्वश्रेष्ठ महापुरुष सिद्धार्थ प्रकट हुआ। जिस कारण शाक्य राष्ट्रका नाम आज तक प्रसिद्ध है।

प्रारम्भिक बौद्ध-कालमें सामाजिक व्यवस्था वर्णों पर आधारित थी। स्मरण रखना होगा कि वर्ण-व्यवस्थाका

१—अर्थशास्त्र १, ६

२—देखिये, हेमचन्द्र राय चौधुरी—पौलिटिकल हिस्ट्री आफ एन्सियेन्ट इन्डिया द्वि० संस्करण पृ० ५१-५२

विरोध और उसकी अनुपयोगिताको प्रकट करने वाली भावनाएँ अंकुरित हो चुकी थीं। शूद्रों का जीवन बड़ा दुःखमय था। सामाजिक उथल-पुथल शुरू हो गया था। पेशा-परिवर्तनसे जाति परिवर्तन नहीं समझा जाता था। बहुतसे ब्राह्मण शिकारी इत्यादिका काम करने लगे थे। भिन्न-वर्णोंके लोगोंके संघोंका उल्लेख भी मिलता है। जातकों और ब्राह्मण-ग्रंथोंमें ऐसी अनेक कथायें मिलतीं हैं जिनमें राजा और वैश्योंकी घनिष्ठ मित्रताका उल्लेख है और इस मित्रताके फलस्वरूप राजा और वैश्य अपनी सन्तानको एक ही गुरुके यहाँ शिक्षाके लिये भेजते थे। एक साथ खान-पान और वैवाहिक सम्बन्ध तकका उल्लेख भी पाया जाता है[१]। पुत्रको अपने काम चुनने की पूरी स्वतंत्रता थी।

आध्यात्मिक विद्रोहके इस कालमें नये-नये धर्मोंका उदय हुआ। हम देख चुके हैं कि ऋग्वेद-कालमें प्रकृतिकी उपासना प्रचलित थी और इसी उपासनाका स्थान आगे चलकर एक सर्वोपरि चेतनाने ले लिया। इस पर विस्तृत कर्म-काण्डों का भार लदा हुआ था। पुरोहितोंका आधिपत्य स्थापित होनेके बाद देवताओंकी संख्यामें और भी वृद्धि हुई और आदि-निवासियोंके देवताओंका भी समावेश उसमें हुआ। धरती और पर्वतोंके देव-देवियोंकी उपासना होती थी[२]। नाग और गरुड़ शिव या विष्णुके वाहनोंमें सम्मिलित हो गये और ब्राह्मणों द्वारा पूजे जाने लगे। पुरोहितोंके कर्म-काण्ड से मुँह मोड़कर चिन्तन-शील व्यक्ति जंगलोंमें जाकर ध्यान

३—रैवसन द्वारा सम्पादित—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया, भाग १, परिच्छेद ८ पृष्ट २०६

४—रीज डेविज—बुद्धिष्ट इन्डिया

धारणामें लीन होने लगे। ऐसे लोग ध्यान-चिंतन द्वारा उच्च जीवनका उपदेश देते थे। कर्मरत जीवनमें उनके लिये मुक्ति नहीं थी। उनका कथन था कि कर्मका चक्र अज्ञानकी रचना करने वाला था[१]। वैदिक पूजा एक जटिल क्रिया-कलाप बनती जाती थी जिसमें कर्मकाण्डकी लहर एक ओर थी और दूसरी ओर उसके मुकाबलेमें था ज्ञान-काण्ड या तत्वचिन्तन की लहर। किन्तु इससे साधारण जनताका कोई सम्बन्ध नहीं था। जन-साधारणका धार्मिक विश्वास अब भी सुन्दर, सरल और उज्ज्वल था। और इसके अनेक उदाहरण हमें जातकोंमें मिलते हैं। देवताओंकी चमत्कार-शक्तियोंमें विश्वास दृढ़ हो गया था। धार्मिक सुधारकी लहर उठी और उपनिषद् युगमें उसकी पुष्टि हुई। यह बादके सुधारकों की चेष्टाओंसे आगे बढ़ती रही। तीर्थङ्कर पार्श्व नामक एक सुधारक नवीं आठवीं शताब्दी ई० पू०में हुआ। पार्श्वकी मुख्य शिक्षायें थीं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय और उपरिग्रह।

पार्श्व ने जैनधर्म की स्थापना की और महावीर वर्द्धमान ने इसे व्यवस्थितरूप देने में सफलता प्राप्त की। पार्श्वके चार नियमोंमें महावीरने पाँचवाँ नियम जोड़ दिया और वह था—पवित्रता। महावीर चौबीस तीर्थङ्करोंमें से अन्तिम था। अपने जीवनके अन्तिम कालमें उसने[१] 'जिनकी' उपाधि प्राप्त की। जैनधर्मका उद्देश्य था आत्माको भौतिक बन्धनोंसे मुक्त करना और इसके लिये "तीन रत्न" बतलाये गये जो निम्नांकित हैं—(१) सम्यक दर्शन, (२) सम्यक ज्ञान और (३) सम्यक चरित्र। जैन विश्व-चेतनाके वैदिक सिद्धान्तको नहीं मानते। जैनों का विश्वास है कि विश्वमें ऐसा कोई पदार्थ

१—होर्नएले—हिस्ट्री आफ इन्डिया।

नहीं है जिसमें जीव न हो। इसी कारण जैन मांस नहीं खाते और इनमें जो अधिक कट्टर होते हैं, पानी भी छान कर पीते हैं। ये नाक पर बँधे कपड़ों में से छनी हुई वायु की साँस लेते हैं और जब चलते हैं तो अपने आगे का मार्ग चँवर से साफ करते जाते हैं ताकि अनजाने मुँह अथवा नासिका के द्वारा कोई जीव उदरमें न पहुँच जाय, पाँव के नीचे कोई जीव कुचल कर न मर जाय[२]। जैनों की सबसे कठिन तपस्या सँल्लेखन है जिसमें भूखे रहकर अपने शरीर का अन्त किया जाता है। मानवी प्रवञ्चनाका इससे अधिक कटुतम व्यंगकी कल्पना नहीं की जा सकती। जरा कल्पना कीजिए एक नंगी चट्टान की जिस पर क्षीण-काय उपासक स्त्री या पुरुष, मूक-यंत्रणा में, स्वयं अपने आप बुलाई हुई मृत्यु की अन्तिम घड़ीकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस व्यंग पूर्ण दृश्य का सबसे अधिक कटु पहलू यह है कि ये वे लोग हैं जिनका सबसे बड़ा धर्म अहिंसा है—जो किसी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहते हैं[३]।

सिद्धार्थ हमारे जीवन और हमारी संस्कृति में जो परिवर्तन लाये, वह विचार और कर्मकी एक भारी क्रान्ति का परिचायक है। यह विश्वके इतिहासमें एक प्रेरणाके रूपमें रहा। उनकी कार्य-प्रणाली एवं उनके दर्शन को समझनेके लिये हमें उनकी जीवन-घटनासे परिचित होना होगा। सिद्धार्थ का व्यक्तित्व उनके कर्मठ जीवन का ही परिचायक है और उनकी जीवन-घटनाके अध्ययनसे हमें उस समयकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति का वास्तविक पता चलता है।

२—बार्थ—हिस्ट्री आफ रिलिजन्स इन इन्डिया।

३—ल्युइस राइस का कथन—

द्वितीय अध्याय

सिद्धार्थ-सम्बन्धी ऐतिहासिक साधन

जन्म और परिवार

ऐतिहासिक साधनः—विश्वकी सभी प्रमुख धार्मिक प्रवृत्तियोंमें बौद्धधर्मही एक ऐसा धर्म है जो २५०० वर्षोंके राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल के बावजूद भी अपना प्रभाव स्थायी बनाये रख सका है। यह सत्य है कि हम लोग हाल तक भी इस धर्मके उत्थान-पतन के इतिहास पर विशेष ध्यान नहीं देते थे और इस असावधानी के कारण ही इसके बहुत से ऐतिहासिक साधन, जो कि विश्वके कोने-कोने में बिखरे हुए थे, नष्ट हो गये। अशोकके समय में ही यह धर्म विश्व-व्यापी रूपमें स्थापित हो चुका था और तबसे लेकर आज तक इसका यह विश्व-व्यापी रूप ज्यों-का-त्यों रहा। अपने देशमें इसका प्रभाव क्षीण होने पर भी विदेशोंमें इसकी चर्चा होती रही और इसके मानने वाले लोग इसके साहित्य इत्यादि की रक्षा करते रहे। ईसाई लेखकोंमें बुद्धका सर्व प्रथम उल्लेख द्वितीय शताब्दीके अन्तमें सिकन्दरियाके क्लीमेंन्ट के लेखोंमें मिलता है[१] उसके बादके लेखोंमें बुद्धका

---

१ "Those of Indians that obey the precepts of Boutta, whom through exaggeration of his dignity they honour as god" (Clement of Alexandaria) Strom. I, xv, 71.

उल्लेख बराबर मिलता है। अलबरूनीके लेखोंमें भी बुद्ध का उल्लेख आया है[२]। १३ वीं शताब्दीमें लंकामें मार्कोपोलो ने बुद्धका नाम सुना किन्तु मार्कोपोलोका ज्ञान बुद्ध के सम्बन्ध में बड़ा विचित्र और गलत था। वह बुद्ध को लंका के राजा का पुत्र और मूर्ति-पूजा का प्रचारक मानता है[३]। १६६० में नौक्स नामक एक अंग्रेजी जहाजी गिरफ्तार कर लंका में कैद कर रखा गया और वहाँ वह १९ वर्ष तक कैद में रहा। उसने बुद्ध का उल्लेख एक महान ईश्वर के रूप में किया है[४]। इसी प्रकार अन्य युरोपियन लेखकों ने बुद्धको लेकर इतना ज्यादा भ्रम पैदा किया कि ये वास्तविकता से बहुत दूर हट गये। यहाँ तक कि १७९० में बार्थीलेमियु ने तो बुध ग्रह को गौतम-बुद्ध कहकर घोषित किया। किन्तु इस प्रकार सदियों के प्रयत्न के बाद बुद्ध सम्बन्धी वास्तविक ज्ञान और ऐतिहासिक साधनों का पता धीरे-धीरे लगा और उसी के आधार पर बौद्ध इतिहास का निर्माण हुआ। इसका श्रेय पूर्वीय और पाश्चात्य विद्वानोंको है। १९ वीं शताब्दी का अन्त आते-आते विद्वानों को बौद्ध-साहित्य का पता लगने लगा था।

---

२ अलबरूनी, "क्रौनिकल्स आफ ऐनसियेन्ट नेसन्स पृ० १६०

३ मार्कों पोलो— पुस्तक भाग ३, अध्याय १५

४ "a great God, whom they call Buddou, to whom the salvation of souls belongs. Him they believe once to have come upon the earth. And when he was here that he did usually sit under a large shady tree called Bogahah"-(An historical relation of Ceylon)

बौद्ध-साहित्यसे उस कालके इतिहासका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। १९ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में बौद्ध-साहित्य की ओर विद्वानों ध्यान आकर्षित हुआ और पाश्चात्य विद्वानों ने इस काममें काफी हाथ बँटाया। एसियाके साथ सम्पर्क होनेके फलस्वरूप पश्चिमके विद्वानोंको बौद्ध-धर्मसे परिचय प्राप्त हुआ और इसके स्वच्छ विचार और दर्शनसे प्रभावित हो कर उन लोगोंने इसके साहित्यकी खोजके लिये अनवरत परिश्रम किया। इस भगीरथ प्रयत्नमें हंगरीके विद्वान कौरौस और अंग्रेज विद्वान हौगसन (Hodgson) उल्लेखनीय हैं। कौरौस चार वर्षों तक तिब्बतमें रहने के बाद कलकत्ता आया और यहाँ उसे तिब्बतीय बौद्ध धर्म ग्रन्थोंका संग्रह कंजूर और तंजूर, देखने का अवसर प्राप्त हुआ। उन सभी ग्रंथों और तिब्बती साधनों के अधार पर उसने सिद्धार्थ का एक छोटा सा जीवन-चरित्र लिखा। हौगसन महोदयने नेपालमें करीब ४०० संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकोंका संग्रह किया और उन्हें विश्वके विभिन्न पुस्तकालयों को उपहारके रूप में बाँट दिया। पेरिसमें ये पुस्तकें पुरातत्व-वेत्ता बर्नौफ के हाथ पड़ीं। उसने कौरोसके लेख और इन पुस्तकों के आधार पर "भारतवर्षमें बौद्ध-धर्म" नामक एक पुस्तक लिखी। उसने "सद्धर्म पुण्डरीक" का अनुवाद भी किया। तिब्बती साधनों के आधार पर शेफनर (Schiefner) ने बुद्ध के जीवन पर एक पुस्तक लिखी और फौकौक्स (Foucaux) ने भी इस दिशामें उसका अनुसरण किया। बादमें बंगालके रोयाएल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा संस्कृत ग्रंथोंका प्रकाशन शुरू हुआ। १८३६ में जार्ज टरनर ने महावंश प्रकाशित किया और बाद में त्रिपिटक से संकलित

करके उसने बुद्धके वचनों का सम्पादन किया। डेनिश विद्वान फौसबोल (Fausboll) ने १८५४ में 'धम्मपद' प्रकाशित किया और उसके बाद उसने जातकोंका सम्पादन किया। जिसमें बुद्धके पूर्व जन्मकी कथायें हैं। ओल्डेनबर्ग महोदयने 'विनय' का सम्पादन किया और १८८१ में रीजडेविज "नेपाली टेक्स्ट सोसाइटी" की स्थापना की। तिब्बती ग्रंथों के आधार पर रौकहिलने बुद्धके जीवन पर एक पुस्तक लिखी।

पाश्चात्य विद्वानोंके भगीरथ प्रयत्नसे जो लाभ विद्वन्मण्डली को हुआ है, इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। सिद्धार्थके जीवन चरित्र के विषय में अभी बहुत विद्वानों में मतभेद है ही। किन्तु उनके जीवन के वास्तविक निरूपण के लिये हमें बौद्ध वाङ्मय का आश्रय लेना ही पड़ेगा। बौद्ध-धर्म का विकास तेजी से हुआ और शीघ्र ही बहुत सम्प्रदायों (Schools) में इसका विभाजन हो गया। बहुतसे बौद्ध-ग्रंथोंमें तो अष्टादश (१८) निकायों का उल्लेख है। चूंकि बौद्ध-धर्मकी प्रधान बातें स्मरण द्वारा ही सुरक्षित रखी गई थीं इसलिये आपसी मतभेद अथवा विभिन्न विचार या सम्प्रदायों का होना अनिवार्य ही था। तृतीय बौद्ध-संगीति (ईसा पूर्व २४७) के बादसे ही धर्म ग्रन्थों का संग्रह संगठित रूपसे हुआ किन्तु इस संगीति को भी लोग थेरवाद सम्प्रदाय का ही मानते हैं। चीनी अनुवाद और संस्कृत के दूसरे-दूसरे ग्रन्थों से यह ज्ञात होता है कि थेरवादके अलावा भी और बहुतसे सम्प्रदाय थे। थेरवाद भी विभिन्न सम्प्रदायों में विभाजित था—यथा-धम्म, विनय और अभिधम्म। इन सभीमें वास्तविकता की मात्रा कम थी और पम्परागत कथाओं (Legends) की ज्यादा। इसके अलावा बौद्ध-इतिहास के

साधन के दृष्टिकोणसे "महावस्तु" और "ललितविस्तर" का भी महत्त्व कम नहीं। 'ललित विस्तर' में तो बुद्ध-चरित्र का विस्तृत वर्णन है। साधनोंके दृष्टिकोणसे संस्कृत ग्रंथ "अभिनिष्क्रमण-सूत्र", जिसका केवल चीनी अनुवाद ही प्राप्य है, बहुत महत्त्वपूर्ण है। चीनी अनुवादकका विचार है कि बौद्ध-धर्मके विभिन्न सम्प्रदाय वाले इस ग्रंथ को मानते थे। इसमें भी बुद्ध-चरित्र का वर्णन है और इसकी ज्यादातर कथायें "महावस्तु" से मिलती-जुलती हैं। बुद्ध-चरित्रका उल्लेख निदान-कथामें भी मिलता है। बौद्ध इतिहास की सामग्रियों के सिलसिले में "दीपवंश" और "महावंश" भी उल्लेनीय हैं। इसके अलावा, मध्यएशिया, कम्बोडिया और स्याममें ऐसे बहुतसे ग्रंथों का आविष्कार हुआ है जिनसे हमारे बौद्ध-इतिहास पर काफी प्रकाश डाला जा सकता है। भारतीय विद्वान, प्रातस्मरणीय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, डाक्टर वेनीमाधव बरुआ, नलिनीकान्त दत्त, राहुल सांकृत्यायन, प्रबोधचन्द्र बागची इत्यादिने इस दिशामें जो प्रयास किया है वह प्रशंसनीय एवं सराहनीय है। उन लोगोंने बौद्ध-धर्म, दर्शन, साहित्य और बौद्ध-चरित्र सम्बन्धी विषयोंका विशद विश्लेषण करके ऐतिहासिक साधनोंको पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया है जिसके आधार पर आज इस क्षेत्रमें नूतन रचनाओं की आवश्यकतायें बढ़ गई हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे जातक सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, और इनमें करीब साढ़े पाँच सौ कहानियोंका संग्रह है। इनका असली नाम जातकत्थवण्णना है और सिंहली अनुवादका फिरसे किया हुआ पाली अनुवाद है। कहा जाता है कि बुद्धघोषने पालि अनुवाद किया था। विश्वकी कहानियां

में यह सबसे बड़ा और पुराना संग्रह है। तिथिके सम्बन्ध में अभी भी कोई विचार स्थिर नहीं हो पाया है, कारण ग्रथों में ही अभी तक मतभेद चला आ रहा है। बुद्ध-सम्बन्धी सभी तिथियों पर विद्वानोंके बीच विवाद जारी है और न इसका ठीक-ठीक निराकरण पाली या संस्कृत ग्रंथोंमें ही दिया गया है। दीपवंश और महावंशमें इस सम्बन्धमें जो वर्णन है उस पर निर्भर नहीं किया जा सकता है क्योंकि परम्पराका आश्रय लिया गया है।

धर्म-ग्रंथोंमें सिद्धार्थके जीवनकी कहानी एक सूत्रमें बँधी हुई नहीं मिलती है। सिद्धार्थ अथवा सर्वार्थसिद्ध ही ज्ञान-प्राप्तिके बाद बुद्धके नामसे प्रसिद्ध हुए। बुद्ध जब अपने विषयमें बोलते हैं तब "तथागत" शब्दका प्रयोग देखा गया है। यों तो हिन्दूशास्त्रोंमें बुद्धको भगवान, प्रभु और ईश्वरका अवतार कहकर सम्बोधित-किया गया है। बहुत लोग बुद्धको गौतम या महाश्रमण (महाऋषि) कहकर सम्बोधन करते हैं। इस प्रकारके बहुतसे विवादास्पद प्रश्न बौद्धग्रंथों और टीकाओं में पाये जाते हैं और उन सभी विवादास्पद प्रश्नोंको वैज्ञानिक रूपसे मिलाकर सिद्धार्थ चरित्रका वास्तविक इतिहास बन सकता है।[१] बुद्धवंशके टीकाकारने ऐसे स्थानोंका उल्लेख किया है जहाँ बुद्ध अपना वर्षाकाल बिताया करते थे। इसी

---

१ It is observed to imagine that the life of Gautma is all a fiction and that the Buddhist Philosophy could have........arisen from the misunderstood development of some solar myth— Rhys Davids, Buddhism, P 16.

प्रकार अन्य ग्रंथोंमें बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनसे बुद्ध-चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। शाक्यकी उत्पत्तिके विषयमें दीघ्घ के अम्बत्थ प्रसंग (Legend of Ambatha) में कहा गया है। इसको ऐतिहासिक तथ्यांके रूपमें पूरा-पूरा स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अपनी उत्पत्तिके विषयमें बुद्ध कहते हैं कि वे राजा ओकाकके वंशज थे और अम्बत्थ उसी राजा और दास-लड़की के संयोगसे उत्पन्न हुआ था। इस कथाके अनुसार राजा ओकाक ही शाक्य-वंशका संस्थापक था। राजा ओकाक अपनी रानीको बहुत प्यार करता था। एक दिन रानीको इच्छा हुई कि सारा राज्य उसके पुत्रको मिले, इसलिये रानीने अपने सौतेले लड़कोंको राजासे कह कर निर्वासित करवा दिया। निर्वासित राजकुमार हिमालयकी तराईके शालबन (grove) में आकर रहने लगे। जातीय-संस्कारके[१] भ्रष्ट होनेको डरसे उन्होंने बहनके साथ ही संसर्ग करना शुरू किया। कुछ दिन बाद जब राजा ओकाकने अपने मंत्रियोंसे उन राजकुमारों के विषय में पूछा तब मंत्रियोंने बतलाया कि वे लोग बहनके साथ हिमालयकी तराईमें शालबनमें रहते

The task of science is to lay bare the grain of truth; not only this but she must seek the meaning and significance of the mythical crown of rays that has gathered round the nucleus. For the mythical is often the covering of deep thoughts—Geiger, Mahavansa, Introduction P.xiv.

१ महावस्तु, १,३५१—जातिसंदोसभयेन—

हैं और तबसे ही शाक्यवंश शुरू हुआ और ओकाक उसवंश का संस्थापक माना गया है।

उपरोक्त कथाकी टीका बुद्ध घोषने की है और उसके अनुसार कहानी निम्नलिखित हैः—राजा ओकाकको पाँच रानियाँ थीं, भत्ता, चित्ता, जन्तू, जालिनी, और विशाखा और प्रत्येक रानीको ५००—५०० नौकरानियाँ थीं। बड़ी रानीके चार लड़कोंका नाम था ओकामुख, करकन्द, हत्थि निक, और सीनीपुर और पाँच लड़कियों का नाम था पिया, सुप्पिया, आनन्दा, विजिता, और विजितसेना। नौ सन्तानों की माँ बनने के बाद बड़ी रानी काल-कवलित हो गई। इसके बाद राजाने दूसरा विवाह किया। जन्तु नामक एक लड़का हुआ। उस लड़का को देखने के बाद ही राजा ने रानी से कहा "वरदान माँगो"। रानीने वरदानमें राज्य माँगा। राजा क्रोधित होकर बोला, "ऐसी नीच औरत, तू मेरे पुत्रों का नुकसान करना चाहती है;" अन्त में राजा को झुकना पड़ा और तब राजाने अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा, "मेरे पुत्रो, तुममें सबसे छोटे जन्तु को देखनेके बाद मैंने रानी को बरदान माँगने कहा था और रानी की यही इच्छा है कि यह राज्य मैं जन्तु को दे दूँ। क्या तुम राज्य त्याग कर जा सकते हो?" ऐसा कह कर राजाने उन्हें आठ मंत्रियों के साथ भेज दिया। रोने-पीटने के बाद वे लोग अपनी बहन के साथ चल पड़े और इस आशामें कि वे लोग पुनः लौटेंगे, बहुतसे लोग उनके पीछे हो चले। जगह की खोजमें वे लोग हिमालय क ओर चल पड़े।

उस समय बोधिसत्वका जन्म एक ब्राह्मण परिवारमें आ था और वह कपिलके नामसे प्रसिद्ध था। गृह-त्याग कर

वह ऋषि हो गया था और पत्तों की झोपड़ी बनाकर हिमालय की तराईमें शाक-कुंज में रहता था। वह भूमिकम्प विज्ञान भी जानता था। इसी समय निर्वासित राजकुमार जगह की खोज में इधर-उधर भटक रहे थे। उसने उन लोगोंसे पूछ-ताछ की और उनलोगोंके प्रति दया दर्शायी और कहा, "अगर यहीं एक शहर बसाया जाय तो वह जम्बूद्वीपमें एक प्रधान शहर होगा। यहाँ का जन्मा हुआ एक भी पुरुष सैकड़ो और हजारों को जीत सकेगा, यहीं शहर बसाओ।" उनलोगोंने पूछा कि क्या यह आपकी जगह नहीं है, इसपर कपिलने उत्तर दिया कि इन सब बातों को छोड़कर तुमलोग यहीं एक शहर बसाओ और उसका नाम कपिलवस्तु रखो। उनलोगों[1] वैसा ही किया और उसके बादसे वहीं रहने लगे। उसके बाद मंत्रियोंने सोचा कि अगर ये राजकुमार अपने पिताके साथ होते तो उनके विवाह इत्यादि का इन्तजाम होता और इसलिए उन्होंने ही इसका इन्तजाम शुरू किया। योग्य क्षत्रिय राज-कुमार और राजकुमारियों की अनुपस्थिति में उनलोगोंने भाई-बहन में ही संसर्ग स्थापित किया। संतानोंकी वृद्धि हुई किन्तु उनकी बड़ी बहन को कुष्ट रोग हो गया, इसलिये उसे जंगलमें रख आये। उसी जंगलमें कुष्ट रोगसे पीड़ित बनारसका राजा रामभी रहता था। एक दिनकी बात है कि व्याघ्रके प्रकोपसे राजकुमारी चिल्ला उठो और उसकी आवाज राजाके कानों तक पहुँची। पता लगानेपर राजाको मालूम हुआ कि वह राजा ओक्काककी लड़की थी और यह समझते हुए कि

---

१ महावस्तुमें निर्वासित राजाका नाम कोल है और उसी नामसे कोलियजका विश्लेषण होता है—देखिये, महावस्तु १,३५२

क्षत्रियके घमडसे वह बाहर नहीं आयेगी, राजाने अपनेको क्षत्रिय घोषित किया और सीढ़ी देकर उसे बाहर खींच लिया। उसे अपने स्थानपर ले जाकर और दवा-इत्यादि खिलाकर अच्छा किया तथा उसके साथ संसर्ग भी जिसके फलस्वरूप उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए और धीरे-धीरे पुत्रोंकी संख्या ३२ हो गई। राजाने उनलोगोंको सभी कलाओंमें निपुण बना दिया।

एक दिन नगरसे आये हुए कुछ लोगोंने राजाको देखा और पहचाना। राजाने अपने राज्यके विषयमें उनलोगोंसे सब कुछ पूछा और ठीक उसी समय लड़के लोग आ गये जिन्हें देखकर नागरिकोंने लड़कों और उनकी माँके वंश इत्यादिके विषय में पूछा। राजाको लेने जब उसका पुत्र वहाँ पहुँचा तो उसने (राजा) कहा, "इस वृक्षको हटाकर मेरे लिये यहाँ एक नगर बसा दो।" ऐसाही हुआ और वहाँ पर कोल नगरी और व्याघ्रपज्जा नामक शहर बसाया गया और उसके बाद राजाको प्रणामकर पुत्र पुनः लौट गया।

जब राजकुमार गण बड़े हुए तब माता ने कहा. 'बालको, कपिलवस्तु में जो शाक्यगण रह रहे हैं, वे तुम लोगोंके मामा हैं"। माताने उन लोगोंको उनकी लड़कियोंको लाने का आदेश दिया। एवं प्रकारेण शाक्य और कोलियवशकी स्थापना हुई और उनलोगों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध बुद्धके समय तक बना रहा। इस प्रकार शाक्योंकी उत्पत्तिके सिलसिले में एक दशरथ-जातक है किन्तु उस पर पूर्णरूपेण निर्भर नहीं किया जा सकता है, कारण उसकी उल्लिखित घटना भ्रामक है।

सिद्धार्थकी जीवन-सम्बन्धी और भी ऐसी बातें हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। यों तो उनके जीवन-सम्बन्ध में बहुत सी किंवदन्तियाँ और कथायें हैं, किन्तु उनके वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर ही हम वास्तविक सत्य पर पहुँच सकते हैं। बहुतोंने तो यहाँ तक सन्देह प्रकट किया है कि बुद्धनामका कोई आदमी हुआ ही नहीं है यद्यपि वे यह स्वीकार करते हैं कि बौद्ध-धर्म का संस्थापक कोई अवश्य हुआ होगा। इस प्रकारके विचार रखनेवालोंमें सेनार्ट महोदय का नाम आता है। उन्होंने गौतम-बुद्धसम्बन्धी एक पुस्तक भी लिखी है। सेनार्ट का विचार "ललित-विस्तार" पर आधारित है इसलिए उसका विचार एकांगी है, कारण यह कि उसने पाली-ग्रंथों का सहारा नहीं लिया। यहाँ स्मरण रखना होगा कि बुद्ध के जीवन-सम्बन्धी विषयोंकी जानकारी के लिये पाली-ग्रंथ आवश्यक हैं। पाली-ग्रथोंमें उसके विषयमें बहुतसी बातें मिलती हैं और यह ज्ञात होता है कि बुद्ध एक धर्म-संघ के संस्थापक थे और उन्होंने अनेकानेक स्थानोंमें भ्रमण कर लोगों को ज्ञान-शिक्षा दी थी। किन्तु पाली-ग्रंथों में उसका जीवन-चरित्र पूर्वरूपेण संग्रहीत नहीं है। दूसरी जगहोंमें भी उनके वंशके विषयमें बहुतसी बातें मिलती हैं गौतम नामभी उनका गोत्र-नाम है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकारके गोत्र-नाम उस समयके राज-वंशके लोग रखते थे। हमलोग जानते हैं कि कुसीनारा और पावाके मल्ल

१ Emile Senart—" Essai surLa Legend du Buddha" (Pari's 1875)

२ चुल्लवग्ग—७. ११

लोग "वासेट्ठ" के नाम से प्रसिद्ध थे।३ इसी प्रकार कोलिय लोग अपनेको व्याग्घपज्ज पदवी से विभूषित करते थे।४ महाप्रधानसुत में ६ बुद्धोंके वंश एवं गोत्र इत्यादि का वर्णन है जिनमें तीन क्षत्रिय थे और तीन ब्राह्मण थे। क्षत्रिय कोण्डञ्ञ और ब्राह्मण कस्सप थे। अन्तिम बुद्ध गोतम५ थे और उनका सम्पूर्ण परिवार इसी पदवीसे विभूषित था। उनके पिता गोतम कहकर सम्बोधित किये जाते थे६ और उनके चचेरे आनन्द७ भी। शाक्यवंशी महाप्रजापती भी गोतमी कहलाती थी८ और उसकी बहन माया भी। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि अभीतक गोत्र-नाम प्रचलित था९।

तत्कालीन साहित्यसे उस समयकी भौगोलिक स्थिति का पता चलता है जिसके आधार पर ही हम यह निर्णय कर सकते हैं कि बौद्ध धर्म का प्रचार कैसे और कहाँ हुआ। बौद्ध-धर्मका गृह अथवा वास्तविक स्थान राजगृह (आधुनिक राज-गीर) था। इसके पूर्वमें अंग था जिसकी राजधानी चम्पा

३ महापरिणिवानसुत, पृष्ठ ५५, और देखिये" दिघनिकायमें संगति-परियायसुतं"—

४ देखिये अंगुत्तरनिकाय

५ बर्नोफ वहीं पृष्ठ १५५

६ महावग्ग, १ ५४ ४

७ वंगीसथेर संयुक्त—

८ ललित विस्तर पृष्ठ २८ महावश पृष्ठ ६

९ खत्तियो सेत्थो जाने तस्मिन यो गोत्तपतिसारिवो।

थी। मगधके उत्तर और गंगाके पार वज्जियों का गण था जिसकी राजधानी वैशाली थी और उससे कुछ उत्तर मल्ल लोग रहते थे। मगध के पश्चिम काशी था जिसका मुख्य नगर बारानसी था। कोसल राज्य काशी के उत्तर हिमालय तक था और उसकी राजधानी श्रावस्ती थी। उसकी उत्तरी सीमा में थे शाक्य और कोलिय वंशके शासक-गण। जनवसब सुत्त [10] में एक कथा है जिसमें बुद्धसे यह कहलाया गया है कि विभिन्न देशोंमें उनके बहुत से शिष्य मरे हैं और इस सिलसिले में उपरोक्त देशों [11] का उल्लेख है। इसके अलावा अंगुत्तर निकाय में अस्सक, अवन्ती, गन्धार और कम्बोज का उल्लेख है। चारों निकायोंमें वंग और लंका का उल्लेख नहीं मिलता है। उपरोक्त सूची से दक्षिण का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता है। किंवदन्तियोंमें कौसाम्बी, साकेत, श्रावस्ती, सेतव्य, कुसीनारा पावा, भोगनगर, वैशाली, राजगह और कपिलवत्थुका उल्लेख है। कपिलवत्थुके विषयमें भी अभीतक विद्वानोंमें मतभेद है। ऐसी अवस्था में हमें परम्परा का ही आश्रय लेना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि कपिलवत्थु नामक एक स्थान था और सप्तम शताब्दी का चीनी यात्री हियेनसंगने भी इसका उल्लेख किया है। पाली-ग्रंथों में भी इसका उल्लेख पाया गया है। हम ऊपर देख चुके हैं कि कपिलवत्थुकी स्थापना कैसे हुई। कुछ विद्वानोंका कथन है कि साक्य-राज्य और साक्य-प्रदेश श्रावस्ती और रामग्रामके

---

१० दिठ्य निकाय— २२००

११ अंगुत्तर निकाय—१२१३ ४ ३५२ २५६ २६० देखिये महावस्तु (जिसमें किसी नाम का उल्लेख नहीं है)—११६८ २२ —

बीच था [१]। कार्लेल महोदयने यह दिखलाया है कि कपिलवस्तु बस्ती जिला में थार[२]। स्मिथ महोदयने इसको नेपालगंजरोड स्टेसनसे कुछ मील दूर उत्तर-पूर्वकी ओर बतलाया है[३]। फाहियान और हियेनसंगके लेखोंसे भी निश्चित रूपसे इसका पता नहीं लगाया जा सकता है। अभी तक ज्ञात इतनाही हो सका है कि रोहिणी नदी के पश्चिम की ओर शाक्योंकी कपिलवस्तु नगरी थी और उसके पूर्व उन्हींके भाई-बन्धु कोलिय राजाओंका देवदह नगर था। शाक्यों और कोलियोंके बीच वैवाहिक सम्बन्ध था। शुद्धोधनने एक देवदह राजाकी दो कन्याओं माया और प्रजावतीसे विवाह किया था किन्तु बहुत वर्षों तक उनकी कोई सन्तान न थी। उनकी पैंतालीस वर्षकी आयुमें महामायाके गर्भ रहा। प्रसव-कालके निकट आनेपर दोनों बहनें मायके चलीं। देवदह तक वे पहुँच न पाई थीं कि रास्तेमें लुम्बिनीके सुन्दर उपवनमें मायाने सिद्धार्थको जन्म दिया जिसका नाम आजतक विश्व-विख्यात है। लुम्बिनीको आजकल रुम्मिनदेई कहा जाता है। वह नेपाल राज्यके तराई भागमें नेपाल-सीमाके चार मील अन्दर बुटौल जिलेमें है (बस्ती

---

१ A Report on a tour of exploration of the qnti a uities of the Tarai P. 18 (V. A. Smith in P. C. Mukherjee).

२ Report of Towns in the central Doab and Gorakhpur in 1874-75, 1875-76, A s. xii, P.108.

३ JRAs 1898, P. 503

जिलाके समीप)। अशोकने वहीं एक स्तम्भ खड़ा किया था जा अब तक विद्यमान है।

सिद्धार्थके जन्म और परिवारके सम्बन्धमें कुछ बातें—सिद्धार्थका जन्म ईसा पूर्व ५६३ वें वर्षमें हुआ किन्तु इस प्रश्नपर भी विद्वानोंमें काफी मतभेद है। सिंहली उद्गम-स्थलके अनुसार उनका जन्म ईसा पूर्व ५४४ वें वर्ष में हुआ। यह तिथि मगध राजवंशों की तिथियों पर आधारित है। किन्तु ऐतिहासिक साधनोंके आधारपर इसमें संशोधन की आवश्यकता हो जाती है। कारण यह कि ग्रंथोंमें कहा गया है कि निर्वाणके २१८ वर्ष बाद अशोकका राज्याभिषेक हुआ। किन्तु कोईभी तिथि अभी तक निश्चित रूपसे स्थिर नहीं हो पाई है। यहाँ तक कि विभिन्न बौद्ध-सम्प्रदायोंके बीचभी अभी तक काफी मतभेद है और विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारकी तिथियाँ मानी जाती हैं[४]। बौद्ध-धर्म-ग्रंथोंमें इस बातका उल्लेख है कि वह राजा शुद्धोधन और मायदेवीके पुत्र थे। महापदान-सुत्तमें केवल उनके जीवन, माता-पिता और शिष्य इत्यादिके विषयमें ही नहीं वरन् प्राचीन ६ बुद्धों[५] का भी वर्णन है जिनमें सर्वप्रथम विपास्सिन था। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि यह एक परम्रागत कहानी मात्र है। वास्तविकता नहीं। बुद्ध-वंशमें कहा

---

४ चीन और जापान ई. पू० १०६७। ओल्डेनवर्गके अनुसार ई. पू. छठीं शताब्दीके मध्यमें, तिब्बती साधनोंके आधारपर १४ तिथियाँ दी जाती हैं।

५ विपस्सिन या विपश्चित, सिखिन, वेस्सभूया विश्वभू, ककुछन्द या कूकूछन्द, कोनागमन या कनक मुनि, कस्सप या काश्यप।

गया है कि बुद्धके पूर्व २४ बुद्ध हुए थे। इस प्रकार ललितविस्तार में ५४ बुद्ध और महावस्तुमें १०० से अधिकका उल्लेख है। सिद्धार्थकी जन्म-सम्बन्धी सभी कथाओंमें वह एक राजाका लड़का कहा गया है। किन्तु इसमें ऐतिहासिक तथ्य कहाँ तक है यह कहना कठिन है। कहा जाता है कि वह उच्च क्षत्रिय कुलका लड़का था। कई जगहोंमें उसके पिताको केवल शुद्धोधन शाक्य[७] ही कहा गया है जबकि भद्दियको शाक्य राजा और बिम्बिसार और पसेनदीको महाराज कहा गया है। केवल महापदानसुत्तमें ही शुद्धोधनमें राजकीय गुणोंका समावेश दिखलाया गया है। इस प्रकारके विवादास्पद बातोंका उल्लेख और कई ग्रंथोंमें है।[८] निदान-कथामें इस सम्बन्धमें एक कहानी है—कपिलवस्थुमें आषाढ़ मासके पूर्णिमा-उत्सवकी घोषणा हो चुकी थी और लोग उसे बहुत हर्षसे मनाये भी थे। मायारानी पूर्णिमाके सात दिन पूर्वसे ही बड़े धूम-धामसे उत्सव मना रही थी और नित्य सवेरे सुगन्धित जलमें स्नान कर दान भी देती थी और उसके बाद अपने मनके अनुसार भोजन करती। सातवें दिन उसने स्वप्न देखा कि चार बड़े राजाओंने उसे उठाकर हिमालयके मनोसिला स्थानके शालवनमें उसे रख दिया और उसके बगलमें खड़ा रहा। तब उनलोगोंकी रानियाँ आईं और उसको उठाकर अनोतत्ता झील में स्नान-करा कर अच्छी तरह सज दिया। यहीं से कुछ दूर चाँदी

---

६ उच्चकुल, खालयकल, अघ्वकुल।

७ महावग्ग—१, ५४; ८—चुल्लुवग्ग—७,१,३।

८ अछरियभुतधम्मसुत्त—मज्झिम ३, ११८ महापधानसुत्त, दिघ्वीनेकाय २, १२।

के पर्वतपर सोनेका भवन था, जहाँ उसके लिये ईश्वरीय बिछावन तैयार करके उसे पूर्वमुँह सुला दिया गया। अब बोधिसत्व एक उजला हाथी हो गया। वहाँ से कुछ दूरपर एक स्वर्ण-पर्वत था जहाँ वह नीचे उतर कर रजत पर्वतकी ओर उत्तर से आया। उसकी सूँढ में एक उजला कमल था। आवाज़ करते हुए वह स्वर्ण-भवन में घुसा और अपनी माता के बिछावनके चारो ओर त्रिपेक्षणकर उसके कोख (womb) में घुस गया। दूसरे दिन रानीने राजासे इस स्वप्नके विषयमें कहा। राजाने ६४ ब्राह्मणों को बुलाया और भोजन कराकर सन्तुष्ट करने के बाद स्वप्नके विषय में कहा और उसका फल जानना चाहा। ब्राह्मणोंने कहा कि इसमें चिन्तित होने की कोई बात नहीं क्योंकि आपको (राजा) पुत्र होगा। यदि वह घरमें रहेगा तो सार्वभौम राजा होगा और यदि वह गृह त्याग करेगा तब वह संसारमें अविद्या का नष्ट करनेवाला बुद्ध होगा। धर्म-ग्रंथोंमें इस प्रकारकी कितनी कहानियाँ हैं। बैशाखी पूर्णिमा के दिन सिद्धार्थका जन्म हुआ था।

सिद्धार्थके परिवारके विषयमें भी कुछ जान लेना अत्यावश्यक है। बुद्धके पिताके सम्बन्ध में ओल्डेनबर्ग महोदयका बिचार ऊपर उपस्थित किया जा चुका है। उन्होंने सुत्त-निपातकी एक कविताके आधारपर यह निर्णय दिया है कि बुद्धका पिता राजा नहीं था। किन्तु इस सिलसिलेमें बहुत सी कथायें हैं जिनमें एक यह है कि बोधिसत्व तपस्वीके रूपमें भ्रमण करते-करते राजगह (राजगीर) पहुँचे। तब राजा बिम्बिसारने धन-उपहारमें देते हुए, उनके जन्मके विषयमें पूछा। उस प्रश्न का उत्तर बोधिसत्वने यह दिया, "हे राजन हिमालयकी तराई में एक देश है जिसमें धनिकों और वीरोंकी कमी नहीं है।

जातिगत वे लोग सूर्य्यके वंशज हैं और जन्मगत वे लोग शाक्य हैं। राजन, मैं उसी परिवार का हूँ और काम भावना मुझमें तनिक भी नहीं है"[१]। दूसरी जगहोंमें कहा गया है कि गौतम (सिद्धार्थ) उच्च क्षत्रिय वंशके थे और ऐसे परिवारमें जन्म लिये थे जिसमें धनकी कमी नहीं थी[२]। शाक्य वंशके लोग गौतम-गोत्र के थे[३]। तिब्बती उपाख्यानोंमें गौतम को बुद्धका पूर्वज माना गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि आर्यों के प्रसारके बादभी पूर्वी भारतके निवासियों के बीच प्राचीन देशी प्रथायें प्रचलित थीं। हम देख चुके हैं कि शाक्य और कोलियों में बहनों के साथ विवाह हुआ करता था। बुद्ध और उनके पिता का विवाह भी अपने गोत्र के अन्दर ही हुआ था। आर्य-सभ्यता के प्रसार होने के बाद भी पुरानी रीति, संस्कृति और पुराना विश्वास एवं संस्कार लोगों में चला ही आ रहा था[४]। उपाख्यानों में यह बतलाया गया है कि शुद्धोदन राज्य करता था।

शाक्यों का अर्थ होता है "सर्वशक्तिमान"। शाक्यों का राज्य एक छोटा सा अभिजात वर्गीय राज्य था। शाक्यों के अभिजात वर्गीय शासन के समीप ही कोशल राजतन्त्र था और शाक्य लोग भी अपने को कोशल ही कहा करते थे।

१—सुत्त निपात, ४२२–३, और देखिये महावस्तु २, १०८–६; रौकरिल, बुद्ध–पृष्ठ–२७

२—दीघनिकाय–१, ११५

३—रौकहिल–वहीं–पृष्ठ १०

४—वेन्स-एथनोग्राफी (कास्ट एण्ड ट्राइब) ६३- स्ट्रासबूर्ग (१६१२

सैनिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से शाक्य लोग काफी शक्तिशाली नहीं थे। शाक्य राष्ट्र काफी धनी था और उनकी आमदनी का सबसे जबर्दस्त स्रोत चावल की उपज थी। शाक्य राष्ट्रकी प्राकृतिक बनावट ऐसी थी कि वह एक व्यापार का केन्द्र बन गया था और इससे शाक्योंकी प्रधानता और बढ़ गई थी। शुद्धोदन एक छोटा अभिजातवर्गीय सत्ता का प्रधान था और उपाख्यानोंमें उसे "महान राजा शुद्धदोन" ही कहा गया है। बुद्ध की मां माया भी शाक्य वश की थी।

इसके अलावा सिद्धार्थके जीवन-सम्बन्धी और भी कई उपाख्यान हैं, जिनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं। बौद्ध धर्मकी परम्परायें अभी भी लंकामें सुरक्षित हैं। वहाँ थेरवाद की प्रधानता है। उसके वर्णनसे ऐसा विदित होता है मानो बुद्ध हालमें ही हुए थे। प्रथम बौद्ध-संगीतिके पूर्व ही बौद्ध-साहित्योंका संकलन होना शुरू हो चुका था। इन सभी साधनों से ही हमें सिद्धार्थके व्यक्तित्वका पूरा-पूरा पता लगता है वह एक सन्यासी-संघके प्रवर्तक ही नहीं बरन् प्रधान भी थे। नगर-नगर भ्रमण करके उन्होंने अपने धर्मका प्रचार किया और शिष्योंका एक संघ बनाया। फिर वहीं उन्होंने अपना प्रवचन दिया। उसके जीवन-चरित्रका पूरा विवरण एक स्थान पर संरक्षित न मिलनेका मुख्य कारण यह है कि उनके उपदेशोंसे लोग इतने अधिक प्रभावित हुए कि उनके व्यक्तित्व पर लोगों का उतना ध्यान नहीं रहा। दूसरी बात यह थी कि उस समय लोग जीवन-चरित्रको अधिक महत्व नहीं देते थे। शिष्यगण स्वभावतः उनके उपदेशों एवं प्रवचनोंको ज्यादा महत्वपूर्ण समझते थे। इसलिये बुद्धको जितने लोगों के साथ वाद-

विवाद या तर्क-वितर्क हुआ, उन सबका उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है [१]।

सिद्धार्थकी सर्वव्यापी प्रतिभा एवं भद्रतासे लोग ज्यादा प्रभावित हुए थे। उनके जीवनकी सरलताका भी प्रभाव काफी पड़ा था। ज्ञानप्राप्तिके बाद ही सिद्धार्थ बुद्धके नामसे प्रसिद्ध हुए थे और अविद्याको दूर करना ही उसके जीवनका उद्देश्य था। संघर्ष द्वारा उन्होंने इस ज्ञानको प्राप्त किया था। वे विजेता भी असाधारण थे। जीवनके अनेकानेक संघर्षोंसे गुजरनेके बाद भी सिद्धार्थ अपने कठोर एवं संघर्षमय जीवनमें अटल और अविचल रहे। लौकिक एवं अलौकिक कठिनाइयों का सामना उन्होंने असाधारण धैर्य और सहिष्णुतासे किया जिसके फलस्वरूप उन्हें मुक्ति मिली और जीवन में सर्वोपरि शान्ति भी। मार, इच्छा, अशान्ति, आनन्दोल्लास इत्यादि ही उनके जीवनके सबसे जबर्दस्त दुश्मन थे और ये सभी मिलकर उनकी तपस्याको भंग करना चाहते थे। विश्व-इतिहासके देदीप्यमान सूर्यने इन सभी शत्रुओं को अपनी प्रतिभासे दबाकर अपने प्रणको पूर्ण किया [२] और नूतन धर्मकी स्थापना की जिसमें शान्ति एवं निर्वाणका मार्ग प्रशस्त हो गया। उपाख्यान, परम्परा किंदन्तियाँ और बौद्ध-धर्म-ग्रन्थोंमें वर्णित इन कथाओंके आधार पर सिद्धार्थ के विषयमें उपर्युक्त बातोंको जाननेके बाद अब हम उनके जीवन एवं दर्शनके क्रमिक विकासका दिग्दर्शन करेंगे।

१—Bigandet, "Life of Gaudama" P. 166.

२—"An inconceivably bright flash of light pierces through the Universe" Openberg "Buddha" P. 83.

३ बचपन और तरुणाई

सिद्धार्थके जन्म होनेसे देवताओंको अजीब खुशी हुई। हिमालय में असित (काला) नामक एक ऋषि रहता था। सिद्धार्थके जन्म होने पर देवताओंमें जो खुशी हुई इसका कारण जानने के लिये उसने देवताओंसे जिज्ञासा की। देवताओंने उत्तर दिया कि जिस बोधिसत्वका जन्म शाक्य राज्य के लुम्बिनी ग्राममें हुआ है वही इसीपतन (बनारस) में धर्म-चक्र-प्रवर्तन करेगा। यह जानकर असित बालकको देखनेके लिये शुद्धोदनके घर गया। असित उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ कहकर उसे सम्बोधित किया। जिज्ञासा करनेपर असितने उत्तर दिया कि बालक ज्ञान प्राप्त करनेके बाद उसी ज्ञानका प्रचार करेगा। ऋषिने इसलिये खेद प्रगट किया कि वह उस ज्ञानसे लाभान्वित नहीं हो सकेगा। उसने अपने भतीजेको इसके लिये प्रोत्साहित किया। उपरोक्त बातें हमें सुत्त-निपातके बालक सुत्त में मिलती हैं। इस प्रकारकी बहुत-सी कहानियाँ उपाख्यानोंमें सुरक्षित हैं जिन्हें हम बन्धुगाथाके नामसे जानते हैं। ललित-बिस्तरका वर्णन उपरोक्त वर्णनसे विभिन्न है। एक स्थानमें असितके भतीजे का नाम नरदत्त दिया हुआ है। ललित बिस्तरके गद्यांशमें एक कथा सुरक्षित है जिसमें असित अपने भतीजे नरदत्तको सिद्धार्थके जन्मके विषयमें कहता हुआ भविष्यवाणी करता है। कथा निम्नांकित है—

ऋषि असित और उसका भतीजा नरदत्त कपिलवस्तु नगर में पहुचा और वहाँ वह राजा शुद्धोदनके द्वारपर जाकर खड़ा हुआ। वहाँ काफी लोग सम्मिलित थे। असितने अपने आग-

मनकी सूचना राजाको दी। राजाने आदरके साथ उसका स्वागत किया और असितने उसको आशीर्वाद दिया। राजाने सम्मानके साथ पूछा, 'महाराज' मैंने तो पहले कभी आपको नहीं देखा है, आपके यहाँ आनेका कारण और उद्देश्य क्या है? असितने उत्तर दिया कि वह राजाके पुत्रको देखने आया था। राजाने कहा कि बच्चा सोया हुआ है और उनसे तब-तक ठहरनेके लिये अनुरोध किया जबतक कि बच्चा जग न जाय। किन्तु तबतक बोधिसत्वको ऋषिके आगमनका समा-चार ज्ञात हो चुका था और इसलिये उसने जाग्रत अवस्था जैसा अपना रूप बना लिया। असितने उसमें महापुरुषके ३२ लक्षणोंका अवलोकन किया और उद्घोषित किया कि वह विश्वका एक महान पुरुष होगा। वह बुद्ध होगा। इतना कहनेके बाद वह रोने लगा और यह देखकर राजाने तुरत पूछा—"ऋषि, क्या इस लड़केका भाग्य अच्छा नहीं जो आप रो रहे हैं?" असितने उत्तर दिया कि वह बच्चेके लिये नहीं अपितु अपने लिये रो रहा था। यह सर्वार्थसिद्ध तो महा-ज्ञानी होगा और धर्मचक्रका प्रवर्तन करेगा जो आज तक किसी ने नहीं किया है और विश्व-कल्याणके लिये वह अपने ज्ञानका प्रचार भी करेगा। किन्तु मैं इस बुद्ध रत्नको नहीं देख सकूँगा इसलिये मैं रोता हूं। इसके बाद असित चला गया। अपने भतीजे नरदत्तको कहा—"नरदत्त, तुम्हें जब भी यह ज्ञात हो कि बुद्ध का आविर्भाव हुआ है तभी तुम सब कुछ छोड़कर उसके पास चले जाना और उससे दीक्षा लेना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

महावस्तुमें इस कहानीका भिन्न रूप है। वहाँ असितका शिष्य नालक है। वहाँ यह कहा गया है कि असित दक्षिणसे

आया था और उसे एक ब्राह्मणका लड़का कहा गया जो कि बिन्ध्या पर्वतमें तपस्या करता था। निदानकथामें और भी विभिन्नता पाई जाती है। उसमें कहा गया है कि कालदेवल नामक ऋषिने देवताओं से पूछा कि वे लोग प्रसन्न क्यों थे ? उन्होंने अपनी खुशीका कारण शुद्धोदनके यहां लड़का उत्पन्न होना बतलाया और कहा कि वही बालक एक दिन बुद्ध होगा, धर्म-चक्र-प्रवर्तन करेगा। इस प्रकार पुरानी कहानी दुहराई गई है। इसमें कहा गया है कि राजा शुद्धोदनका लड़का ३५ वर्षोंके बाद ज्ञानी बुद्ध होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त तीनों कथाओंमें विषयकी समता है और भावभी एक है किन्तु उसे विभिन्न प्रकारसे तीनों स्थानोंमें रखा गया है। कालदेवल नामसे भी असितका ज्ञान हो सकता है। जहाँ जिस प्रकारसे कथा बनानेमें सुविधा हुई वहाँ वैसी बना दी गई।

सिद्धार्थ के जन्मके सातवें दिन उसकी माता मर गई और तबसे उसकी सौतेली मां प्रजापतिने ही उसके पालन-पोषणका भार उठाया। जन्मके पाँचवें दिन सिद्धार्थका नाम-करण संस्कार हुआ। राजभवनमें ब्राह्मण भोजन हुआ और उत्सव मनाया गया। सिद्धार्थ बुद्ध होगा ऐसा ब्राह्मणोंने बतलाया और यह भी कहा कि निम्नलिखित चार चिह्नोंको देखकर सिद्धार्थ गृह-त्याग करेगा—"बूढ़ा, रोगी, मुर्दा और ऋषि। सिद्धार्थको इन सब दृश्योंसे बचानेके लिये राजा शुद्धोदनने राज्यके चारो ओर पहरा बैठा दिया ताकि ये सब सिद्धार्थकी दृष्टि में न पड़ें। निदानकथामें सिद्धाथ्थ और ललित बिस्तर में सिद्धार्थ नाम पाया गया है। सिद्धार्थका अर्थ है—"वह जिसकी आकाँक्षा पूर्ण हो गई हो।" महावस्तुमें उसे सर्वार्थ

सिद्ध कहा गया है जिसका अर्थ है—"वह जो अपनी सारी इच्छाओंको पूर्ण कर चुका हो।" बोधिसत्वको यह नाम शुद्धोदनने दिया क्योंकि उसकीही सभी इच्छायें पूर्ण हो चुकी थीं। शुद्धोदनको बहुत दिनों तक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था और इसलिये वह अनेकानेक प्रयत्न भी कर चुका था। चूंकि बहुत दिनोंके बाद उसकी आशा पूरी हुई इसलिये उसने अपने पुत्रका यह नाम रखा। बादमें उसे बहुत-सा नाम दिया गया। बचपनमें ही पिताके उद्यानमें सिद्धार्थको ज्ञान की प्रथम झाँकी मिली थी और इसका वर्णन उपाख्यान एवं तत्कालीन साहित्य में भी मिलता है। तिब्बती साधनोंके अनुसार यह घटना २६ वें वर्षमें हुई जबकि सिद्धार्थ उपरोक्त चार चिह्नोंको देखकर गृह-त्याग करनेकी बात सोच चुके थे। कहा जाता है कि शुद्धोदनने अपने पुत्रको शान्त करनेके लिये हलवाहेको मुक्तकर दिया था। कुछ हेर-फेरके साथ इसी तरहकी घटना का उल्लेख दिव्यावदानमें भी मिलता है। कई स्थानोंमें उसे देवातिदेव कहा गया है।

कहा जाता है कि सिद्धार्थके एक सौतेला भाई और एक सौतेली बहन थी। वे दोनों महाप्रजापतीकी सन्तान थीं। सिद्धार्थकी सौतेली बहन अपनी सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध थी।

---

१ मज्झिम—१,२४६, ललित बिस्तर, अध्याय १८, महावस्तु २,४५, रौकहिल—वहीं पृष्ठ २२

—पितु सक्कस्स कम्मन्ते।

—पितुर उद्याने।

२ रौकहिल पृष्ठ २२,१७, दिव्यदान, पृष्ठ ३६१—देखिये ललित बिस्तर १३४, महावस्तु २,२६

उस समय राजकुमारोंको सैनिक शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध-ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख मिलता है कि सिद्धार्थ घरके बाहर जम्बू वृक्षके नीचे बराबर ध्यान मग्न रहा करता था। सिद्धार्थ गौतम बाल्यकालसे ही होनहार प्रतीत होता था। वह एकान्त प्रेमी था और दिन-रात चिंतनशील रहता था। छोटी-छोटी घटनाओंसे भी वह काफी प्रभावित होता था और यही कारण था कि वह गम्भीर चिन्तामें रहा करता था। राजकुमारकी इस प्रवृत्तिको देखकर शुद्धोदनने अपने कर्मचारियोंको आदेश दे रखा था कि सिद्धार्थके समीप केवल चित्ताकर्षक और सर्वोत्तम वस्तु ही रहा करे। उसके मनको बहलाने के लिये राजभवनमें सब प्रकारका इन्तजाम किया गया था। और उसके पढ़ने-लिखनेका भी विशेष प्रबंध किया गया था।

परिस्थिति ऐसी थी कि राजकुमारको किसी वस्तुकी कमी नहीं हो सकती थी उस सम्पन्न युगमें राजकुमारोंके लिये तीन-तीन राजभवनोंका होना भी अनिवार्य था। राज-भवनोंका निर्माण ऋतुओंके अनुसार होता था जिसमें राजकुमार वर्षा, गर्मी, और शरद ऋतु व्यतीत कर सकें। परम्परागत कहानियोंसे यह ज्ञात है कि सिद्धार्थ भी अपने जीवनके प्रारम्भमें तीन महलोंमें रहा करते थे। महलोंके अन्दर ही अनेक फुलबाड़ियां लगाई गई थीं, तालाब और कूप खुदाये गये थे, नदीके समान नहर खुदाई गई थी जिसमें सिद्धार्थ जल-क्रीड़ा किया करते थे। महलके बाहर ऐसे सुन्दर सुन्दर मैदान बने थे जिनमें सिद्धार्थ हाथी पर सवार होकर सैर करते। नगरसे दूर एकान्त स्थानका इन्तजाम किया गया,

कुंअ इत्यादिको साफ कराया गया और उन सब स्थानोंको राजकुमारके लिये निश्चित कर दिया गया। बौद्ध वाङ्मयसे सिद्धार्थके सुखमय बाल्यकालका पता चलता है। बुद्ध अपने सन्यासियोंसे कहते थे कि वे पहले बहुत नाजुक थे और उनके पिताके घरमें कई प्रकारकी फुलबाड़ियाँ थीं। वे कहते हैं कि उनका पोशाक बनारसके रेशमी कपड़ोंका होता था और वे बनारसका ही चन्दन व्यवहार करते थे और धूल, गर्दा, शीत, गर्मी, ठंढ इत्यादिसे बचानेके लिये बराबर इन्तजाम किया जाता था। उनको सर्दी, गर्मी और बरसातके लिये अलग-अलग भवन थे तथा उनकी सेवाके लिये घनेरों नौकरानियाँ थीं। बरसातमें वे घरसे नहीं निकलते थे।

सिद्धार्थके युवा होनेपर राजाने शाक्योंको निम्नांकित आशयका एक पत्र भेजा—"मेरा पुत्र युवावस्था प्राप्तकर चुका है इसलिये मैं चाहता हूं कि उसे राज्यमें स्थापित कर दूं, अतः आपलोग अपनी युवती कन्याओं को मेरे यहाँ भेज दें।" समाचार सुनते ही शाक्यों ने उत्तर दिया "राजकुमार (सिद्धार्थ) केवल देखनेमें ही सुन्दर है, उसे किसी कलाका ज्ञान नहीं है। वह अपनी स्त्री का पालन-पोषण नहीं कर सकेगा। हमलोग अपनी लड़की नहीं भेजेंगे।" यह सुनकर शुद्धोदनने अपने लड़केसे पूछा कि वह कौनसी कला दिखला सकता था। सिद्धार्थने उत्तर दिया कि

३ अंगुत्तर—१,१४५, महावस्तु २,११५, मज्झिम १,५०४ (इनमें बुद्धके तीन राजभवनोंका उल्लेख है) दिग्घ–२,२१—

एक हजार मनुष्यों की शक्तिवाला धनुष वह तोड़ सकता है और उसने करके दिखला दिया। नगरमें एक अजीब तहलका मच गया। सिद्धार्थ ने पूछा कि उसे अपनी बहादुरी दिखलाने के लिये और क्या करना होगा। इसके बाद शाक्य लोग अपनी लड़की भेजने लगे और इस प्रकार ४० हजार नाचनेवाली लड़कियाँ सम्मिलित हो गईं। जातक टीकाकार राजभवन और नाचनेवाली लड़कियों का उल्लेख तो करते हैं किन्तु इस बात का समर्थन नहीं करते हैं कि शाक्योंने लड़की दी थी। वे सिर्फ इतना ही मानते हैं कि राहुल को माँ ही मुख्य रानी थी।

केवल बारह कलाओंमें प्रवीण करनेके लिये ही नहीं वरन सिद्धार्थको पूर्णरूपेण पंडित बनानेका भी इन्तजाम शुद्धोदन ने किया। गुरु विश्वामित्रके निरीक्षणमें ही उसकी प्रारम्भिक शिक्षा शुरू हुई और परम्पराके आधार पर यह कहा गया है कि शीघ्रातिशीघ्र सिद्धार्थने अपनी प्रतिभासे गुरुको आश्चर्य-चकित कर दिया। वह लिखनेकी कलामें परिपूर्ण हो गया। उसके बाद उसकी शिक्षाके लिये आठ ब्राह्मण गुरुजन नियुक्त हुए। उन लोगोंका नाम था,—राम, धज, लक्खन, मन्ती, सुयाम, सुयोग और सुदत्त। उदीच्य (उत्तर-पश्चिम) के ऊंच वंशका ब्राह्मणपंडित सब्बमित्तको भाषा विज्ञान पढ़ानेके लिये नियुक्त किया गया। सब्बमित्त व्याकरण और वेदाङ्गमें पंडित था। अतः शुद्धोदनने सिद्धार्थको उसके अधीन कर दिया।[१]

तरुण सिद्धार्थको संसारसे कुछ विरक्त तथा अधिक चिन्तनशील देख, शुद्धोदनको भय हुआ कि उनका लड़का

१—मिलिन्द पन्हो ४।६,३

साधुओंके बहकावेमें आकर कहीं गृह-त्याग न कर दे, इसलिये उसने पड़ोसी कोलिय-गणकी सुन्दरी कन्या भद्रा कापिलायनी (यशोधरा) से उसका विवाह १६ वर्षकी आयुमें ही कर दिया। उसकी स्त्रीका नाम पाली ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता। आवश्यकता पड़ने पर केवल राहुल माता देवी कहा गया है। बुद्धवंश[२] में उसे भद्दकच्चा (भद्रकृत्या) कहा है। महायानके संस्कृत ग्रंथोंमें उसका नाम यशोधरा है। यह कहना असम्भव है कि सिद्धार्थके कितने विवाह हुए थे। भद्दकच्चाका नाम यों १३ सन्यासियोंकी सूचीमें उल्लिखित है[३] किन्तु वहाँ उसे सिद्धार्थकी धर्मपत्नी नहीं कहा गया है। टीकामें यह कहा गया है कि उसका विवाह बोधिसत्वके साथ हुआ था। जातकों[४] की टीकामें उसे बिम्बा और बिम्ब सुन्दरी कहा गया है। महापदान-सुत्तकी टीकामें कहा गया है कि बिम्बा रानी राहुल के जन्मके बाद ही राहुलमाताके नामसे प्रसिद्ध हुई। १३वीं शताब्दीका एक जीवनचरित[५] जो सिंहल देशमें लिखा गया उसमें भी उसे यशोधरा और बिम्बा कहा गया है। अश्वघोष की कविता और महावस्तुमें भी यशोधरा नाम ही पाया जाता है और ललित-विस्तारमें यशोवती नाम पाया जाता है। ललित-विस्तारके गद्यांशमें दण्डपाणि शाक्यकी लड़की गोपाको ही सिद्धार्थकी स्त्री कहा गया है।[६]

२—२६,१५ और इस सम्बन्ध में देखिये महावग्ग १,५४

३—अंगुत्तर १,२५

४—नं० २८१ और ४८५

५—१०।१७२,३९५

६—रौकहिल ने भी कई नामों का उल्लेख किया है।

१२-१३ वर्षों तक सिद्धार्थने अपना वैवाहिक जीवन सानन्द व्यतीत किया किन्तु उसकी विचारशील प्रवृत्ति को समृद्ध कुल का विलासपूर्ण विवाहित जीवन भी न बदल सका। छोटी-छोटी सी घटनाओंसे वह प्रभावित हुआ करता था और बराबर चिन्तित रहा करता था। २८-२९ वर्षकी अवस्थामें उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसने अपने उठते विचार-चन्द्रके ग्रसनेके लिये राहु समझ कर उसे राहुल नाम दिया। नदीके तट पर एक बाग में बैठे हुए पुत्र उत्पन्न होनेका समाचार उसे मिला। राज्यमें उत्सवके गीत गाये जाने लगे पर उसके अन्तः करणमें कुछ दूसरी ही बात समा चुकी थी। उसे प्रसन्न करनेके अनेकानेक प्रयत्न किये गये। उसकी चाचीने उसे अभिवादन किया और कहा, "धन्य है माता-पिता जिसने ऐसे सौभाग्यवान पुत्र का जन्म दिया।" सिद्धार्थ इस समाचारसे खुश नहीं हुआ। वह तो वास्तविक आनन्दकी खोजमें था। अतः उसे पुत्रसे संतोष कहाँ? वह तो काम, क्रोध, लोभ, मोह तृष्णा इत्यादि मानवी शक्तियोंसे मुक्त होकर सुखी होना चाहता था। जीवनके बाह्य सौन्दर्यसे सिद्धार्थका मन ऊब चुका था और वह अब ऐसे संघर्षमय जीवनके लिये प्रस्तुत हो रहा था जो उसे ज्ञान की चरम सीमा तक ले जाय। मानव-संसारकी क्षणिकता उसके हृदयमें घर कर गई थी और वह अब अपने अनुभवोंसे यह समझ चुका था कि संसार क्षण-भंगुर था। २९ वर्ष की अवस्था में उसने गृह-त्याग किया और ऐसा करनेके पूर्व वह अपनी पत्नीके दरवाजे पर गया। वहाँ जगमगाते दीपकके प्रकाशमें उसने अपनी युवती पत्नीको फूलोंकी सेज पर सोई हुई देखा। उसका एक हाथ बच्चेके सिर पर था। उसकी इच्छा हुई कि अन्तिम समय एकबार अपने

बच्चेको गोद में ले लूं परन्तु अन्तरात्मा की आवाजने उसे एकाएक सचेत किया और मानवीय सुखोंको लात मार कर वह उस अंधेरी रात में गृहहीन पथिक और अकिंचन विद्यार्थी बनकर निकल पड़ा। इस प्रसंग की विशद विवेचना अगले अध्याय में होगी।

(४) महाभिनिष्क्रमण एवं ज्ञान-बोध

इस महाभिनिष्क्रमणके विषयमें सिद्धार्थने सुंसुमारगिरी (चुनार) में वत्सराज उदयके पुत्र बोधि राजकुमारसे कहा था[1]—"राजकुमार! बुद्ध होनेके पूर्व मुझे भी होता था—सुखमें सुख नहीं प्राप्त हो सकता, दुखमें ही सुख प्राप्त हो सकता है—इसलिये....प्रथम वयसमें घरसे प्रव्रजित हुआ।" २९ वर्षकी अवस्थामें वृद्ध रोगी, मृत और प्रव्रजितके चार दृश्योंको देखकर उसे संसारसे विरक्ति हो गई और वह ज्ञानकी खोजमें घर छोड़कर निकल पड़ा।[2] सिद्धार्थ किस भावनासे प्रेरित हुआ इस विषयमें उसने अपने श्रमणों से कहा, प्रत्येक मनुष्य वृद्ध होगा ही और यदि प्रत्येक मनुष्य वृद्ध होगा तो मैं भी वृद्ध होऊंगा ही। ऐसी भावना जब मेरे मनमें उठी, तब मैं सचेत हुआ और यौवनके सभी आनन्द मुझे तुच्छ जान पड़ने लगे। इसी प्रकार रोग, मृत्यु इत्यादिकी भवना मेरे मनमें उठी और मैं चिन्तित हुआ। जीवनकी क्षणभंगुरता, अशुचिता, अनित्यता एवं कामुक भावनायें हमें खटकने लगीं और जन्म-मरणकी इन दुरवस्थाओंको देखकर मैं निर्वाणकी खोजमें

---

१ मज्झिम निकाय २, ४, ५

२ महापरिनिब्बाणसुत्त—धि २, १५१

निकल पड़ा[३]। इस सम्बन्धमें कई कथायें हैं जिनका उल्लेख करना अनावश्यक नहीं होगा।

एक दिन बोधिसत्वको फुलवाड़ीमें भ्रमण करनेकी इच्छा हुई और उन्होंने रथ हाँकनेवाले[४]को रथ लाने कहा। आज्ञा होनेपर रथको सज-धज कर लाया गया। बोधिसत्व उसपर बैठकर उद्यान देखने गये। इधर देवताओंने सोचा कि सिद्धार्थको अब ज्ञान-प्राप्त करनेका समय नजदीक आ गया है अतः अब उसे सूचित करना चाहिये। इसलिये उन्होंने एक गलितनखदन्त बूढ़ेको सिद्धार्थके समक्ष उपस्थित किया। वह बूढ़ा एक लाठीके सहारे चल रहा था, उसका शरीर कम्पायमान था। उसको बोधिसत्व और रथ हाँकनेवालेके सिवा और किसीने नहीं देखा। बोधिसत्वने रथ हाँकने वालेसे पूछा कि यह एक अजीब मनुष्य कौन है जिसके बालभी साधारण लोगोंकी तरह नहीं हैं। रथ हाँकनेवालेके उत्तर सुनने के बाद बोधिसत्व ने कहा कि ऐसे जन्म अथवा जीवन को धिक्कार है, जिसमें बुढ़ापा अनिवार्य है। सिद्धार्थके दिलमें विचित्र भावना पैदा हुई और वह घबराया हुआ घर लौटा। उसे घबराया हुआ देखकर राजाने पूछा कि राजकुमार आज इतनी जल्दी कैसे लौट आए? उत्तर मिला कि राजकुमारने एक वृद्ध मनुष्यको देखा है। उनको इन सभी दृश्योंसे बचानेके लिये राजाने अनेकानेक शरीर-रक्षकोंको नियुक्त किया।

महाभिनिष्क्रमणका दिन समीप आ चुका था। अतः सिद्धार्थ को अब संसार की कोई शक्ति नहीं रोक सकती थी।

---

३ मज्झिम १ १५३

४ रथ हाँकने वाले का नाम छन्द था।

पहले की तरह वह फिर भ्रमण करने के लिये बगीचे की ओर गया और उसे एक ऐसे व्यक्ति का दर्शन हुआ जो संसार त्याग कर चुका था। देवताओं द्वारा प्रेरित रथ हाँकनेवालेने संसार त्यागने का महत्व बोधिसत्व को समझाया और उससे बोधिसत्व को अपूर्व आनन्द मिला। वह दिन उसके लिये बहुत ही महत्वपूर्ण था क्योंकि वह उसी दिन मानव-संसारको त्याग कर सत्यकी खोजमें निकलने वाला था। देवताओं के राजा इन्द्रने उसे समझा और इसलिये बोधिसत्व को सँवारने के लिये नाईके रूपमें विश्वकर्माको भेजा। ठीक ऐसे ही समयमें उसने पुत्र उत्पन्न होने का शुभ समाचार पाया जिसे सुनकर बोधिसत्वने कहा "झंझटने जन्म लिया।" उसने हठात् गृह त्यगानेका निश्चय कर लिया और छंद को रथ लानेके लिये कहा। जाने से पहले उसने अपनी स्त्री को इसलिये नहीं जगाया कि वह उसके महा अभियानमें बाधक बन जायगी। उसने सोचा कि स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के बाद जब मैं लौटूँगा तब इन सभी को देखूँगा। उसके नजदीक नर्त्तकियाँ सोई हुई थीं। उसे ऐसा मालूम पड़ा मानों श्मशान हो और जैसे उस घरके चारो ओर अग्नि की ज्वाला उठती हो। वह चिल्लाया और घोषित किया कि उसके चारो ओर खतरा और दिक्कतों का ही साम्राज्य था और अब समय आ गया कि वह अब अपनी पवित्र एवं पुनीत यात्रा शुरू करे। फाटक के बाहर उसका घोड़ा "कँटक" उसका बाट जोह रहा था। इस मध्य रात्रि में, जब किसी मनुष्य का दर्शन दुर्लभ था, सिद्धार्थने महा अभिनिष्क्रमण किया और वह अपनी अतृप्त आत्माकी शान्तिके लिये। नगर के बाहर फाटक पर

सिद्धार्थको एक काली छाया मिली। यह "मार" था जो मानव को अपने कर्त्तव्य-पथसे भ्रष्ट करने के लिये सदा उद्यत रहता है। वह सिद्धार्थ को बुद्ध नहीं होने देना चाहता था और उसने सिद्धार्थ से कहा, ठहरो! राजकुमार, मैं तुम्हें चक्रवर्ती राजा बनाऊँगा। सिद्धार्थ ने उत्तर दिया "मैं बुद्ध होना चाहता हूँ। चक्रवर्ती राजा नहीं।" सिद्धार्थ को दृढ़-प्रतिज्ञ देखकर मार उस समय तो रुक गया किन्तु उसे बाधा देने के लिये उसके साथ ही चला। शहरसे बाहर निकल कर सिद्धार्थने राजसी पोशाक त्याग दिया और छन्दक और कंटक को घर लौटा दिया। बाल इत्यादि काट कर सिद्धार्थ ने भिक्षुकका रूप धारण किया। अस्तु, उत्तराषाढ़के पूर्णिमा-दिन सिद्धार्थने गृह-त्याग किया।

बोधिसत्व को जब अपने नगर देखने की इच्छा हुई तब पृथ्वीमाता स्वयं घूम गई ताकि बोधिसत्वको न घूमना पड़े। वहीं कन्थक-निवथ पुण्यभूमि हुई। ईश्वरों के साथ तीन देशों को पार करता हुआ भिक्षु सिद्धार्थ अनोमा नदी के किनारे पहुंचा जिसको एकही झटके में उसके घोड़े ने पार कर लिया। जब उसने भिक्षुका रूप धारण किया तब महा-ब्रह्मा ने साधुके आठ आवश्यक आभूषण एवँ पोशाक दिये। उपरोक्त कथाका उल्लेख यद्यपि धर्म-ग्रंथों में नहीं है, फिर भी विपस्सिन बुद्धके पिषयमें इस प्रकारका प्रसंग महापदान-सुत्त में सुरक्षित है[1]। उसके जीवन-सम्बन्धमें इस प्रकार की कई घटनायें जातकोंमें मिलती हैं। इस सम्बन्धके कई उल्लेख

---

१ दीरघ २, २१

विमानवत्थु[२] और महावस्तु[३] में पाये जाते हैं। विमानवत्थु में यह कहा गया है कि मोग्गलान को कंथक से भेंट हुई और कंथक ने उसे यह बतलाया कि पूर्व जन्म में वह बोधिसत्व का घोड़ा था और उसे बुद्ध के गृहत्याग का विवरण भी दिया इस सम्बन्ध में ललित-विस्तर की कहानी पालीसे एकदम भिन्न है। उसके अनुसार तो बोधिसत्व रनिवास में ध्यानकरते हैं; गृह-त्याग करने का निश्चय मध्य-रात्रि में करते हैंऔर अपने रथवाहक छँदक को बुलाते हैं। देवता सम्पूर्ण नगरीको गम्भीर निद्रा में मग्न करा देता है और देवताओं के संग होकर शाक्य, कोलिय और मल्लों के देश को पार करता हुआ वह मैंने यज्ञ के अनुवैनेय नगर में पहुँचता है। वहीं वह अपना आभूषण और घोड़ा छन्दक के सुपुर्द करता है। उसी स्थान पर जहाँ से छन्दक लौटा, छन्दक निवर्तन पुण्यभूमि अथवा स्मारक का निर्माण हुआ। यहीं बोधिसत्व ने पीले वस्त्रों[४] को ग्रहण किया और वहाँ भी पीले वस्त्र ग्रहण करनेके उपलक्ष में एक पुण्य स्मारक बना। कुछ दिन बाद जब बोधिसत्व के आभूषणोंको कमलके पोखरमें फेंक दिया गया तबसे उसका नाम आवरण-पुष्करणी पड़ा।

गृह त्याग करने का वास्तविक उद्देश्य था ज्ञानप्राप्त करना क्योंकि सिद्धार्थ का विश्वास था कि घरमें रहकर मनुष्य पवित्र नहीं रह सकता था। संसार-त्याग करने पर ही मानव

---

२ ७, ७
३ २, १८०
४ काषायग्रहण

जीवन को स्वच्छन्द हवा मिल सकती है[१]। उसके जीवनमें राहुल और यशोधरा का जो स्थान है उसे बहुत से लोग नहीं मानते हैं। भारतीय परम्परामें मनुष्यके जीवनमें स्त्री का होना अनिवार्य है, इसलिये इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं। राहुल सुत्त में राहुल का भी उल्लेख आया है। उपाख्यानों में इस पर कोई विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है। खैर, यहाँ उसका इतना कोई महत्व नहीं। राजकुमार सिद्धार्थने महलसे निकलनेके पश्चात् विभिन्न देश का भ्रमण करना शुरू किया और राजभवन की सुविधाओं को ठुकरा कर उसने ज्ञान-प्राप्तिके लिये, बेघरवारके रहना पसन्द किया।

सिद्धार्थने जो गृह-त्याग किया वह भारतीय परम्पराके अनुसार ही था। प्राचीन कालसे ही ऐसी प्रथा चली आ रही थी कि चिन्तनशील व्यक्ति अपनी चिन्ता शक्ति एवं ज्ञान वृद्धिके लिये एकान्त स्थानमें जाया करते थे। घर की अपेक्षा बाहरमें ज्यादा शान्ति मिलती है, इस भावनासे प्रोत्साहित होकर ज्ञान-पिपासु गृह-त्याग किया करते थे। अतः सिद्धार्थने भी इस परम्पराको निवाहा।[२] हम यह देख चुके हैं कि जीवनके

---

१ मज्झिम १७२४०

२—"He was probably not the first...........who in the midst of prospserity and comfort, has felt a yearning and a want which nothing could satisfy, and which has robbed of the is charm all earthly gains and hopes.

२८वें वर्ष तक वह अपने घरमें रहा और सांसारिक सुखोंका भी पूर्ण उपभोग किया। उसकी इच्छाओं को पूर्ण करनेके सभी इन्तजाम किये गये थे। स्वयं बुद्ध कहते हैं कि ज्ञान-प्राप्तिके पूर्व उन्होंने भी पूर्णरूपेण सांसारिक सुखोंका अनुभव किया था और इस अनुभवके बाद ही उनके मनमें यह भावना आई, "मैं क्या कर रहा हूं, मैं भी तो इसी क्षणभंगुर संसारका भोगी हूं" ऐसा समझने पर ही उन्होंने गृहत्याग किया था। इसी तरह की बात बुद्धने महानामको भी कहीं।[२] एक प्रधान पाश्चात्य विद्वानने ठीक ही कहा है कि आजतक विश्वके किसी भी धर्म के संस्थापकने इस प्रकार की स्वीकारोक्ति नहीं की थी।[३] गृह-त्याग करना ज्ञान-प्राप्तिका प्रथम मार्ग समझा जाता था।[४] वैदिक-कालमें भी इस प्रकारकी प्रथा थी, इसका उल्लेख हो चुका है। सिद्धार्थके समय भी ऐसे बहुतसे धार्मिक सम्प्रदाय थे जिनमें ऋषियोंका अपना संगठन था। ब्रह्मजाल सुत्तमें ५-६

........in case of Gautama, it arises more from sympathy with the sorrows of others than from any personal sorrow of one's own........a life of self-denial and earnest meditation may lead to some solution of the strange enigmas of life." Rhys Davids, Budhism, P.30.

२—मज्झिम १, ६१

३—Paul Dahlkd-"Budhist Essays" P.15.

४—बृहदाररायक उपनिषद

संप्रदायोंकी आलोचना बुद्धने की है और इसी प्रकार जैन-ग्रन्थोंमें ३६३ तकका उल्लेख है। वे साधारणतः ब्राह्मणों और श्रमणोंमें बँटे हुए थे। इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि सिद्धार्थ परम्परागत नियमोंसे काफी प्रभावित हुए थे। उनका अभियान विश्वका सबसे महत्वपूर्ण अभियान माना गया है, जिसका एक-एक डेग विश्वकी एक एक महान घटना का द्योतक है और जिसपर सदियोंसे लोगोंने फूलोंकी न्योछावर की है और उसे पवित्र तीर्थस्थानके रूपमें सुरक्षित रखा है।

किसी राजकुमारके लिये भिक्षुकका जीवन सहज नहीं, अतः उसे अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। प्रथम भिक्षाके बाद जब उसने भोजन किया तब उसे काफी तकलीफ हुई। इस प्रकारके जीवनका अनुभव तो उसे पहले नहीं था किन्तु धीरे-धीरे आत्म-संयम और नियमोंके पालनके बाद अपनेको उसने इस योग्य बना लिया। दिक्कतोंका सामना करने और उस पर विजय पानेके विचारसे उसने गृह-त्याग किया ही था। रहनेकी दिक्कत, खानेकी दिक्कत और अन्यान्य सांसारिक कठिनाइयाँ उसके समक्ष उपस्थित थीं। पत्तेका 'दोना' बनाकर उसने पानी पीनेका इन्तजाम किया। जब मनमें किसी प्रकारकी शंका होती तो वह अपने आपको यों समझाता—"सिद्धार्थ, तुमने तो जान-बूझकर ही सभी पदार्थों को ठुकराया है, फिर उनकी लालसा ही क्यों ?"

प्राचीन भारतमें ज्ञान-प्राप्तिके लिये कठिन तपस्याकी आवश्यकता थी। केवल किसी वस्तुको स्मरण कर लेनेके बाद कोई ज्ञानी नहीं कहला सकता था। ज्ञान प्राप्तिके लिये अनेकानेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। सिद्धार्थके पूर्व भी ज्ञान-पिपासु इस प्रकार की तपस्याके अभ्यस्त थे। सिद्धार्थने

ज्ञान और जीवनकी वास्तविक सुखप्राप्तिके लिये ही गृहत्याग किया था। वह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान एवं पूर्ण शान्तिकी खोजमें चला था और जबतक उसे वह प्राप्त नहीं हुआ, तब तक वह बेचैन रहा। गृह-त्यागके बाद शाक्य, कोलिय और मल्ल देशोंको लाँघता हुआ वह पूरबकी ओर चल पड़ा। इस विषयमें भी बौद्ध-साहित्यमें काफी मतभेद है१। धर्म-ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि प्रारम्भमें उसने दो गुरुजनोंसे धार्मिक शिक्षा ली, किन्तु उससे उसे पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ। वह उसके बाद ६ वर्षों तक और पाँच शिष्योंके साथ मिलकर तपस्यामें लीन रहा। उपाख्यानोंमें ऐसी कितनी कथायें आती हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है। सिद्धार्थ स्वयं कहता है कि वह पहले आलार कालामके पास गया। आलार कालामने कुछ योगकी विधियाँ बतलाईं, किन्तु सिद्धार्थकी जिज्ञासा उससे पूरी नहीं हुई। आलार-कालामने बतलाया कि तीक्ष्ण बुद्धि वालोंको ज्ञान प्राप्त करनेमें कुछ समय नहीं लगता। सिद्धार्थ उसके सिद्धान्तोंसे शीघ्र ही परिचित हो गया। सिद्धार्थकी ज्ञान-पिपासा इतनी थी कि उसने विभिन्न प्रश्नों पर आलारसे तर्क-वितर्क करना शुरू किया। आलारने उसे शून्यता अथवा अभाव को विशेषता पर प्रवचन दिया। आलारने उसे बराबरीका अधिकार दिया और उसका बहुत समादर भी किया। किन्तु आलारके इस सिद्धान्तमें सिद्धार्थको निर्वाणकी झाँकी नहीं मिल सकी और उसे जिस चिर-शान्तिकी कामना थी वह

---

१ जातक १,६५; महावस्तु २;१८६, ललित विस्तर २२७ (२२५); मज्झिम १,२३, ११७, १६७, २४७—६ २.९३-४

भी अतृप्त रही। इस प्रकार ज्ञानकी खोजमें उसे कई देश देखनेका अवसर प्राप्त हुआ। अन्तमें वैशाली होते हुए वह राजगृह (राजगीर) पहुँचा।

अपनी ज्ञान-पिपासाको बुझानेके लिये वह अब रामपुत्र उद्रक (उद्दकरामपुत्र) की सेवामें उपस्थित हुआ। वहाँ भी उसे कुछ योगका ज्ञान प्राप्त हुआ किन्तु उससे भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह चिर-शान्ति और निर्वाणकी खोजमें निकला था। रामपुत्रके यहाँ भी ज्ञान प्राप्त करने में विलम्ब नहीं हुआ और उसने भी उसे बराबरीका स्थान दिया। यह यहाँ प्रत्यक्ष हो गया कि ब्राह्मणोंके दर्शन एवं योगसे उसकी ज्ञान-पिपासा को सान्त्वना नहीं मिल सकती थी और जिसी दिन सिद्धार्थ उन दोनों शिक्षकोंसे प्रभावित नहीं हुआ, उसी दिन मानव के धार्मिक इतिहासमें एक जबर्दस्त परिवर्तन आया और सिद्धार्थके बुद्ध होनेकी बात तय पा गई२। रामपुत्रने सिद्धार्थ को अपने शिष्योंका गुरु बना दिया। सिद्धार्थ असंतुष्ट रहा। जन्मसे ही उसे जीवनमें एक प्रकारका असन्तोष था और उसे दूर करना ही उसके जीवनका उद्देश्य था। उसे प्रचलित हिन्दू-सिद्धान्त, जिसमें कर्मकाण्डकी प्रधानता थी, जिसमें यज्ञ-हवन आदिकी प्रथा प्रचुर मात्रामें थी, सन्तोषजनक नहीं जान

---

२ "It is possible that, had Gautama chanced to meet, in his earliest wanderings, two teachers of the highest truth, the whole history of the old world might have been changed"—Woroley—"Concepts of Monism" P. 197.

पड़ा। उसे अनुभव हुआ कि सत्य उससे बहुत दूर था। सत्य की तुलना वह रत्न से करता, जो पृथ्वीमें बहुत नीचे अन्धकारमें ढका रहता है। उस समयके आडम्बरमय और हिंसापूर्ण कर्मकाण्डमें, सिद्धार्थको वास्तविक धर्म और वास्तविक शान्ति नहीं दीख पड़ी। वह ऐसा धर्म-पथ चाहता था जिससे जन साधारण का कल्याण हो। अतः सिद्धार्थ को औरभी कठिन मार्ग ग्रहण करना पड़ा और इस प्रयासमें रामपुत्रके पाँच शिष्य उसके साथ हो गये। सिद्धार्थ के इस प्रयासकी तीन उपमायें हमें मिलती हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति आगकी खोजमें लकड़ीका भींगे पत्थर पर रगड़ कर आग नहीं पा सकता है, उसी प्रकार कोई पुरुष अपनी उत्तप्त भावनाओंको दबाये बिना साधुत्व प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी प्रकार की और कई उपमायें हैं[२]।

रामपुत्रके आश्रमसे पाँच विद्यार्थियौंको साथ लेकर सिद्धार्थ अब कठिन मार्गपर अग्रसर हुए। शारीरिक तपस्या का अभ्यास करने वह गयाके पहाड़ी जंगलों की ओर बिदा हुए। वहाँ निरंजना नदीके किनारे उरुबिल्व (उरबेला) नामके स्थानपर ६ वर्षोंतक घोर तप करते-करते उनका केवल हाड़-चाम बाँकी रह गया, पर जिस वस्तुकी उन्हें खोज थी वह फिर भी न मिली। कहा जाता है कि एक बार कुछ नर्तकियाँ गाती हुई उस जंगलमेंसे गुजरीं और उनके गीतोंकी ध्वनि सिद्धार्थके कानोंमें पड़ी। वे जाते-जाते गा रही थीं कि अपनी वीणाके तारको ज्यादा ढीला न करो, नहीं तो वह बजेगा नहीं और उसे इतना कसो भी नहीं कि वह टूट जाय। इससे सिद्धार्थको बड़ी

---

२ ललित विस्तार (२४६)—३०६, महावस्तु २, १२१—

शिक्षा मिली। बौद्ध-सुत्तोंमें भिन्न-भिन्न रूपोंमें वीणाकी बात पाई जाती है और एक स्थानमें ऐसा उल्लेख है कि बुद्धके पास एक गायक आया, और उन्होंने वीणाके दृष्टान्तसे उसे अपने मध्य मार्गका उपदेश दिया। उपरोक्त कथामें ऐतिहासिक तथ्य कितना है यह कहना मुश्किल है। उरुवेला पहुँचने पर सिद्धार्थको सन्तोष हुआ और उस जगहसे वे बहुत प्रभावित हुए थे। उरुवेलाकी भीषण तपस्याके विषयमें सिद्धार्थ स्वयं कहते हैं, जो नीचे दिया जाता है—

"मेरा शरीर दुर्बलताकी चरम सीमातक पहुँच गया था। जैसे आसीतिक की गाँठे हों वैसेही मेरे अंग प्रत्यंग हो गये थे। जैसे ऊँट का पैर हो वैसे ही मेरा कूल्हा हो गया था। जैसे सूओं की पाँती है वैसे ही पीठ के काँटे हो गये थे। जैसे शाल की पुरानी कड़ियाँ टेढ़ो मेढ़ो होती हैं, वैसो ही मेरी पंसुलियाँ हो गई थीं। जैसे गहरे कूएं मे तारा हो वैसी ही मेरी आँखें दिखाई देती थ ... कच्ची तोड़ी कड़वी लौकी हवा-धूप से चुपक जाती है, मुर्झा जाती है, वैसेही मेरे सिरकी खाल मुर्झा गई थी। उस अनशनसे मेरी पीठके काँटे और पैरकी खाल बिलकुल सट गई थी। यदि मैं पाखाना या पेशाब करनेके लिये उठता तो वहीं गिर पड़ता। मनुष्य कहते— "श्रमण गौतम काला है,' कोई कहते काला नहीं साँवला। मेरे गोरे चमड़ेका रंग नष्ट हो गया था। लेकिन मैंने इस तपस्यासे उस चरम दर्शनको न पाया'[1] "तब विचार हुआ कि बोधि (ज्ञान) के लिए क्या कोई दूसरा मार्ग है—तब मुझे हुआ, मैं पिता शाक्यके खेतपर जामुनकी ठंडी छायाके

---

१ माझिम—(हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ—३४

नीचे बैठ प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार किया था। शायद वह मार्ग बोधिका हो। किन्तु इस प्रकारकी अत्यन्त कृश पतली कायासे वह ध्यान-सुख मिलना सुखकर नहीं है। फिर भी मैं स्थूल-आहार ग्रहण करने लगा। उस समय मेरे पास पाँच पाँच भिक्षु रहा करते थे। जब मैं स्थूल आहार ग्रहण करने लगा तब वे पाँचो भिक्षु उदासीन हो चले गये।" आगेकी जीवन-यात्राके विषयमें सिद्धार्थ स्वयं कहते हैं—२" मैंने एक रमणीय भूभागके बनखंडमें एक नदी (निरजना) को बहते देखा। उसका घाट रमणीय और श्वेत था। यहीं ध्यान-योग्य स्थान है ऐसा सोचकर वहाँ बैठ गया और जन्मके दुष्परिणामको जान अनुपम निर्वाणको पा लिया। मेरा ज्ञान दर्शन बन गया, मेरे चित्तकी मुक्ति अचल हो गई, यह अंतिम जन्म है फिर अब दूसरा जन्म नहीं होगा।"

जब साथियोंने सिद्धार्थको छोड़ दिया और वे यह समझकर बनारस चले गये कि सिद्धार्थ अकेला उस जंगलमें देहातको कन्याओंसे भिक्षा माँग धीरे-धीरे अपना स्वास्थ्य लाभ करता है। तो निरंजना के तट पर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। यह महान पुरुष होनेका प्रथम लक्षण था क्योंकि वैसे व्यक्ति वार-वार असफल होने पर भी निरुत्साह नहीं होते और अपने उद्देश्य से पीछे नहीं हटते हैं। उस गाँवमें जहाँ सिद्धार्थ तपस्यामें लीन थे, सुजाता नामकी एक लड़की रहती थी। परम्परागत धर्ममें विश्वास रखनेवाली सुजाता यह समझती कि पीपल-वृक्षकी जड़में जल ढालने से सर्वोत्तम पति मिलेगा और पुत्र-रत्न पैदा होगा। बैसाख पूर्णिमाके दिन उसने पुत्र-

२ मज्झिम—वहीं—पृष्ट—१०५

कामनासे एक विशेष प्रकारका पायस (खीर) किसी महात्मा या देवताको भोजन करानेका संकल्प किया था। किंवदन्ती है कि उसने हजार गौओंके दूधसे दो सौ गौओंको पाला था और उन दो सौके दूधसे चालीसको और फिर इसी प्रकार आठको और उन आठका दूध उसने एक गायको पिलाया और उस गायके दूधसे पायस बनाया। वह खीर बनाकर पीपलके नीचे सिद्धार्थके निकट लाई और सिद्धार्थने उसे ग्रहण किया।

सिद्धार्थका व्यक्तित्व भव्य और ज्योतिर्मय था। सुजाता को ऐसा प्रतीत हुआ कि साक्षात् उसके इष्टदेव प्रसाद लेने आ गये थे। वह उस प्रसादको बड़ी नम्रताके साथ वहाँ रख कर चली गई थी। सिद्धार्थने प्रेमसे उसी पीपलके१ वृक्षके नीचे सुजाताके प्रसादको ग्रहण किया और ज्ञान-प्राप्तिके लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये। उस समयसे ही उस वृक्षको बोधिवृक्ष कहा जाने लगा है। सुजाताके पायस ग्रहण करनेके बाद सिद्धार्थ ने यह निश्चय किया था कि अगले सात सप्ताह तक वह कुछ

१—"The celebrated Bodhi tree still exists, but is very much decayed; one large stem, with three branches to the westward, is still green, but the other branches are bankless and rotten. The tree must have been renewed fraquently, as the present Pipal standing on a terrace at least thirty feet above the level of the surrounding country"—Cunnigham, "Archaeological Reports" 195.

नहीं खायंगे। भोजन करनेके बाद उन्होंने मध्याह्नमें शाल-बन में आराम किया और संध्या समय वह बोधिवृक्षकी ओर जा ही रहे थे कि रास्तेमें उन्हें स्वस्तिक नामक घास-काटने वालेने आठ बोझा घास उपहार दिया और उसीसे सिद्धार्थने अपना आसन बनाया। उस दिनसे उस वृक्षके नीचे अपने मुँहको पूरबकी ओर करके ध्यानमग्न हो गये और यह प्रतिज्ञा कर ली कि चाहे उनके शरीरके हाड़, माँस और चमड़े सूख क्यों न जायँ, वह तबतक न उठेंगे जबतक कि उन्हें ज्ञान प्राप्त न हो जायगा। तब से वह ध्यान-मग्न होकर काम, भव (जीने की इच्छा), अविज्जा (अविद्या), मिच्छा-दिट्ठी (झूठा विचार) इत्यादिको नष्ट करने और उनपर विजय पानेका प्रयत्न करने लगे। सत्य संकल्प ध्यान-मग्न सिद्धार्थकी अन्तिम परीक्षा भी कम रोमांचकारी नहीं हुई।

इस प्रकार ध्यान लगाते समय मारने उनपर आक्रमण किया। मनुष्यकी बुरी वासनाओंका ही नाम मार है। मारने अपनी मारकी सेनाओंसे भीषण आर्त्तनाद करवाना शुरू किया और उसकी अजेय सेना चारों दिशाओंमें छा गई। किन्तु इस विघ्न-बाधासे सिद्धार्थ विचलित नहीं हुए। शीघ्र ही सिद्धार्थने मार पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। उनके चित्तके विक्षेप और विक्षोभ शान्त हो गये। तब उस विक्षेप हीन ध्यान अथवा समाधिमें उन्हें वह अमर ज्योति प्राप्त हुई जिसके लिये वह इतने दिनोंसे लालायित थे। उस दिनसे ही सिद्धार्थ गौतम बुद्ध हुए और जिस पीपलके नीचे उन्हें बोध हुआ वह भी पवित्र बोधिवृक्ष कहलाने लगा। सिद्धार्थका ज्ञान-दर्शन यह था—"दुःख है, दुःखका हेतु (=समुदय), और दुःखका विशेष (=विनाश) है तथा दुख-निरोध

का मार्ग है। जो धर्म (=वस्तुएँ घटनायें) हैं, वह हेतुसे उत्पन्न होते हैं। उनके हेतुको, बुद्धने कहा। और उनका जो निरोध है (उसे भी,), महाश्रमणका ऐसा मत है[1]"। सिद्धार्थ ३५ वर्षकी आयु (ईसा पूर्व ५२८) में ज्ञान प्राप्त कर 'बुद्ध' हुए। सिद्धार्थको जब ज्ञान-ज्योति प्राप्त हुई तब उन्हें सत्य प्रत्यक्ष होने लगा और जीवन-मरणका रहस्य स्वयमेव ज्ञात होने लगा। शंका-समाधानकी अवस्था अब नहीं रही। अकारण कोई घटना नहीं घट सकती। उसे कर्मके अटल सिद्धान्तका पता लगा और उन्होंने कार्य-कारणके तत्वको भौतिक संसार तक ही आबद्ध नहीं रखा बल्कि उसे अपने कार्यका मूल-मन्त्र बनाया। संसारकी क्षणभंगुरताकी ओर उन्होंने लोगोंका ध्यान आकर्षित किया और यह बतलाया कि परिवर्तनशीलता सर्वत्र व्याप्त है।

उपरोक्त कथानकोंके बाद यह आवश्यक है कि हम बौद्ध ग्रन्थों एवं अन्य साधनों के आधार पर इसके ऐतिहासिक तथ्य का अवगाहन करें। जातकोंसे हमें पता चलता है कि सिद्धार्थ गृह छाड़नेके बाद एक सप्ताह तक अनुपियामें ठहर कर पैदल मगधकी राजधानी राजगृह (राजगीर) पहुँचे। तबसे ही उनका भिक्षुत्व शुरू हुआ। राजकर्म्मचारियोंने राजा बिम्बिसारको सिद्धार्थके शुभागमनका समाचार दिया। बिम्बिसार आश्चर्यचकित होकर सिद्धार्थको देखता रहा और उसे पीछा करने को कहा। उसका विश्वास था कि यदि वह अब्राह्म होगा तो विलीन हो जायगा, अगर ईश्वरतत्व

१—ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतु तेषां तथागतो ह्यवदत्।
तेषां च यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः॥

होगा तब हवाके माध्यमसे चलेगा, अगर नाग होगा तब पृथ्वीमें समा जायगा और अगर मनुष्य होगा तो उसकी भिक्षा खा लेगा। देखा गया कि वह पाण्डव पर्वत की ओर जा रहा था। बिम्बिसारको आनन्द हुआ और वह उसके स्वभाव, आचरण तथा वार्तालापसे इतना प्रसन्न हुआ कि उसे अपना राज्य तक देनेको प्रस्तुत हुआ किन्तु सिद्धार्थने उसे ठुकरा दिया किन्तु यह वचन दिया कि ज्ञान-प्राप्त करनेके पश्चात् वह उसके राज्यमें आयेगा। वहाँ होता हुआ सन्यासी सिद्धार्थ आलार और उद्रक की सेवामें पहुँचा। थेरीगाथा टीकामें कहा गया है कि सिद्धार्थ सर्वप्रथम भग्गवके आश्रममें गया। इस विषयमें बहुत सी बातें पब्बज्जसुत्तमें भी मिलती हैं। किन्तु सभी जातकोंसे इसमें काफी विभिन्नता है। एक स्थानमें यह दिखलाया गया है कि राजा बिम्बिसार सिद्धार्थके परिवारके विषयमें पूछता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही घटनाका विभिन्न उल्लेख ग्रन्थोंमें सुरक्षित है। महावस्तुके अनुसार तो सिद्धार्थ सर्वप्रथम वैशाली गया, उसके बाद आलारके पास और फिर वहाँसे राजगह और वहीं उद्रककी शिक्षामें दीक्षित हुआ[1]।

ललित-विस्तरमें कथा और भी विस्तृत है। उसमें कहा गया है कि साधुका पोशाक पहननेके बाद सिद्धार्थका स्वागत ब्राह्मण स्त्री शाकीके आश्रममें हुआ, और उसके बाद ब्राह्मण स्त्री पद्मा के यहाँ और उसके बाद ब्राह्मण ऋषि रैवत और त्रिमण्डीक के पुत्र राजकके यहाँ होता हुआ वह वैशाली पहुँचा। ज्ञान प्राप्त होनेके पूर्व वैशाख शुक्ल चतुर्दशीकी रात्रिमें सिद्धार्थने पाँच स्वप्न देखे। इन स्वप्नोंका उल्लेख धर्म-ग्रन्थोंमें निम्न-

---

१—महावस्तु २, ११७—२०; २, १९५—२०६

लिखित है१— (१) संसार पलंग जैसा ज्ञान पड़ा जिसमें हिमा- लय तकियाका काम कर रहा था। उसका बायाँ हाथ पूर्वी महासमुद्र, दाहिना हाथ पश्चिमी और पाँव दक्षिणी महा समुद्रमें डुबा हुआ मालूम पड़ा। इसका अर्थ यह कि तथा- गतको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया।२ उसके हाथसे एक तिरिया नामक पौधा निकला और आकाश छू दिया। यही शुद्ध अष्टांगिक मार्ग था।३ उजले-उजले कीड़ोंने जिनके सिर काले थे उसके घुठनेको ढक लिया। ये सब उनकी शरणमें आश्रय लेनेवाले शिष्य थे।४ चारों दिशाओंसे चार रंग के पक्षी आये और उसके पाँव पर गिरते ही सबके सब उजले हो गये। ये चार वर्ण थे जो अपना घर-द्वार छोड़ कर तथागतसे शिक्षा लेने आये थे।५ वह गोबरकी पहाड़ पर भ्रमण कर रहा था।

स्वप्न देखनेके दूसरे दिन सिद्धार्थको ज्ञान प्राप्त हुआ था। पधान-सुत्तमें एक ऐसा उपख्यान है जिसमें मारका उल्लेख है। मारने उसे तपस्यासे विचलित करनेका अनेकानेक प्रयत्न किया। ललित-विस्तरके अनुसार तो मारने ६ बर्षों तक उसका पीछा किया किन्तु अन्तमें उसे निराश होकर लौटना पड़ा। पाली ग्रन्थोंमें तो मारके शब्द ही सुरक्षित हैं। मार कहता है—"सात वर्षों तक मैंने महाप्रभुका पद-पद पर पीछा किया किन्तु उस मुक्त चिर-सतर्क एवं सिद्ध महापुरुषके पास फटकने तकका अवसर प्राप्त नहीं हुआ। जिस प्रकार पत्थर के टुकड़ेको चरबी समझकर कौआ उसपर दौड़ता है, ठीक

१—अंगुतर ३, २४०; महावस्तु २, १३६।

ऐसी घटना होती है।१ बौद्ध साहित्यमें हमें जिस युगका चित्रण मिलता है, उससे यह ज्ञात होता है कि उस युगमें लोग आत्माकी मुक्तिके लिये बहुत उत्सुक थे। ऐसा प्रतीत होता कि आत्माको लौकिक बन्धनोंसे मुक्त करनेका प्रयत्न सर्वव्यापी था। जैसा कि सिद्धार्थने दिखलाया कि सत्यके मार्ग पर अग्रसर होनेसे शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति मिल सकती है, सत्यको प्राप्त करना ही धार्मिक जीवनका सर्वोच्च उद्देश्य समझा जाता था। विश्वकी अस्थिरता एवं क्षणभंगुरताको समझने पर ही लोग सत्यकी खोजमें निकल सकते हैं। इस प्रकारकी भावना सिद्धार्थके समय धार्मिक जिज्ञासुओंमें काफी प्रचलित थी। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान प्राप्तिके लिये ही गृह-त्याग कर साधु बनता था। अतः इसमें संदेहकी कोई बात नहीं कि सिद्धार्थ के बुद्ध होने की जो कहानियां हमें साहित्योंमें मिलती हैं उसमें ऐतिहासिक तथ्योंका भी समावेश है।२

१—"In the most widely different periods of history the notion of a revolution or change of the whole man perfectly itself in one moment meets us in many forms; a day an hour it must be possible to determine, in which the unsaved and unenlightened becomes a saved and enlightened man." Oldenberg, Buddha, P. 109–110.

२—"in the narrative how Sakya youth became the Buddha, there is really an element of historical memory"—Oldenberg—P. 112

बुद्धत्व प्राप्त करनेके बाद सिद्धार्थ पुनः संसारमें उपस्थित हुए। किन्तु संसारमें उपस्थित होनेके पूर्व कुछ दिनों तक उसी बोधि-वृक्षके समीप मुक्ति एवं ज्ञानका आनन्द लेते रहे।[१] कठिन संघर्षके बाद जो विजय प्राप्त हुई थी, उसे किसी दूसरे को देनेके पूर्व उन्होंने स्वयं आत्मसात किया। अविद्या से आकार और आकारसे चेतना आती है। इसी प्रकार जन्म से मृत्यु, दुःख और निराशा इत्यादिका आगमन होता है। अगर हृदयसे इच्छाको हटा दिया जाय तो अविद्या स्वयं नष्ट हो जाती है और इससे उत्पन्न होनेवाली सभी वस्तुएँ भी। उत्पत्तिके विषयमें यदि वास्तविक ज्ञान हो जाय तो शंकाका समावेश नहीं रह जाता। इस प्रकार के कई उल्लेख मिलते हैं जिनमें बुद्ध आनन्दसे कहते हैं कि उनका धर्म प्रचार किस प्रकार हो जिससे कि मानव-मात्र का कल्याण हो सके। ज्ञानो-पार्जनके बादकी घटनाओंमें बुद्धकी एक ब्राह्मणके साथ भेंट का भी उल्लेख आता है जिसके आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि बौद्ध और ब्राह्मण धर्मके बीच किसी प्रकारका सैद्धान्तिक संघर्ष हुआ होगा। इस सिलसिलेमें बुद्धसे ब्राह्मणोंके गुणोंके विषयमें पूछा गया। उत्तरमें बुद्धने कहा—"सच्चा ब्राह्मण वही है जिसने अपने हृदयसे सभी दुर्गुणोंको निर्वा-सित कर दिया है, जिसमें घृणाकी भावना नहीं है, जो अशुद्ध नहीं है और जिसने अपने आप पर विजय प्राप्त कर ली है।

ज्ञान प्राप्त करने और धर्म-चक्र प्रवर्त्तनके बीच में बहुत सी घटनायें हुईं। बुद्ध अब एक सिद्ध पुरुष हो चुके थे। उस समय भी प्रकृतिके तत्वोंने उनकी शान्त

१—महावग्ग।

अवस्थामें कष्ट पहुँचानेकी चेष्टायें कीं। अंधड़ उठे और सात दिनों तक वर्षा होती रही। अँधेराका भी साम्राज्य छा गया। ऐसी अवस्थामें सर्पराज मुचलिन्दने बुद्धकी रक्षा की और सात दिनोंके बाद जब आसमान साफ हुआ तब फिर मुचलिन्द छिप गया। दूसरी घटना भी उल्लेखनीय है। दो सौदागर उस रास्तेसे जा रहे थे। उन्हें एक प्रेरणा मिली कि समीप ही बुद्ध हैं, उनका दर्शन करो और उन्हें भोजन कराओ। सौदागरोंके नाम तप्पुस्स और मल्लिक थे। वे उत्कलसे आ रहे थे। उन दोनोंने बुद्धका दर्शन किया और चरण छूकर प्रणाम करनेके बाद अनुरोध किया कि वे उन्हें उपासक बना लें। उन दोनों व्यक्तियोंने ही सर्व-प्रथम "बुद्ध" और "धम्म" को ग्रहण किया। स्मरण रखना चाहिये कि उन लोगोंके सामने बुद्ध ने धर्म-प्रचार नहीं किया। वे अभीतक स्वयं अपने लिये ही बुद्ध थे, संसारके लिये नहीं। बहुत दिनों तक मनमें यह संघर्ष होता रहा कि संघर्ष द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान मानव-कल्याण के लिये प्रचरित करें या नहीं; ठीक इसी अवस्थामें ब्रह्मा सहमपति बुद्धके समक्ष उपस्थित हुए और उनसे धर्म-प्रचार करनेका अनुरोध किया। सहमपतीकी बात सुनकर बुद्ध भी प्रस्तुत हुए। अपने धर्मका दरवाजा उन्होंने सबके लिये खोल दिया। इस प्रकार महामानव बुद्धके जीवनकी अन्तिम समस्याका भी समाधान हो गया।

बुद्धत्व प्राप्त करनेके बाद ४५ वर्षों तक उन्होंने घूम-घूमकर अपने धर्मका प्रचार किया और इससे यह पता चलता है कि उनका जीवन निरन्तर कर्मठ और सक्रिय बना रहा। ४५ वर्षोंके परिभ्रमण में भी उनके जीवनके नियमोंकी एकता बनी रही। बुद्ध-घोषके लेखोंसे उनके दैनिक जीवनका पूरा-पूरा

पता लगता है। प्रतिदिन वह ब्राह्म मुहूर्त में जगते और नित्य क्रियादिसे निबट लेते थे। इसके बाद एकान्त स्थान में जाकर वे ध्यान करते थे। तब भिक्षाटनके लिये निकलते। भिक्षाटनके लिये निकलनेके पूर्व वह तीन चीथरोंसे अपने शरीरको ढँकते और तब भिक्षाटन वाला कटोरा लेकर, कभी-कभी अकेला और कभी-कभी शिष्योंके साथ भिक्षाके लिये निकलते। समीपके नगर अथवा गाँवोंमें हो जाकर वह भिक्षाटन करते थे। तब लोग उनके महत्वको समझ कर भिक्षा देने में एक दूसरेसे बढ़नेकी कोशिश करते और इस प्रकार कोई दस, कोई बीस और कोई सौ के भोजनके लिये इन्तजाम करके बुद्धसे अनुरोध करता कि वे उसके यहाँ ठहरें। ऐसा कहकर वे उनका कटोरा ले लेते और उनके बैठनेके लिये चटाई बिछा देते और तबतक उनकी सेवामें लगे रहते जबतक भोजन समाप्त न हो जाय। उसके बाद आध्यात्मिक प्रश्नों पर बुद्धका प्रवचन शुरू होता और इस प्रकार प्रवचन होता था कि साधारण व्यक्ति भी समझ सके और उस पथ पर चलकर मुक्ति लाभ कर सके। इसके बाद उठकर वह अपने ठिकाने पर चलनेके लिये प्रस्तुत होते। वे वहाँसे उठकर बाहर दरवाजे पर तब तक ठहरते जबतक उनके सेवक भोजन करके न चले आते। इस प्रकार वह मध्याह्नकाल तक व्यस्त रहते थे। तब वे अपने शिष्योंसे उनके जीवनके आदर्शोंको पानेके लिये प्रयत्न करने कहते थे। पश्चात् वे प्रत्येकके ध्यानके लिये विषय चुन देते थे और वे लोग एकान्त स्थानमें जाकर उस पर ध्यान करते थे।

कहीं-कहीं पर यह भी उल्लिखित है कि वह दोपरकी कड़ी धूप

में भी बैठकर ध्यान किया करते थे १। दोपहरमें आराम करनेके बाद वे विछावनसे उठकर अपने समीप रहने वालों की परिस्थिति पर विचार करते और उनकी भलाई जिस प्रकार हो सके, उसपर सोचते। संध्या समय गाँव और शहरके लोग उनके समीप आते और तब उनलोगों को प्रवचन-भवनमें आरामसे बैठा कर उनलोगों के विश्वास के अनुसार उन्हें अपना धर्म समझाने की कोशिश करते। साधारणतः सत्यकी विशेषता पर ही प्रवचन हुआ करता था। समयानुसार सभा समाप्त होती। तत्पश्चात् वे पुनः स्नान करते और इसी बीच उनके सेवक उनकी कोठरीको फूल इत्यादि से सज देते थे। वह कुछ काल तक अकेले बैठते और उसके बाद भिक्षुगण उनके समीप आते तथा उनसे सत्यके सम्बन्धमें प्रश्न पूछते। इस प्रकार रात्रिका प्रथम पहर बीतता और वे सभीकी इच्छाओंको सन्तुष्ट करके सोने का अवसर पाते। फिर रातमें भी कुछ समय तक वह ध्यानस्थ रहते और तब उसके बाद आराम करते। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि उनके दो मुख्य काम थे—एकतो स्वयं ध्यान करना और दूसरा साधारण मानव समाजकी सतत सेवा करना।

१—संयुक्तनिकाय—११४६—४८

सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद निम्न लिखित स्थानों में वर्षाऋतु बितायी—

सिद्धार्थ— जन्म—ई० पू. ५६३—ग्राम लुम्बिनी; बुद्धत्व— „ ५१८—बोध गया } निर्वाण- ४८३ ई० पू० कुसीनारा

स्थान का नाम	तिथि
१ ऋषिपतन (सारनाथ)	.... ५२८ (ईसा पूर्व)
२ और ४ राजगृह	.... ५२७—५२५
३ वैशाली	.... ५२४
६ मंकुल पर्वत (बिहार ?)	.... ५२३
७ ....तत्रयस्त्रिंश (?)	.... ५२२
८ सुंसुमारगिरि	.... ५२१
९ कौशाम्बी	.... ५२०
१० पारिलेयक	.... ५१९
११ नाला (बिहार ?)	.... ५१८
१२ वैरंजा (?)	.... ५१७
१३ चालिय पर्वत ?	.... ५१६
१४ श्रावस्ती	.... ५१५
१५ कपिलवस्तु	.... ५१४
१६ आलवी	.... ५१३
१७ राजगृह	.... ५१२
१८ चालिय पर्वत ?	.... ५११
१९ चालिय पर्वत ?	.... ५१०
२० राजगृह	.... ५०९
२१—४५ श्रावस्ती	.... ५०८—४८
४६ वैशाली	.... ४८३

पञ्चम अध्याय

भ्रमण और धर्म-प्रचार

(क) *उपदेश-प्रदान* :—बोधि-वृक्षके नीचे ही सिद्धार्थको ज्ञान प्राप्त हुआ और सत्य से साक्षात्कार हुआ। फिर भी वे वहाँ पर ध्यान-मग्न रहे। उनके मनमें यह शंका उत्पन्न हुई कि इस आविष्कृत सत्यका उपदेश लोगोंको दिया जाय अथवा नहीं।[१] मानव-समाज एवं प्रकृति से वे पूर्णरूपेण परिचित थे अतः उन्हें शंका होना अनिवार्य था। उनका धर्म सीधा और स्पष्ट था। उसमें कहीं बाह्य-आडम्बरका स्थान नहीं था। वे दुर्वृत्तियोंको रोकना चाहते थे और सत्य कार्यको ही महत्त्व देते थे। वे चाहते थे कि मनुष्य संसारकी क्षणभंगुरताको पहचाने और सदाचारी बने

१—It is one thing to have realised for one's self the truth of deliverance, and another to proclaim it to the world. Buddha has accomplished the first; the resolution to do the second is not yet firmly fixed with him : apprehensions and doubts remain to be overcome before he adopts this resolve. Openberg 'Buddha' P. 120.

ताकि उसे निर्वाण प्राप्त हो सके। वे भोग-विलासमें लिप्त संसा
को अपने सरल शान्तिवादके द्वारा नाशके रास्तासे बचान
चाहते थे। वे प्रत्येक मनुष्यको सच्चरित्र बनाना चाहते थे
उनका सम्पूर्ण जीवन कर्मशील रहा, इसमें सन्देह नहीं। बहु
तारतम्यके बाद उन्होंने उपदेश-प्रदान करने का निश्चय किय
क्योंकि उनका जीवन मानवताकी बुराइयोंको दूर करनेके लिये
व्यग्र हो रहा था। उपदेश-प्रदान करनेके लिये वे निरंजनाके
तटको छोड़कर आगे बढ़े।२

एक बार बुद्ध शान्त होकर बैठे हुए थे कि उनके मनमें
एक भावना उठी। भावना यह थी कि जिस सत्य का उन्हें
साक्षात्कार हुआ है, वह यद्यपि सरल एवं शान्त है
तोभी उसे समझना अथवा परखना कठिन है। केवल
बुद्धिमान ही उसे समझ सकते हैं। मनुष्य तो पार्थिव सुख
माया-मोह और स्वार्थमें इतना मग्न है कि बुद्धके इस साधारण
विचारको वह अच्छी तरह नहीं समझ सकेगा। उनके
विचारोंको समझनेका अर्थ होगा पार्थिव सुखोंको तिलांजलि
देना। ऐसा करनेसे ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है। बुद्ध यह
समझते थे कि वे यदि इस धर्मका प्रचार करें और लोग उसे
नहीं समझें तो उन्हें लाभके बदले कष्ट ही सहन करना
पड़ेगा। इसलिये उन्होंने सोचा कि ध्यान-मग्न रहना ही
अच्छा होगा। तब ब्रह्मासहमपतिने सोचा कि यदि
बुद्ध कहीं ध्यान-मग्न ही रह गये और अपने धर्मका
प्रचार नहीं किया तो यह विश्व नष्ट हो जायगा और जिस
उद्देश्यसे बुद्धका जन्म हुआ था वह भी निरर्थक चला

२—महावग्ग १,५,२ देखिये मज्झिम भी

जायगा। ब्रह्मासहम्पति स्वर्गसे अवतीर्ण होकर बुद्धके समक्ष उपस्थित हुए और विनम्र होकर बुद्धसे बोले—"महाप्रभो—आप अपने धर्मका प्रचार करें! संसारमें अभी भी ऐसे व्यक्ति हैं जो पार्थिव सुखोंको तुच्छ समझते हैं। यदि आपका उपदेश नहीं श्रवण करेंगे तो वे नष्ट हो जायेंगे और श्रवण करने पर वे आपके भक्त हो जायँगे।" इस प्रकार ब्रह्मासहम्पतिने उनसे तीन बार अनुरोध किया और तब उन्होंने धर्म-प्रचार करनेका निश्चय किया। उन्होंने अपने ज्ञान चक्षुसे सम्पूर्ण विश्वका अवलोकन किया और उससे संसार के सभी मनुष्यों के विषयमें आत्मज्ञान हुआ। उन्होंने यह सोचा कि सर्वप्रथम किसको उपदेश प्रदान किया जाय। उन्होंने सर्व प्रथम आलारकालाम को ही उपदेश प्रदान करना चाहा किन्तु दैवी साधनों से यह पता चला कि सात दिन पहले ही वह काल कवलित हो चुका है। उसके बाद उन्होंने (रुद्रक) के विषय में सोचा किन्तु वह भी एक ही दिन पहले काल-कवलित हो चुका था। तब उन्होंने उन पाँच ऋषियों के विषय में सोचा जो उन्हें त्यागकर चले गये थे और उन्हें यह पता चला कि वे लोग बनारसमें रहते हैं। अतः बुद्ध उसी ओर अग्रसर हुये।

बनारस ही प्रथम स्थान है, जहाँ बुद्धने सर्वप्रथम उपदेश दिया था। ऋषिपतन (वाराणसीके) मृगदाव में बुद्ध ने धर्म का वह लोकोत्तर चक्र चलाया जो किसी श्रमण या ब्राह्मण ने, किसी-देवता या मारने, और सृष्टिमें किसी ने कभी नहीं चलाया था [1]। ऋषिपतन के मृगदाय [2] में ही उनका

[1] महावग्ग—१,१

[2] जिस स्थानको आजकल का सारनाथ सूचित करता है।

यह धर्म-चक्र प्रवर्तन हुआ। अबतक अनेक दिग्विजयी राजा चक्रवर्ती होने की महत्वाकांक्षा में अपने पड़ोसके देशों की विजय करने की चेष्टा किया करते थे। उनमें से किसी की भी दृष्टि उतनी दूरतक न गई थी, किसीकी विजय-कामना उतनी व्यापक न हुई थी, किसी चक्रवर्ती का स्वप्न उतना विशाल नहीं हुआ था, जितना बुद्ध का। बुद्ध स्वप्नदर्शी ही नहीं प्रत्युत अत्यन्त कर्मठ व्यक्ति थे। बनारस पहुँचनेके पूर्वकी एक घटना भी उल्लेखनीय है। बनारस जानेके पूर्व वे कुछ दिनों तक उरुवेला में ठहरे थे। गया और बोधगया के बीचवाली सड़क पर उन्हें एक आजीविक साधु उपक से भेंट हुई। उपक ने पूछा आप कौन है? बुद्धने उत्तर दिया—"मैं ज्ञान प्राप्त करचुका हूँ और निर्वाण भी। विश्वमें मेरा कोई शत्रु नहीं है। मैं धर्मचक्र-प्रवर्तन के लिये काशी जा रहा हूँ"। उपक के यह पूछने पर कि वे लोग असीमित विजेता थे, बुद्ध ने उत्तर दिया—" मेरे जैसा वे भी विजेता हैं जिन्हों ने आसबों (आसवों) पर विजय पाई है। उपक! चूंकि मैंने तो बुरी चीजों को जीत कर अपने अधीन कर लिया है इसलिये मैं अपने को विजेता समझता हूँ"। इसके बाद बुद्ध काशी की ओर चले और इसिपतन (ऋषिपतन) पहुँचे[२]। कहा जाता है कि बुद्ध के पास पैसा न रहने के कारण वे गंगामें नाव का भाड़ा न दे सकते थे और इसलिये वे हवा के रास्ते से चलते थे। यही कारण है कि बिम्बिसार ने साधुओं के लिये नौका इत्यादि का किराया माफ कर दिया था।

हम ऊपर देख चुके हैं कि बुद्ध अपने पूर्व परिचित पाँच

---

२ ललित बिस्तर—५२८ (४०६)

साधुओं को शिक्षित करने के विचार से ही बनारसकी ओर अग्रसर हुए थे। उन्हें दूर से ही आते देखकर उनलोगों ने आपसमें कानाफूसी शुरू की "कि गौतम जो तपस्यासे डरकर भाग गया था, इधर आ रहा है। हम लोग उसका आदर नहीं करेंगे, किन्तु यदि वह बैठना चाहे तो हमलोग उसे बैठने देंगे"। किन्तु ज्यों-ज्यों बुद्ध नजदीक आते गये त्यों-त्यों उन लोगों का विचार बदलता गया और उनके पहुँचने पर सभी ने अपने-अपने तरीके से उनका यथोचित समादर किया। मित्र कहकर जब उनलोगों ने उन्हें सम्बोधन किया तब बुद्ध ने कहा—'साधुओ! तथागत को नाम अथवा मित्र कहकर सम्बोधित मत करो। अपनी आँखें खोलो और इस निर्वाण प्राप्त बुद्ध का दर्शन करो। कान खोल सुनो—मृत्यु से मुक्ति मिल चुकी है। मैं इस दिशा में तुम्हें शिक्षित करता हूँ और यह धर्म बतलाता हूँ। यदि मेरे उपदेश के अनुसार चलोगे तो तुम्हें भी वास्तविक सत्यका साक्षात्कार होगा।

इस प्रकार बुद्ध और उन पाँच साधुओं के बीच तर्क-वितर्क होता रहा। अन्तमें तथागत ने पूछा—"साधुओ, यह तो बतलाओ कि इससे पहले कभी भी तुम्हें इन सब बातों के विषयमें मैंने कहा था"? उत्तर मिला—"नहीं"। इसके बाद वे लोग तथागत की वाणी सुनने के लिये प्रस्तुत हुए। तब बुद्ध ने उन्हें अपनी बात समझाई—"सन्यासीको दो अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिये। वे दोनों अन्त कौन से हैं?—प्रथम है काम एवं विषय-सुख में लिप्त होना जो अत्यन्त अनर्थकर है, द्वितीय है शरीर को व्यर्थ अति कष्ट देना। इन दोनों अन्तों को परित्याग कर तथागतने मध्यम मार्ग को

ग्रहण किया है और उसके द्वारा ही निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।"

इस प्रकार बुद्धने उन्हें आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया।[1] इसको विशद विवेचना तो आगे होगी, यहाँ उसका सारमात्र उपस्थित किया जाता है। बुद्ध के अनुसार चार आर्य सत्य हैं—(१) सांसारिक जीवन दुःखों से परिपूर्ण है, (२) दुखों का कारण है, (३) दुखों का अन्त सम्भव है और (४) दुखों के अन्त का उपाय है। इन्हें ही क्रमशः दुख, दुख-समुदय, दुख-निरोध एवं दुख-निरोध-मार्ग कहते हैं। दुख-निरोध का जो मार्ग है उसके आठ अंग हैं। मध्यम मार्ग इसी पर आधारित है—अनेकानेक दृष्टान्त और युक्तियों के द्वारा बुद्धने उन पाँच साधुओं को अपने धर्मसे परिचित कराया और अन्तमें वे लोग बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुए। यही बुद्धका बनारसमें प्रथम धर्मोपदेश था[2] और यही धर्म-चक्र प्रवर्तन का अभ्युदय हुआ। उनका यह धर्मोपदेश बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। यहाँ उपदेश के जितने भी वचन पाये जाते हैं उनमें एक ही सत्य "निर्वाण" केन्द्रीभूत किया गया है। निर्वाण और मुक्ति के विषय को छोड़कर यहाँ और किसी वस्तु पर ज़ोर नहीं दिया गया है। ईश्वर और विश्व के विषय में कुछ नहीं कहकर केवल इस पर जोर दिया गया है

१—दीघनिकाय सुत २२, और मज्झिय-निकाय। सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक उद्योग, सम्यक विचार, सम्यक समाधि।

२—धम्म चक्र प्रवर्तन सुत, देखिये—संयुक्त ५·४२०, ललित विस्तर (५४०.(४१६), महावस्तु ३,३३०।

कि "मैं किस प्रकार इस दुखी संसार और दुख से मुक्त हो सकता हूँ"। पाँचो साधु बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुए और उन लोगोंके नेता कौडिन्यने बुद्ध से अनुरोध किया कि वे उन्हें अपना शिष्य बना लें और अपने उपदेशके द्वारा उनका उपनयन करें। तब बुद्धने उन्हें अपना उपदेश दिया और सभी दुखों और उनके कारणोंको अन्त करनेका उपदेश दिया। यहीं से बुद्ध-संघ की स्थापना प्रारम्भ होती है। यही पाँच शिष्य उस संघके प्रथम सदस्यगण हुए। इसके बाद बुद्ध ने विश्वकी क्षणभंगुरता एवं अस्थिरता पर उपदेश दिया। इस प्रकार उस समयके विश्वमें केवल ६ व्यक्तिही बौद्ध थे। पव्बज्जा (प्रव्रज्या) प्राप्त करने के बाद उन्हें "एहि भिक्खु' कह कर सम्बोधित किया गया। इसके बाद बप्प और भद्दीय उपनीत हुए और तब महानाम और अश्वजित भी संघ में उपनीत हुए। उसके बाद आत्मा३की क्षणभंगुरता पर बुद्धका प्रवचन हुआ।४

३—अनन्त लक्खन सुत, संयुक्त ३-६६

4 The Budha's first sermon indicates the foundations of Budhism. It is not a feeling of pessimism but of imancipation. The fact of evil or sorrow is to be recognised only to get over it. (R. K. Mukherji—"Men and thought in Ancient India" P. 54 F. N. 1). The negative features of the path are also important. It contains no, mention of ceremonials, austerities, gods many or one, nor of the Budha himself. He is the discoverer and teacher of the truth beyond that his personality plays no part. (Elyot Hinduism and Buddhism 1. 145)

बुद्ध आत्मा की नित्यता को नहीं मानते हैं। पुनर्जन्म का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि आत्मा नित्य है। इससे केवल एक विज्ञान प्रवाह का बोध होता है। आत्मा को नित्य समझने के कारण ही आसक्ति बढ़ती है और दुःख उत्पन्न होता है। बुद्ध के अनुसार आत्मा अदृष्ट और अप्रमाणित है। उपरोक्त उपदेशों के सुनने के बाद ही पाँच साधु आस्रवों से मुक्त हुए और उनका हृदय शुद्ध हुआ।

उस चौमासेमें बुद्ध बनारसके समीप ही स्थिर रहे। उन दिनों वहाँ बनारसके एक समृद्ध सेठका लड़का यश नामक नवयुवक रहता था। वह बहुत ही आराम-पसन्द लड़का था। प्रत्येक मौसमके लिए यशके पास अलग-अलग भवन थे। विलासिताके समुद्रमें गोता लेनेसे वह अब ऊब चुका था। एक दिन रातको वह बाहर निकला तो देखा कि उसके सेवक-गण (नौकर अथवा भृत्य) निद्रा देवीकी गोदमें विश्राम कर रहे हैं। उसके हृदयमें ठीक उसी प्रकारकी अजीब भावना उठी जिस प्रकार बुद्धको गृह-त्यागके पूर्व हुई थी। किसी अनजान भावनासे प्रेरित होकर यशने भी गृह-त्याग किया और ऋषि-पतनकी ओर अग्रसर हुआ। प्रातःकाल वहीं उसे बुद्धसे साक्षात्कार हुआ। उन्होंने उसे समझाया और अपने चार आर्यसत्योंसे परिचिति कराया। किंवदन्ती है कि जब यशके पिताने उसका पद-चिन्ह देखकर पीछा किया तब बुद्धने उसे अदृश्य कर दिया। इसके बाद धीरे-धीरे यशने बुद्धसे दीक्षा ली। उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और उसके आस्रवोंका अन्त हुआ। इस प्रकार वह संघमें प्रवृष्ट हुआ और संघकी संख्या सात हुई। यश बुद्धका पहला उपासक (गृहस्थ-शिष्य) हुआ।

धीरे-धीरे भिक्खुओंकी संख्या बढ़ने लगी और अब बुद्धके पास ६० भिक्खु हो गये। इसके बाद उन्होंने अपने विश्वास पात्र शिष्योंको देशके विभिन्न भागोंमें धर्म-प्रचारके लिये भेजनेका निश्चय किया। तथागतने कहा१—"भिक्खुओ, अब तुम लोग जाओ, भ्रमण करो; जनताके हितके लिये जनताके सुख के लिये, देवों और मनुष्योंके कल्याणके लिये भ्रमण करो। कोई दो एक ओर न जाओ। तुम लोग उस धर्मका उपदेश करो जो आदिमें कल्याण है, मध्यमें कल्याण है, अंतमें कल्याण है।"

यशके बाद उसकी पत्नी और माता बुद्धकी उपासिका (शिष्या) बनी। यही दोनो स्त्रियाँ सर्वप्रथम बौद्ध-धर्ममें उपनीत हुईं। इसके बाद यशके चार मित्र भी संघमें सम्मिलित हुए और तब पचास व्यक्ति और भी दीक्षित हुए। इस प्रकार शिष्यों की संख्या तेजीसे बढ़ने लगी और संघमें सम्मिलित होनेकी ऐसी होड़ मची कि बुद्धने बाध्य होकर अपने शिष्योंको उन्हें दीक्षित करने कहा। संघमें सम्मिलित होनेके पूर्व लोगोंको कई नियमोंका पालन करना पड़ता था यथा—बाल कटाना, पीत (पीला) वस्त्र धारण करना और संघमें शरण लेना जिसके निम्न लिखित मंत्र थे—

बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि

इसके अलावे और भी कई नियम थे जिसका पालन सभी को करना पड़ता था। आज तक किसी महापुरुष अथवा आचार्यके शिष्योंने अपने गुरुसे ऐसी प्रेरणा नहीं पाई थी।

---

(१) संयुक्त निकाय, ४,१,४, महावग—१,२

वे लोग संघबद्ध होकर अपने गुरुका आदेश पालन करते और प्रचार भी। शिष्योंकी सहायतासे शीघ्र उनका धर्मचक्र उन सुदूर देशोंमें चलने लगा जिनकी विजयका स्वप्न बुद्धदेव को हुआ था। तीन मास तक वर्षा ऋतुमें निर्जन स्थानमें रहने के बाद १ बुद्ध पुनः उरुबेलाकी ओर लौटे। लौटनेके समय रास्तेमें उन्होंने तीस धनी आनन्द-विभोर नवयुवकोंको देखा। वे लोग एक कुंज (grove) में अपनी स्त्रियोंके साथ हास-उल्लास में मग्न थे। उनमेंसे एकके पास अपनी स्त्री नहीं बल्कि वेश्या थी। इधर जब वे लोग आनन्द-विभोर होकर अपनी क्रीड़ा में मग्न थे तबतक उधर वह वेश्या भाग निकली। उसे खोजते-खोजते वे इधर आये और बुद्धसे पूछा कि क्या उन्होंने किसी स्त्रीको जाते देखा है। बुद्धने कहा, "ऐ नवयुवकों, क्या तुम लोग किसी स्त्रीको व्यग्र होकर खोजना अच्छा समझते हो अथवा अपने आपको खोजना? अपने आपको ढूँढ़ निकालना ज्यादा अच्छा है अथवा नहीं"? इस पर उन लोगोंने उत्तर दिया—"अपने आपको ढूँढ़ निकालना ही श्रेयस्कर है।" तब उन लोगोंको बैठाकर बुद्धने उपदेश दिया और उन्हें अपने धर्ममें दीक्षित किया २।

उसके बाद बुद्ध उरुबेला पहुँचे। वहाँ एक जटाधारी साधु रहता

---

(१) संयुक्त १, ७०५, १११

(२) उपरोक्त कथानकके सिलसिलेमें अभी तक मतभेद चला आ रहा है। पाली साहित्यमें "भद्दवग्गिया" शब्दका प्रयोग है, संस्कृत परम्पराओंमें उसे "भद्रवरगीया" कहा गया है। इसका अर्थ अभी भी अनिश्चित है, और प्रश्न विवादास्पद है। —लेखक।

था। नाम था उरुबेला कश्यप या बिल्वकश्यप। बिल्वकश्यप के पाँच सौ शिष्य थे। वहाँ और भी दो साधु थे—नदीकश्यप और गयकश्यप। नदीकश्यपके तीन सौ शिष्य थे और गयाके निवासी गयकश्यपके दो सौ। ये तीनों भाई बड़े ही विद्वान् और कर्मकाण्डी थे। कहा जाता है कि बुद्ध ने इन लोगोंको अपनी दिव्य शक्तिसे प्रभावित कर लिया। दो नागराजोंने वमन किया जिससे अग्नि और धुंआ छा गया। इस प्रकार के ३५०० आश्चर्य कार्योंका प्रदर्शन बुद्धने किया, ऐसा कहा जाता है। किन्तु तब भी कश्यपने उन्हें अपने जैसा साधु नहीं स्वीकार किया और केवल इतना ही स्वीकार किया कि बुद्ध एक शक्तिशाली जादूगर था। फिर भी बुद्धने काश्यपको यह समझाया कि अर्हतके सभी गुण उसमें (कश्यप) में नहीं थे और अन्तमें कश्यपको बुद्धके समक्ष झुकना पड़ा। बुद्धने उसे अपने शिष्योंसे परामर्श लेनेका आदेश दिया। शिष्योंने उसके बाल काट दिये और कर्मकाण्ड की सामग्रियोंको नदीमें फेंक दिया। इस प्रकार नदीकाश्यप और गयकाश्यपके शिष्योंने बुद्धसे शिक्षा पाई। इन लोगोंको दीक्षित करनेके बाद बुद्धने गया पर्वत अथवा गयाशीर्ष पर उन लोगोंके सामने अग्नि धर्मोपदेश दिया और वे लोग सबके सब अर्हत हो गये। वे सभी अब बुद्धके साथी हो गये।

उरुवेलासे वे लोग अब मगधकी राजधानी राजगीरकी ओर चले। राजगीरके समीप "हस्ति-शिला" पर एक दिन बुद्ध अपने नवीन शिष्योंके साथ बैठे हुए थे। उसी समय जंगलमें अचानक आग लगी और उस जंगलके रहनेवाले जीव, जन्तु वहाँसे भागकर निरापद स्थान ढूँढ़ने लगे। ठीक उसी समय बुद्ध, अपने शिष्योंसे दुर्वासनाओंको शमन करनेके विषय

में कह रहे थे। अग्नि-ज्वालाको देखते ही वे आन्तरिक उत्तेजना और चिन्ताका अनुभव करने लगे। उन्होंने उपदेश किया कि सांसारिक सुखमें तन्मय होनेवाला मनुष्य चिन्ता-रूपी-ज्वालामें जलकर मृत्युको प्राप्त करता है। जिस प्रकार इंधन रहने तक आग जलती है, उसी प्रकार शरीररूपी बन में तब तक तृष्णा और घृणाकी ज्वाला जलती है, जबतक सांसारिक सुखरूपी इंधन पहुँचता रहता है। इसे ही बुद्धका 'ज्वालोपदेश' या 'अग्नि धर्मोपदेश' कहा गया है। काश्यप जैसे विख्यात विद्वानोंको बुद्धका शिष्य बना देख मगध राज बिम्बिसार और मगधकी प्रजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अनेकानेक लोगोंके साथ बिम्बिसार भी बुद्धका दर्शन करने आये। वहाँ काश्यपने लोगोंको यह बतलाया कि क्यों उसने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया। वहाँ अपनेको उसने बुद्धका शिष्य बतलाया। बुद्धके उपदेश समाप्त होने पर बिम्बिसारने कहा—जब मैं राजकुमार था, तब मुझे पाँच आशायें थीं और वे सभी पूर्ण हो गईं। पहली इच्छा राजा होनेकी थी, यह इच्छा पूरी हुई। दूसरी इच्छा यह थी कि महात्मा बुद्ध मेरे राज्यमें पदार्पण करें, यह भी पूरी हुई। तीसरी इच्छा यह थी कि मैं महा-प्रभुका समादर कर सकूँ, यह भी पूरी हुई। चौथी इच्छा यह थी कि मैं प्रभुके धर्मको समझ सकूँ और यह भी पूरी हुई। उसके बाद बिम्बिसारने दूसरे दिन बुद्धको भोजनके लिये निमन्त्रित किया और अपने हाथोंसे परोसकर उन्हें खिलाया। साथ ही राजगारके समीप 'वेलूवन' नामक एक स्थान, बुद्ध और संघको प्रदान किया। बहुत आदमीके साथ बिम्बिसार भी बुद्धके उपासक बन गये और यावज्जीवन बुद्ध के सच्चे एवं परम मित्र रहे।

उन्हीं दिनों राजगृहके समीप आचार्य संजयके आश्रममें सारिपुत्त और मोग्गलान (मुद्‌गलायन) नामक दो उद्भट विद्वान् रहते थे। इनकी माताओंका नाम क्रमशः रूपसारी और मोग्गली था, इसलिये इनके वे नाम थे। इन दोनों विद्वानों के बीच एक प्रतिज्ञा हुई थी कि जो कोई सर्वप्रथम अमरत्व प्राप्त करेगा वह एक दूसरेको बतलायेगा। वे दोनों ब्राह्मण थे। एक दिन प्रातःकाल सारिपुत्तने बुद्धके शिष्य अस्सजीको राजगृहकी सड़क पर भिक्षाटन करते देखा और उसे देखते ही यह विश्वास हो गया कि यह वही व्यक्ति है जो अर्हत हो चुका है अथवा जिसे निर्वाण प्राप्त हो चुका है। सारिपुत्तने उससे गुरुका नाम पूछा। अस्सजीने कहा कि वह शाक्य मुनिका शिष्य है। उसके बाद उसनें शाक्यमुनिके उपदेशके विषय में पूछा और उस पर अस्सजीने उत्तर दिया कि वह तो एक नव-सिखुआ है अतः शाक्यमुनिके उपदेशमें पूरी पहुँच नहीं हो पाई है। सारिपुत्तके जिद करने पर अस्सजीने कहा—"मानव-संसारकी लीलाका कारण समझना ही शाक्य मुनिके सिद्धान्तका सार है।" तब सारिपुत्तको क्षणभंगुर संसार का ज्ञान हुआ और यह विश्वास हुआ कि सभी दुःखों के अन्तके कारण समझनेका दिन अब समीप आ गया। सारिपुत्तने अपने मित्र मोग्गलानको सब कुछ समझाया और यह कहा कि मृत्युसे मुक्ति पानेका रास्ता उसे अब मिल गया। तब उसने अस्सजीसे साक्षात्कार होनेके विषयमें कहा। उसके बाद आचार्य संजयने उन दोनोंको अपने साथ रहनेके लिये बहुत समझाया किन्तु इससे कुछ लाभ नहीं हुआ। दोनों बुद्धकी शरणमें पहुँचे। उन दोनोंको आते देख बुद्धने भविष्यवाणी की कि दोनों उनके बड़े विश्वासपात्र शिष्य

होंगे। बुद्धने उन लोगोंका स्वागत किया और धर्मोपदेश दिया। वे संघमें सम्मिलित हुए और बुद्धके अग्गसावक अर्थात् प्रधान शिष्य कहलाये। सारिपुत्र बौद्ध संघका धर्म्म-सेनापति भी कहलाता था।

राजगृहके समीप उपतिस्स ग्राममें सारिपुत्तका जन्म हुआ था और उसका घरेलू नाम उपतिस्स था तथा उसकी माताका नाम रूपसारी। वह ब्राह्मण था। संस्कृत ग्रन्थोंमें उसे दूती पुत्र कहा गया है। उसीके समीप कोलित ग्राममें मोग्गलानका जन्म हुआ था। चूंकि वह कोलितके मुख्य परिवारका लड़का था इसलिये उसे कोलित नामसे पुकारा जाता था। उन दोनोंका जन्म एक ही दिन हुआ था और वे दोनों एक ही साथ पढ़े-लिखे भी थे। आचार्य संजयके चरण में उन दोनोंने ज्ञानलाभ किया। पश्चात् उन्होंने एक सच्चे गुरु की खोजमें सम्पूर्ण भारतवर्षका भ्रमण किया और लौटकर राजगृह आये। वहीं सारिपुत्रको अस्सजीसे साक्षात-कार हुआ। उसके बाद वे दोनों बौद्ध हुए और बुद्धके परम-विश्वासपात्र शिष्य भी। कहा जाता है कि पूर्व जन्ममें ही दोनोंने इच्छा प्रकट की थी कि वे बुद्धदेवके प्रधान शिष्य होवें और इस जन्ममें उनकी इच्छा पूरी हुई। तिब्बती साधनों[१]से इस प्रसंग पर जो कुछ पता चलता है, वह कुछ विचित्र सा मालूम पड़ता है। तिब्बती साधनोंमें उपरोक्त नामोंकी असम्भव व्याख्या है।[२] उसमें उपतिस्सको 'तिस्स' का पुत्र

१—उपतिस्स—उसके ग्रामका नाम 'नालक' अथवा 'नालन्दा' था।

२—तिब्बती साधनोंके आधार पर ही रौकहिल महोदयने बुद्धका जीवन-चरित्र लिखा है।

माना गया है। यहाँ तक कि टीकाओंमें उसके ग्रामका नाम भी उल्लिखित नहीं है। सारिपुत्त नवीन शिष्योंको शिक्षित करता था। बुद्धके बाद वही धर्म-चक्र-प्रवर्तनका अधिकारी था। मोग्गलानका मुख्य काम था स्वर्ग और दूसरे लोकोंमें मरे हुए मनुष्योंका पता लगाना।

मगधके बड़े-बड़े लोग एवं उत्साही युवकगण बुद्धसंघमें सम्मिलित होने लगे। शिष्योंकी संख्या तो बढ़ने लगी ठीक किन्तु मगधवासियोंके बीच बुद्धके विरुद्ध आवाज उठी और क्रोधकी भावना जगने लगी। वे लोग यही सोचते थे कि यदि सब सन्यासी हो जायंगे तो बहुत-सी स्त्रियाँ विधवा और पुत्र-रहित हो जायंगी और इससे परिवारकी श्रृंखला टूटने लगेगी। यों ही तो बुद्धके हजारों शिष्य हो चुके थे और इधर संजयके २५० शिष्य भी बुद्धके शरणमें आ चुके थे। फिर उनकी प्रतिभासे प्रभावित हो कोई भी मगधका निवासी अछूता नहीं रह सका। जब बुद्धके शिष्योंको मगध वासियोंकी भावना मालूम हुई तब उन्होंने बुद्धसे सारी बातें कह डालीं। तथागतने उत्तर दिया कि ऐसी भावना सात दिनसे ज्यादा नहीं रहेगी। साथ ही तथागतने अपने शिष्योंसे यह कहा कि यदि वे लोग (मगधवासी) उन्हें तिरस्कृत दृष्टिसे देखें तोभी ये लोग उन्हें सत्यका ही महत्त्व समझावें। अस्तु, सात दिनोंमें ही सारी विरोध-भावनायें समाप्त हो गईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्ञान-प्राप्त करनेके बाद बुद्ध के मनमें जो शंका उठी थी, वह निराधार थी। इसका सबसे प्रत्यक्ष प्रमाण तो यह है कि बुद्ध ज्यों ही उपदेश-प्रदान के लिये निकले त्यों ही सफलता आने लगी और कहीं किसी प्रकारकी दिक्कतोंका सामना नहीं करना पड़ा। उपरोक्त

कथानकोंक ऐतिहासिक तत्वमें कुछ लोगोंका विश्वास नहीं हैं, किन्तु यहाँ एक बात तो मान्य है कि धर्मका प्रवर्तक यदि कोई हुआ होगा (इसकी विशद आलोचना पहले की जा चुकी है) तो उसके जीवन में इस प्रकारकी कई घटनायें अवश्य ही हुई होंगी१ जिनका उल्लेख हमें बादके उपाख्यानोंमें मिलता है। यह ठीक है कि मगधमें कुछ लोगोंने इनका प्रारम्भमें विरोध किया था किन्तु इस प्रकारका विरोध भी अनिवार्य था। कारण यह है कि बुद्ध पुरानी रीति-रिवाज, परम्परा और पूजाके ढकोसलोंको ठुकरा कर सत्यके पथ पर लोगोंको आरोहण कराना चाहते थे। अतः पुराने कर्मकाण्डियों का तो इससे धक्का अवश्य ही लगा होगा, इसमें सन्देह नहीं और शायद इन्हीं की प्रेरणासे मगध वासियोंका विरोध भी हुआ होगा।२

(ख) भ्रमण

पूर्वी भारत में ही बुद्धने ज्यादा पर्यटन किया जिसमें काशी, कोशल और मगध-राज विशेष उल्लेखनीय हैं। पर्यटन के सिलसिलेमें उन्होंने अधिक समय कोशल, मगध, श्रावस्ती

१–Buddha may have had many a noble mark of intellect and of creative power.... but a form like his can certainly not be fundamentally misconceived. Opcenberg–P. 141

२–हम देख चुके हैं कि किस प्रकार संजय अपने दोनों शिष्योंको बौद्ध धर्म ग्रहण करनेसे रोक रहा था।

और राजगीरमें बिताया। इन सब देशोंके पड़ोसमें बहुत सुन्दर-सुन्दर वन एवं उपवन थे जहाँ कि शिष्योंके रहनेके लिये तरह-तरहके भवन बनाये जा सकते थे। नगरोंके वातावरण से ऊबकर जनता इन स्थानोंमें सहूलियतसे पहुंच सकती थी। ऐसे निर्जन स्थानोंमें शान्तिका साम्राज्य अक्षुण्ण रहता था और ज्ञान-लाभका यही सर्वश्रेष्ठ स्थान हो सकता था। ऐसे स्थानोंमें वेलुवन सर्व-विख्यात था। यह किसी समय राजा बिम्बिसारका विहार-स्थान था किन्तु बादमें उसने यह स्थान बुद्धको दान कर दिया। ऐसा दूसरा प्रसिद्ध स्थान श्रावस्ती का जेतवन था और यह भी बुद्धको अपने प्रिय उपासक अनाथ पिण्डकसे दानमें मिला था। कहा जाता है कि जब से अनाथपिण्डकने बुद्धके विषयमें सुना था तभीसे ऐसे स्थानकी खोजमें था जहाँ बुद्धको अच्छी तरह ठहराया जा सके। इस खोजमें उसे राजकुमार जेतकी फुलवारीका स्मरण हुआ और उसी स्थानको उसने चुना किन्तु राजकुमार उसे बेचनेके लिये प्रस्तुत नहीं था। अन्तमें अनाथपिण्डकने उसको इतना सोना देकर खरीदा जितनेसे जेतवनकी सारी जमीन ढक जाय। यही जेतवन उसने बुद्धको दान दिया और तबसे यह बुद्धका एक विशिष्ट स्थान रहा जहाँ हजारों की संख्यामें मनुष्य ज्ञान-प्राप्तिके लिये आया करते थे।

बुद्धने प्रथम वर्षावास सारनाथमें किया था। उसके बाद एक वर्षके अन्दर इतना कार्य करके दूसरा वर्षावास उन्होंने राजगीरमें बिताया। श्रावस्तीका सेठ सुदत्त अनाथ-पिण्डक वहाँ आया हुआ था। उस समय बुद्ध राजगृहके शीतवनमें ठहरे हुए थे। अनाथपिण्डक वहीं बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हुआ और जब वहाँसे लौटकर श्रावस्ती पहुंचा तब

उसने बुद्धको तीसरे चौमासे (वर्षावास) के लिये निमंत्रण दिया। सुदत्त चूँकि अनाथोंका भोजनदाता था, इसलिये उसे अनाथपिण्डक कहा जाता था। वह बहुत बड़ा व्यापारी था। उसने जेत से कहा१, "आर्यपुत्र, मुझे यह बगीचा आराम बनानेको दें"। "नहीं गृहपति, करोड़ों बिछाकर लेने से भी वह आराम नहीं दिया जा सकता"। "आर्यपुत्र, मैंने आराम ले लिया।" "नहीं, गृहपति, आराम नहीं लिया गया।" खरीदा गया या नहीं खरीदा गया, इसका फैसला कराने वे दोनों बोहारिक महामत्तके पास गये और बोहारिक महामत्तने राजकुमारके विरुद्ध फैसला दिया। इस प्रकार जेत-वन बुद्धके लिये लिया गया था। वहाँ उसने एक महाबिहार भी बनाया और उसमें बुद्धके लिये एक आराम बना जो गन्धकुटी के नामसे प्रसिद्ध हुआ। बुद्धसे आज्ञा लेकर उसने वह बिहार भी संघको दान दिया।२

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐसे स्थान, जहाँ पहले राजा लोग बिहार किया करते थे अब बुद्धके लिये निश्चित हो गये। उन सब स्थानोंमें राजकीय सत्ताके स्थान पर संघीय सत्ता स्थापित हुई। उन स्थानोंसे लोगोंके आकर्षित होनेका मुख्य करण

१—चुल्लवग्ग ६.२

२—चुल्लवग्ग ६,४ जेतवनके विषयमें फाहियान लिखता है—"The clear water of the tanks, the luxuriant groves, and numberless flowers of variegated hues, comfine to produce the picture of what is called the Vihar of chi-un (Jeta)." [Beal's translation P. 75)

यह था कि वहाँ तप एवं ध्यान करनेकी पूरी सुविधा थी। ऐसे स्थानोंमें ही बुद्ध ने अपने जीवनका विशेष भाग विताया और यहींसे उनका विशेष काम भी हुआ। दूर-दूर से संन्यासी, शिष्य एवं उनके उपासक उनका उपदेश सुनने आया करते थे। प्रत्येक वर्षावासके बाद सन्यासी तथागतके दर्शनके लिये निकलते। प्रत्येकसे तथागत कुशल समाचार पूछते। इस प्रसंगमें एक कहानी उल्लेखनीय है। अवन्तीमें सोन नामक एक व्यक्ति बुद्धके उपदेशका समाचार सुनकर बहुत प्रभावित हुआ था और वह बुद्ध-संघमें सम्मिलित होना चाहता था। अथक परिश्रमके बाद वह बौद्ध सन्यासियोंको अपने देशमें लाया। एक बार एकान्तमें उसे इच्छा हुई कि तथागत को जाकर देखूँ। गुरुसे आज्ञा लेकर सोन बुद्धसे मिलने श्रावस्तीकी ओर चला। उनसे मिलनेवाले यात्री-गण वहीं जाया करते जहाँ तथागत वर्षावास करते थे।

पाली एवं जातक पुस्तकों, महावस्तु और ललित-विस्तरमें उनके जीवनकी श्रावस्यीतक की घटनायें ही उल्लिखित हैं। फिर कुछ बातें हमें महापरिनिर्वाणसूत्रसे भी मिलती हैं। इसलिये उनके भ्रमण सम्बन्धी वास्तविक तथ्योंको जानने के लिये हमें उपाख्यानों का सहारा लेना पड़ता है। साथ ही बौद्ध संघ में लोग कब और कैसे सम्मिलित हुए इससे भी उनके जीवनकी घटनाओं का थोड़ा बहुत पता चलता है। धर्मचक्र प्रवर्तनके चौथे वर्ष में उग्रसेन बौद्ध-धर्मावलम्बी हुआ। वह राजगीर का निवासी था। पांचवें वर्ष में बुद्ध वैशाली में ठहर कर वहींसे अपने पिताके मरने पर कपिलवस्तु भी गये। कहा जाता है कि राजगीर से बुद्ध बनारस गये थे

वहां वर्षावास व्यतीत कर वे फिर उरुवेला आये और वहां पर फिर तीनमास ठहर कर राजगीर पहुँचे। तबतक पिताके यहांसे उन्हें लेनेके लिये दूतों का तांता बंध गया। जितने भी दूत आये वे सभी बौद्ध धर्ममें दीक्षित हो गये और किसीने पिताका सम्बाद उन्हें नहीं सुनाया। नौ बार तक यही बात चलती रही। किन्तु बुद्धके बचपनका मित्र जब भेजा गया तब परिस्थिति बदली। उस मित्रने समाचार बुद्धसे कह दिया। दो माह के अन्दर ही तथागत कपिलवस्तु जाने को प्रस्तुत हुए। वहाँ पहुँच कर वे न्यग्रोध कुंजमें ठहरे और वहीं उन्हें अपने पिता और सम्बन्धियों से भेंट हुई। उनलोगों के भोजन इत्यादिका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था, अतः दूसरे दिन बुद्ध अपने शिष्यों के साथ शहर में भिक्षाटन के लिये निकले। कपिलवस्तुके गद हो उन्हें देखने लगे। भिक्षाटन करते देख राजा शुद्धोदन को शर्म हुआ और पूछने पर बुद्ध ने उत्तर दिया, महाराज ! आपका वंश राजाओंका है। किन्तु मेरा वंश बुद्धोंका है अतः हम लोगोंका आधार ही भिक्षाटन है"। उन्हें भिक्षुओं सहित भोजन के लिये शुद्धोदन आग्रह के साथ राजभवनमें लाये जहाँ उनके परिवारके सब स्त्री-पुरुषों ने तथागत का उपदेश सुना। किन्तु राहुलकी माता उस मंडलीमें न थी। बुद्ध सारिपुत्त और मोग्गलानके साथ स्वयं उसके भवनमें गये और उसे शान्तिका उपदेश दिया। उनके आनेके दूसरे दिन उनके चचेरे नन्द(गोतमी का पुत्र) का विवाह उस देश और समयकी सर्वोत्तम सुन्दरी "जनपद कल्याणी" से होने वाला था। किन्तु बुद्धने दूसरे ही दिन नन्दको भी भिक्षु बना लिया। सात दिन बाद पुनः

बुद्ध भिक्षुओंके साथ राजा शुद्धोदनके यहाँ भोजन करने आये और उसी दिन माताके बतलाने पर राहुलको यह पता लगा कि बुद्ध उसके पिता थे। उसने बुद्धसे पितृ-दाय मांगा। इस पर बुद्धने सारिपुत्तसे कहा-राहुल को प्रव्रज्या (सन्यास) दान करो और वह उस दिनसे भिक्षु हो गया। इसके बाद शुद्धोदनके वंशमें कोई भी लड़का राज्य का उत्तराधिकारी नहीं रहा और इससे शुद्धोदनको बहुत दुःख हुआ। इस दुःखसे बुद्धभी प्रभावित हुए और उन्होंने ऐसा नियम बना दिया कि भिक्षु होनेकी आकांक्षा रखनेवाले युवकों को अपने माता-पिता से अनुमति लेनी होगी।

कपिलवस्तु से तथागत मल्ल देशमें अनोमा नदी पर स्थित अनुपिया ग्राम में गये। वहाँ उन्होंने आनन्द को बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया। वह बुद्धका सर्वप्रिय शिष्य हुआ। उसके बाद देवदत्त को भी दीक्षित किया।

एक हजाम उपालिने भी बौद्ध-धर्म ग्रहण[1] किया और वह बाद में चलकर संघ का प्रसिद्ध नेता हुआ। उसी समय अनिरुद्धने भी बौद्ध धर्म ग्रहण किया। वह बौद्ध-अध्यात्मवादका एक ठोस विद्वान माना जाता था। आनन्द गौतम बुद्ध का बड़ा प्रिय शिष्य और उनके अन्तिम २५ वर्षों में उनका उपस्थाता या उपस्थापक[1] और हर समयका संगी रहा। वह बौद्ध-संघ का खजांची कहलाता था।

उस समय बौद्ध धर्मके विरुद्ध आवाज उठानेवाले ६ सम्प्रदाय थे। एकबार राजगीरमें उनलोगोंने बौद्ध-सत्यको जाँच करने की कोशिश की। इसलिये उन लोगोंने जादूई

१-जुन्ह जातक (४५६)

चमत्कार दिखलाकर बौद्धोंको परास्त करना चाहा। उन लोगोंका कथन था कि क्या कोई सिद्ध हवामें उठकर ऊपर जा सकता और नीचे आ सकता था? वे लोग स्वयं ऐसा करनेमें असमर्थ थे किन्तु मोगल्लानके कहने पर पिन्दोल भारद्वाजने ऐसा करके दिखला दिया। किन्तु जब बुद्ध पहुँचे तो उन्होंने ऐसा करनेसे रोक दिया। इस पर पाखण्डियोंने खिल्ली उड़ाना शुरू किया। बुद्धने स्वयं ही ऐसा प्रदर्शन करनेकी प्रतिज्ञा की किन्तु साथ ही उसने राजा बिम्बिसारसे यह भी कहा कि जिस प्रकार बगीचेका आम तोड़ने पर तोड़ने वाला दोषी ठहराया जाता है, उसी प्रकार किसी धर्म पर आक्षेप करनेवाला भी विधर्मीके रूपमें दोषी ठहराया जायगा। उपरोक्त प्रतिज्ञाको बुद्धने चार मास बाद श्रावस्तीमें पूरा किया। पाखण्डियोंने सभी आमको वृक्षसे गिरा दिया। राजाके बागवानने बुद्धको एक पका आम दिया और ज्योंही बुद्धने उसपर अपना हाथ धोया कि उससे एक पचास हाथका पेड़ जन्म लिया। ध्यान करने पर बुद्धको ज्ञात हुआ कि पूर्वज बुद्ध स्वर्गमें अभिधम्मका प्रचार करने गये थे इसलिये वे भी तीन डेगमें स्वर्ग चले गये और अपना सातवाँ वास वहीं बिताया। इस त्रिमासमें सारिपुत्त और मोग्गलान वहाँ गये थे और मोग्गलानसे उन्होंने कहा कि इस बार वे श्रावस्तीमें नहीं वरन सांकाश्यमें उतरेंगे। कहा जाता है कि चीनी यात्रियोंने उस पवित्र स्थानका दर्शन किया था१ बुद्धकी दिव्य शक्तिको देख पाखण्डियोंका दम्भ चकनाचूर हो गया।

आठवें वर्ष बुद्ध भग्गोंके बीच पर्यटन कर रहे थे। उसी

(१) जातक ४,२६५, फाहियान (गाइल्स द्वारा सम्पादित) पृष्ठ २४; बील (हुयेन संग) १–२०३–पिन्दोलकी कहानी 'विनय'

समय वे सुंसुमारगिर पहुंचे। वहाँका एक गृहस्थ नकुल पिता अपनी स्त्रीके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। बुद्धको देखकर उनलोगोंको ऐसा हुआ कि वे ही, उनके पुत्र थे और उन्होंने पुत्र कहकर बुद्धको सम्बोधित किया। कारण यह था कि बुद्धके पूर्व जन्ममें वह पाँच सौ बार उनका पिता, चाचा, मामा, दादा इत्यादि रह चुका था। उसी प्रकार उसकी स्त्री भी। बुद्धने उनलोगोंके बीच अपना धर्मोपदेश किया और उन्हें भी ज्ञान-सागरमें तैरनेका अवसर दिया।२ इस देशके भेषकला-वनके मृगदावमें बुद्धने अपना आठवाँ आराम (वास) व्यतीत किया। यहीं राजकुमार बोधिने एक नया भवन बनाया और बुद्ध और उनके संघको भोजनार्थ निमन्त्रित किया।

नवाँ आराम (वास) बुद्धने कौशाम्बीमें व्यतीत किया।३

२–११० में है और स्वर्गसे उतरनेकी कहानी 'सुत्त–निपात' ४–१६ में हैं। यहाँ एक कहानी और भी महत्वपूर्ण है। श्रावस्तीमें बुद्धको बदनाम करनेके लिये कुछ बुरे लोगोंने चिनवा नामक औरतको गर्भवती औरत जैसा पोशाक पहना कर लोगोंके बीच यह फैलाना चाहा कि बुद्धने उसके साथ संयोग किया था। किन्तु बुरे लोगोंकी कलई शीघ्र ही खुल गई और बुद्धपर आक्षेप न लग सका।

(२) अंगुतर (टीका) १—४००।

(३) अभी हाल ही में कौशाम्बीमें पुरातत्व-वेताओं द्वारा जो खुदाई हुई है, उससे कौशाम्बीके बौद्ध-युगीन इतिहास पर नया प्रभाव पड़ता है। इसका विवरण अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है। शिलालेख भी मिला है।

वहाँ वे घोषितराम विहारमें रहते थे। वत्स देशके राजा उदयनके तीन मन्त्रियोंमें से एकका नाम घोषित था। उसने ही यह 'विहार' बुद्धको दान दिया था। उस समय वहाँ मागन्दिय नामक एक ब्राह्मण रहता था जिसे एक लड़की थी। उस लड़कीका नाम था मागन्दिया। बुद्धको देखकर उसने उन्हें ही अपनी लड़कीके लिये पात्र चुना किन्तु लड़की की माता वेदोंमें सिद्धहस्ता थी और बुद्धको देखते ही वह समझ गई कि बुद्ध मानवीय उत्तेजनाओंसे मुक्त पुरुष था। मागन्दिय-सुत्तकी व्याख्या पर ही उपरोक्त कथा आधारित है जिसमें बुद्धके द्वारा 'मार' की पुत्रियोंका उल्लेख करवाया गया है। मागन्दिया बुद्धसे विवाह न होना अपनी बेइज्जती समझती थी, इसलिये कौशाम्बीके राजा उदयनकी स्त्री होनेके बाद वह बुद्धसे घृणा करती रही। जब उसे (मागन्दिया को) यह ज्ञात हुआ कि उसकी सौतिन सामावती बुद्धकी भक्तिनी थी तब उसने उसके खिलाफ षड़यन्त्र करना शुरू किया। अन्तमें अपनी सौतिनको उसने मरवा डाला१।

कौशाम्बीके इस वास (आराम) में संघके दो सन्यासियों के बीच अनुशासनके प्रश्नपर कुछ मतभेद हो गया२। इस

(१) सुत्त निपात-४—९। सामवतीके जलनेकी कथाका उल्लेख "उदान" ४—१० में है।

२ इस प्रश्न पर विद्वनों में भी मतभेद हैं। श्रीयुत राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार संन्यासियों के बीच यह मतभेद कौशाम्बी में हुआ था जब कि बुद्ध नवम वर्षावास व्यतीत कर रहे थे (देखिये—"Men and Thought in Ancient India", P. 64) किन्तु श्रीयुत ठोमस के अनुसार यह घटना उनके दशवें वर्षावास में हुई (देखिये "Life of Budha" P. 116)

मतभेद को अन्त करनेका अनेकानेक प्रयत्न किया गया। किन्तु जब उन्हें सफलता नहीं मिली तब वे पारिलेयक्क जंगलमें चले गये।

कौशाम्बीके किसी साधुने किसी विशेष बात पर अपना दोष स्वीकार नहीं किया, इसलिये उस साधुको संघसे वहिष्कृत कर दिया गया। इसी पर मतभेद शुरू हुआ। बुद्ध ने निम्नलिखित कहानी कह कर उनलोगोंके बीच शान्ति स्थापित कराना चाहा। प्राचीनकाल में दीधिति कोशलका राजा था। काशी का राजा ब्रह्मदत्त द्वारा हराये जाने के बाद दीधिति अपने पुत्र दीर्घायु के साथ बनारस में वेष बदल कर रहने लगा। वहाँ नाई ने उसके साथ विश्वासघात किया और उसे मार डाला। वेष बदल कर उसका लड़का ब्रह्मदत्त के यहाँ नौकरी करने लगा और एक दिन शिकार के अवसर पर अपना परिचय राजा से दिया और कहा प्रेमसे ही घृणा को जीता जा सकता है[२]। बाद में उसे अपना राज्य लौटा दिया। तीन मासके बाद फिर जब संन्यासियों को होश हुआ तब वे लोग श्रावस्तीमें बुद्धके यहाँ क्षमा मांगनेके लिये आए[३]। श्रावस्तीमें ही बुद्धने अपना दसवाँ वर्षावास व्यतीत किया और ग्यारहवाँ मगध देश के एकनाला ग्राममें। कुछ लोगों के अनुसार

---

२ धम्मपद में भी इस प्रकार का उपदेश मिलता है—

(५) न हि वैरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदा चनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंदनो॥

३ विनय —१—३३६, जातक—३—४८६। बुद्ध के जंगल में जाने का उल्लेख उदान ४—६ में है। इस प्रसंग में और देखिये मज्झिम १—३२०। ३—१५२।

बुद्ध ने वह समय राजगृह में व्यतीत किया और वहाँ भारद्वाज ब्राह्मण को अपने धर्म्म में दीक्षित किया[४]।

इसके बाद वेरन्जामें उन्होंने अपना बारहवाँ वर्षावास व्यतीत किया और तब वहाँ से तक्षशिला के समीप सौरैया की ओर चले। फिर सांकाश्य, कन्नौज और प्रयागकी ओर गये। उधर से होते हुए बनारस और वहाँसे वैशालीके कूटागार भवन में पहुँचे। तेरहवाँ आराम चालिकामें और चौदहवाँ श्रावस्तीमें किया और वहीं अपने पुत्र राहुल को उपनीत किया। पन्द्रहवाँ आरामकाल उन्होंने श्रावस्तीके न्यग्रोधकुँजमें व्यतीत किया। इस समयमें दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। प्रथम तो यह कि अपने चचेरे शाक्य प्रधान महानामके समक्ष उन्होंने प्रवचन दिया और दूसरा यह कि इसी समय उनके खसुर सुप्रबुद्धने उन्हें स्त्री छोड़ने के दोष पर शाप दिया। सोलहवाँ आराम-काल उन्होंने आलवी में व्यतीत किया। आलवक-सुत्त में यह घटना है कि वहाँ वे आलवक के घरमें एक रात ठहरे थे और उस राक्षस ने उन्हें मनुष्यका माँस खिलाया था[५]। इस प्रकार उन्होंने सत्रहवाँ राजगृहमें, अठारहवाँ चालिय में, उन्नीसवाँ राजगृह के वेलुवन में, और बीसवाँ आराम श्रावस्ती के जेतवन में बिताया। वहीं उन्होंने आनन्दका अपना प्रधान शिष्य बनाया। इसी पर्यटनके बीच उन्होंने तिस्सनामक एक रुग्न सँन्यासी को श्रावस्तीमें निर्वाण प्राप्त कराया।

---

४ सुत्तनिपात १—४ (काशी भारद्वाजसुत्त), संयुक्त १—१७२

५ सुत्त निपात १—१० Thomas P. 119

बीसवें वर्ष में बुद्ध ने प्रसिद्ध डकैत अँगुलिमाल को अपने धर्म में दीक्षित किया और उसे भी भिक्षु बनाया। राजा पसेनदी को जब यह ज्ञात हुआ तब उसने बुद्धके समीप जाकर अँगुलिमालके अत्याचारोंका वर्णन किया।

आनन्दको प्रधान शिष्य बनाने की भी एक कहानी है। पहले यह नियम था कि प्रत्येक दिन एक-एक भिक्षु बुद्ध का भिक्षापात्र लेकर चलते थे। एक दिन नागसमाल उनका भिक्षापात्र लेकर चल रहे थे कि रास्ते में एक चौराहा मिला। नागसमाल ने एक रास्ता बतलाया और बुद्धसे उसी होकर चलने केलिये कहा किन्तु बुद्धने दूसरा रास्ता बतलाया। इस पर उसने कटोरा रख कर बुद्धको छोड़ कर चल दिया[७]। इसी प्रकार पहले मेघीय भी बुद्धको छोड़कर चला गया था[८]। बुद्ध अब बूढ़े हो चले थे इसलिये श्रावस्तीमें उन्होंने निश्चय किया कि उनकी सेवाके लिये उन्हें अब स्थायी भिक्षु चाहिये। सारिपुत्रने अपनेको समर्पित किया और मोग्गलानने भी एवं दूसरे अस्सी प्रधान शिष्योंने भी। किन्तु आनन्द चुप रहा और जब बुद्ध बोले तब आनन्द[१]ने आठ शर्तें रखीं। उसने चार बातोंसे परहेज चाहा—अगर बुद्धको सुन्दर वस्त्र मिले तो वह उसे (आनन्दको) नहीं दिया जायगा, जो भिक्षा बुद्धको मिलेगी वह उसे नहीं दी जायगी; उसे बुद्धकी

---

६ मज्झिम २—८६ (अँगुलिमाल—सुत्त)

७ उदान ८—७

८ उदान ४—१

१ आनन्दके विषयमें देखिये महापदान-सुत्त— दीघ २,६

गंधकुटीमें नहीं रहने दिया जाय; और यदि बुद्धको व्यक्तिगत निमन्त्रण मिले तो उसमें उसे सम्मिलित नहीं किया जायगा। चार वस्तुओंको स्वीकार करनेकी उसने आज्ञा माँगी। यदि बुद्धको कहीं निमंत्रण मिले तो वह उसके साथ जाय। यदि दूरसे मनुष्य बुद्धका दर्शन करने आवें तो वही उनको बुद्धके समक्ष उपस्थित करे, वह जब चाहे बुद्धका दर्शन कर सके और उनके समीप जा सके और बुद्ध जो कुछभी शिक्षा दें वह फिरसे दुहराकर उसे सुनावें। आनन्दकी ये आठों शर्तें मंजूर की गईं और वह उपस्थापक बना—याने शुश्रूषा और परिचर्या करने वाला। २५ वर्षों तक आनन्द बुद्धका विश्वास-पात्र सेवक रहा।

दूसरे दृष्टिकोणसे भी बुद्धका जेतवन-वास उल्लेखनीय है। उनके विरोधियोंने उनकी प्रसिद्धि एवं उनके यशपर धब्बा लगानेका प्रयत्न किया। उनलोगोंने भिक्षुणी सुन्दरीकी लाश लाकर बुद्धके विहारके सामने रखकर यह आरोप लगाया कि उसे बुद्धने ही मारा था। शीघ्र ही षड़यन्त्रकारियोंका पता लग गया। एक और उल्लेखनीय घटना उन दिनों हुई। अनाथपिण्डककी पुत्री सुभद्राका विवाह अंगके राजाके पुत्रसे हुआ। लड़की बौद्ध थी इसलिये उसे अपने पतिकी असंख्य यातनाओंके मध्यसे गुजरना पड़ता था। इसके निवारणके लिये बुद्ध अपने ५०० शिष्योंके साथ अंग गये और वहाँ उसके सम्पूर्ण परिवारको अपने धर्ममें दीक्षित किया। उसके बाद वे लौटकर श्रावस्ती आये और अनुरुद्धको अंगमें अपना काम पूरा करनेके लिये छोड़ दिया। बुद्धके अंग जानेका उल्लेख सानन्द सुत्तमें है। इसके बाद बुद्धका जीवन २० वर्षों तक शान्तिमय रहा। किन्तु उनके जीवनके अन्तमें दो और महत्वपूर्ण घटनायें घटीं।

जब बुद्ध ७२ वर्षके हुये तब उनके चचेरे भाई देवदत्तने यह प्रस्ताव किया कि उनको अब हट जाना चाहिये और उसे (देवदत्त को) संघका प्रधान बनना चाहिये। बुद्धने तीनबार उसके इस उद्देश्यका तिरस्कार किया और तबसे वह बुद्धका दुश्मन हो गया। देवदत्तने अजातशत्रुसे मित्रता की। उसकी मित्रताके दो उद्देश्य थे—(क) अजातशत्रुके पिता राजा बिम्बिसार,को जो बौद्ध-धर्मका समर्थक था, गद्दी से हटाना और (ख) बुद्धकी जगह अपनेको स्थापित करना। पहलेमें वह सफल हुआ २। किन्तु दूसरेमें देवदत्तको सफलता नहीं मिली। बुद्धके जीवनपर भी देवदत्तने तीन वार आक्रमण किया किन्तु असफल रहा, इसलिये उसने अब संघमें फूट डालनेका प्रयत्न किया। सन्यासियोंसे कहा कि भोजन, कपड़ा और आश्रम-सम्बन्धी नियम, कड़ा होना चाहिये। इसको मानते हुए भी बुद्ध इस नियमको सभीपर जबर्दस्ती लादना नहीं चाहते थे। देवदत्तने इस परिस्थितिसे फायदा उठाया और पाँच वज्जी भिक्खुओंको लेकर एक अलग संघ कायम किया। उनलोगोंको लेकर वह राजगृहके समीप, गयासिर पर्वतपर गया। एक दिन रातमें प्रवचनके समय उसने सारिपुत्र और मोग्गल्लानको देखा और उसे यह विश्वास हो गया कि वे लोग बुद्धको छोड़कर उसके समीप आये हैं इसलिये उसने उनसे प्रवचन देनेके लिये अनुरोध किया और स्वयं निद्रामें मग्न हो गया। उनके प्रवचनसे ५०० भिक्खु-गण पुनः बुद्धके संघमें सम्मिलित हो गये।

---

२ दीघ—२ में बुद्ध कहते हैं कि अजातशत्रुने अपने पिताको मारा।

उधर अजातशत्रु पर भी बुद्धका प्रभाव पड़ा। और उसने भी अपने पापका प्रायश्चित किया। राजवैद्य जीवकने उसे बुद्धके पास जानेको कहा। बुद्धका अजातशत्रुके साथ साक्षात्कार हुआ और वह स्वयं बौद्ध हो गया।

देवदत्तने बुद्धको मारनेका जो प्रयत्न किया था उसका उल्लेख करना आवश्यक है। सर्व प्रथम उसने एक मनुष्यको बुद्धकी हत्याके लिये भेजा था किन्तु वह व्यक्ति वहाँ पहुँचते ही बुद्धको देखकर, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया और अन्तमें बुद्धने ही उसे अपने संघ में ले लिया। उसके बाद दो धनुषधारियोंको बुद्धकी हत्या के लिये भेजा गया किन्तु वे लोग भी वहाँ पहुँचते ही बुद्धके सेवक बनगये। एक दिन जब बुद्ध गृद्धकूट में टहल रहे थे तब देवदत्त ने उनपर एक बड़ा पत्थर गिरा दिया किन्तु वह भी दो चोटियों के बीचही रह गया और उसके टुकड़ेसे बुद्ध को चोट लगी और रक्त-पात हुआ। इसके बाद भिक्खुओं ने उनके लिये शरीर-रक्षकका प्रस्ताव किया किन्तु तथागतने उसे अस्वीकार कर दिया। तथागत का कथन था कि निर्वाण प्राप्ति के बाद जीवनको कोई नहीं ले सकता था। उसके बाद देवदत्त ने पगले हाथीसे बुद्धको मरवाने का इन्तजाम किया। इन प्रयत्नों में असफल होनेके बाद ही उसने बुद्ध-संघ में फूट डालने का विचार किया। देवदत्तके व्यवहारमें क्षमा का स्थान नहीं था। विवाहिता स्त्री भी उसके संघकी भिक्खुनी होती थी। एक बार एक स्त्री अपने परिवार सहित उसके संघ में सम्मिलित हुई किन्तु देवदत्त को जब यह मालूम हुआ कि स्त्री गर्भवती हो गई है, तब उसने उसे संघ से निकाल दिया। बुद्धने उसके पातिव्रत को सुरक्षित रखते हुये अपने संघमें ले लिया। देवदत्तके प्रसंगमें अनेकानेक कहानियाँ है जिनमें एक

मंगोल महायान ग्रंथों में सुरक्षित है जिससे यह पता चलता है कि किस प्रकार देवदत्तने बोधिसत्व को पारमिताओं पर पहुँचने में सहायता की थी।[१] उसका बयान इस प्रकार है—"वे लोग मूर्ख हैं जो यह समझते हैं कि देवदत्त बुद्ध का दुश्मन था।"

षष्ठ अध्याय

आर्य अष्टांगिक मार्ग एवं निर्वाणकी व्याख्या

आर्य अष्टांगिक मार्ग

बुद्धने वेदोंकी अपौरुषेयता अस्वीकृत की। उनके अनुसार वैदिक यज्ञ, यन्त्र, मन्त्र, तंत्र, दान, पूजा एवं कर्मकाण्ड आदिसे मनुष्यके पापोंका नाश और निर्वाणकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वे सदाचारको अत्यधिक महत्व देते थे और सत्य पर ही निर्भर करते थे। सिद्धार्थ मानव प्रकृतिसे पूर्णरूपेण परिचित थे। बोधि-वृक्षके नीचे उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वह कोई नया दार्शनिक सिद्धान्त नहीं था, वरन उनके शब्दोंमें वही सनातन धर्म था। उन्होंने

१—Quated I. G. Schmid. Geschichte der Ost-golen P. 311 Thomas P 135 f.n.

निपुण और सुखकर था १। संयम सहित-आचरण ही उसका सार है २। उपरोक्त विचारकी विशद विवेचना नीचे दी जाती है।

आर्य-सत्य चार हैं। (क) दुःख, (ख) दुःख-समुदय (हेतु), (ग) दुःख-निरोध और (घ) दुःख-निरोधगामी मार्ग। इनको बुद्धने आर्य श्रेष्ठ) सत्य स्वीकार किया है। (क) दुःख सत्य का व्याख्या करते हुए बुद्धने कहा—"जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, मरण, शोक-रुदन, मनकी खिन्नता भी दुःख है। अप्रियसे संयोग, प्रियसे वियोग भी दुख है। इच्छा करके जिसे नहीं पाता है वह भी दुःख है। संक्षेपमें पाँचों उपादान स्कन्ध दुःख हैं३।" रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान ही पाँच उपादान स्कन्ध हैं। रूप उपादान स्कन्धमें चार महाभूत हैं यथा पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि। वेदना-स्कन्ध उसे कहते हैं जिसमें हम वस्तुओं या उनके विचारके सम्पर्कमें आने पर जो सुख-दुःख या न-सुख-दुखके रूपमें अनुभव करते हैं। वेदनाके बाद हमारे मस्तिष्क पर पहिले से ही अंकित संस्कारों द्वारा जो हम पहचानते हैं, इसे संज्ञा कहते हैं। रूपोंकी वेदनाओं और संज्ञाओंका जो संस्कार मस्तिष्क पर पड़ता है और जिसकी सहायतासे हमने पहचाना, इसे ही संस्कार कहते हैं। चेतना या मनको विज्ञान कहते हैं। बुद्धने इन पाँच उपादान स्कन्धोंको दुखरूप कहा है। (ख) दुख-समुदय (हेतु) दुःखका हेतु क्या है?—तृष्णा—काम (भोग , भव एवं विभवकी तृष्णा इन्द्रियोंके जितने प्रिय विषय हैं, उन विषयोंके साथ सम्पर्क, उनका विचार तृष्णाको पैदा करता है। काम [भोग] के लिये ही

१—सुत्तनिपात-वहीं

२—धम्मपद-२४-२५ ३—महासति पट्ठान-सुत्त (दीघ-निकाय २।९)

राजा राजासे लड़ते हैं, क्षत्रिय भी क्षत्रियों से, ब्राह्मण भी, ब्राह्मणोंसे, गृहपति (वैश्य) भी गृहपति से, माता भी पुत्र से पुत्र भी माता से, पुत्र पिता से, पिता पुत्र से, भाइ भाई से, बहिन भाई से, भाई बहिन से, मित्र-मित्रसे लड़ते हैं६। (ग) दुख निरोध—उस तृष्णाके परित्याग एवं विनाशको दुख निरोध कहते हैं। तृष्णा जब छूट जाती है, तभी उसका निरोध होता है। उसके नाश होने पर उपादान (विषयोंके संग्रह करने) का निरोध होता है और उपादानके निरोधसे भव (लोक) का निरोध होता है और भवके निरोधसे जन्म (पुनर्जन्म) का निरोध होता है। फिर जन्मके निरोधसे बुढ़ापा, मरण, शोक, रोना, दुख, मनकी खिन्नता इत्यादिका निरोध होता है ७। (घ) दुख निरोधकी ओर ले जानेवाला मार्ग क्या है --उपरोक्त आर्य-अष्टांगिक मार्ग जिसको आठ बातों को ज्ञान (प्रज्ञा) सदाचार (शील) और योग (समाधि) में बाँट सकते हैं:—

(क) *ज्ञान*—सम्यक् दृष्टि और सम्यक् संकल्प।

(ख) *शील*—सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म और सम्यक् जीविका,

(ग) *समाधि* सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

(क *ज्ञान*—सम्यक दृष्टि और सम्यक संकल्प–

सम्यक दृष्टि–कायिक, वाचिक, मानसिक ; भले

६–मज्झिम-निकाय १।२।३

७–राहुल-साँकृत्यायन–दर्शन दिग्दर्शन पृष्ठ ५०२–५१०

बुरे कर्मों के ठीक-ठीक ज्ञान को सम्यक दृष्टि कहते हैं। उदाहरणार्थ नीचे देखें—

	बुरे कर्म—	अच्छे कर्म—
(अ) कायिक	(१) हिंसा—	अहिंसा
	(२) चोरी—	अचोरी
	(३) व्यभिचार—	अव्यभिचार
(आ) वाचिक	(४) मिथ्याभाषण—	अमिथ्याभाषण
	(५) चुगली—	न चुगली
	(६) कटुभाषण—	अकटुभाषण
	(७) बकवास—	न बकवास
(इ) मानसिक	(८) लोभ—	अलोभ
	(९) प्रतिहिंसा—	अप्रतिहिंसा
	(१०) झूठी धारणा—	न झूठीधारणा

दुःख निरोध हेतु मार्ग का वास्तविक ज्ञान ही सम्यक दृष्टि कहा जाता है। राग, हिंसा, एवं प्रतिहिंसा रहित संकल्पों को ही सम्यक संकल्प कहते हैं।

(ख) *शील*—(अ) सम्यक वचन—झूठ, चुगली, कटुभाषण और बकवास से रहित सच्ची मीठी बातों को ही सम्यक् वचन कहते हैं।

(आ) सम्यककर्म—हिंसा चोरी व्यभिचार रहित कर्म को ही सम्यक कर्म कहते हैं।

(इ) सम्यक जीविका—झूठी जीविका को परित्याग कर सच्ची जीविका से शरीर को संचालित करना ही सम्यक जीविका है। निम्न जीविकाओं को बुद्धने झूठी जीविका कहा है—"हथियार का

व्यापार; प्राणियों का व्यापार, मांसका व्यापार, मद्य का व्यापार, विषय का व्यापार"१।

(ग) समाधि—(अ) सम्यक् प्रयत्न—इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावनाओं को रोकने तथा अच्छी भावनाओं के उत्पादन का प्रयत्न, उत्पन्न अच्छी भावनाओं का प्रयत्नही सम्यक् प्रयत्न है।

(आ) सम्यक् स्मृति—काय, वेदना, चित और मन के धर्मों की ठीक स्थितियों—उनके मलिन, क्षण-विध्वंसी आदि होने—का सदा स्मरण रखना ही सम्यक् स्मृति है।

(इ) सम्यक् समाधि—चित की एकाग्रताको समाधि कहते हैं२। मनके विक्षेपको दूर करना ही सम्यक् समाधि है। इस पर बुद्धकी शिक्षा निम्न लिखित है—"सारी बुराइयों को न करना, और अच्छाइयों का सम्पादन करना तथा अपने चित्त का संयम करना।"

बुद्धने अपनी शिक्षाका प्रयोजन निम्न लिखित बतलाया३ भिक्षुओ! यह ब्रह्मचर्य (भिक्षु का जीवन) न लाभ-सत्कार-प्रशंसा के लिये है, न शील (=सदाचार) की प्राप्तिके लिये। न समाधि प्राप्तिके लिये, न ज्ञान-दर्शनके लिये, जो न अटूट चित्त की मुक्ति है। उसीके लिये यह ब्रह्मचर्य है। यही सार है। यही उसका अन्त है। भिक्षुओ! ४ बहुतजनों के हितके लिये,

१—अंगुतर-निकाय ५

२—मज्झिम-निकाय १।५।४

३—वहीं—१।३।६

४—संयुक्त निकाय—४।१।४ महावग्ग १।२

बहुत जनोंके सुखके लिये, लोक पर दया करनेके लिये, देव-मनुष्योंके प्रयोजन और हित-साधनके लिये विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ।" बुद्ध सदा जागरूक और सचेत रहते थे। उत्थान, विचार और अप्रमाद उनके जीवन और शिक्षाका सार था।१ विषय सुखमें फँसना अत्यन्त हीन, ग्राम्य, अनार्य एवं अनर्थकर है, साथ ही शरीरको व्यर्थमें अति कष्ट देना भी अनर्थकर है। अतः तथागतने मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम-मार्ग) को अपनाया।२ आत्म-संयम ही इस धर्म का सार पदार्थ है। यही उसकी भित्ति और यही उसका आधार है।३

१—सुत्त-निपात ३३१—३३४, धम्मपद २१—३५—
अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं
+ + × × +
ते झायिनो साततिका निच्चं दलह परकम्मा
२—महावग्ग १।१ फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेम अनुत्तरं
धम्मपद—२१,....२३

३—"These were those times in which a life devoted to the search for the highest, for a felicity beyond all that the world could give, was not considered madness but as something worthy of all honour. These were the times, in which it seemed natural not only to preach the good and true, but also to live it. If such consistant uniformity can be ascribed to any man at all, there most surely is Gautama the Buddha among such men"—Paul Dahlke, "Buddhist Essays P. 18-19.

बुद्धने अहिंसा, सदाचार एवं त्याग पर सबसे ज्यादा जोर दिया। धम्मपदमें बुद्धने भिक्षुओंको उपदेश दिया है कि कभी किसीको बुरा न मानना चाहिए, किसीसे घृणा न करनी चाहिये; घृणाका अन्त प्रेमसे होता है, हृदयको शुद्ध करना चाहिये और भलाई करनी चाहिये।४ महावग्गके पब्बज्जासुत्तमें घरके जीवनको दुखमय और अपवित्र बतलाया है। सुत्तनिपात संसारको बुरा बतलाता है।५ बुद्धने बतलाया कि उनके नियमोंके पालन से ही जीवन सफल होगा। मानव जीवनके लिये यह श्रेयस्कर है कि वह अपने विवेक और बुद्धिसे काम ले। उन्होंने सद्विच्छाके प्रचारके लिये पूर्ण प्रयत्न किया। बुद्धका उपदेश था कि लोग अपने मन से दुर्वासनाओंको हटा दें। उन्होंने सकल संसृतिको कर्म-प्रधान बतलाया।६ उन्होंने मनुष्य और देवताओंको मोक्षका मार्ग दिखलाना अपना और अपने शिष्योंका कर्त्तव्य समझा। उनका लक्ष्य था कि प्रत्येकको निर्वाण प्राप्त करने में सहायता की जाय। कहा जाता है कि उनके उपदेशोंसे प्रकृति भी मुग्ध हो गई। सत्कार्यका फल सदा ही अच्छा

४—धम्मपद १-२।१८३ "Buddhism .... showing moral law not merely as a veto for the immoral doer, but also as a guide for the man willing to do well". – Mrs. Davids, Out lines of Buddhism" P.29.

५ सुत्तनिपात ३।७।८

६ समय पाकर कर्म विपाक से सुख दुखादिक भी मिटते सभी
कथित है निगमागम में यही, सुहृद, मुक्ति सदा अविनाशीन।
अनूप शर्मा "सिद्धार्थ" सर्ग १५-पृ० २३१

होता है और एक बारके अच्छे कार्यका फल संसारमें कार्य-कारणका रूप धारण कर अनन्त काल तक फैलता जाता है। उनके उपदेशोंमें किसी प्रकारकी गांठ और पहेली नहीं है। धम्मकी ज्योति और धम्मकी शरणमें जाना ही बुद्धका अन्तिम उद्देश्य था।७

उपरोक्त वर्णन एवं व्याख्याओंके अध्ययनसे बुद्धके उपदेशों की अच्छी झाँकी मिलती है। संसारकी सभी धार्मिक प्रवृतियोंके मूल तत्वोंमें समानता होते हुए भी बौद्ध धर्म की अपनी एक अलग विशेषता है। इतना सरल एवं सौम्य उपदेशका दूसरा उदाहरण शायद मिलना कठिन है। उपदेश और उस उपदेश में जो गूढ़दर्शनका समावेश है, इससे इसकी रहस्य-वादिता प्रत्यक्ष हो जाती है। भारतीय समाजसे प्राचीन कर्मकाण्डोंके प्रभावको अन्त करनेका सर्वप्रथम श्रेय तो महात्मा बुद्धको ही प्राप्त हुआ किन्तु ऐसा करनेमें उन्हें काफी प्रयास करना पड़ा। "बहुजन हिताय; बहुजन सुखाय" लक्ष्यको बुद्धने अपने उपदेशोंकी आधार-शिला बनाया था। उन्होंने किस प्रकार अपने उपदेशका प्रसार किया, इस पर विचार करनेके पूर्व हम निर्वाण की व्याख्या एवं उसका वास्तविक अर्थ समझ लेना उचित समझते हैं।

निर्वाणकी व्याख्या

निर्वाण शब्दका अर्थ है "बुझना"— दीप अथवा आगका जलते-जलते बुझ जाना। प्रतीत्यसमुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाहरूपसे उत्पन्न) नाम-रूप (=विज्ञान एवं भौतिक तत्व) तृष्णाके गारेसे मिलकर जो एक जीवन-

७ धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्‌ असरणा।

प्रवाहका रूप धारणकर प्रवाहित हो रहा है, इस प्रवाहका अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है। पुराने तेल-बत्ती या ईंधनके जल चुकनेपर जैसे अग्नि या दीपक स्वयं बुझ जाता है, उसी प्रकार आस्रवों =चित्तके मलों, काम-भोगों, पुनर्जन्म एवं अनित्य-आत्माके नित्यत्व आदिका दृष्टियों] के क्षीण होनेपर यह आवागमन नष्ट हो जाता है। बुद्धने निर्वाण शब्दको इसी भावके द्योतनके लिये चुना था। किन्तु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि निर्वाण-गत पुरुष [=तथागत] का मरनेके उपरान्त क्या होता है। बुद्धने इसे अस्पष्ट रखा।१ उदान-सुत्तके निम्न लिखित वाक्यको लेकर कुछ लोग निर्वाणको एक भावात्मक ब्रह्मलोक जैसा बनाना चाहते हैं।२

अजात, अभूत, अकृत [=असंस्कृत]—आदि निषेधात्मक विशेषणोंसे किसी भावात्मक निर्वाणको तभी सिद्धकर सकते हैं, जब कि उसके आनन्दका भोगनेवाला कोई नित्य ध्रुव आत्मा होता। बुद्धने निर्वाण उस अवस्थाको कहा है, जहाँ तृष्णा क्षीण हो गई और जहाँ आस्रव नहीं रह जाते ३। निर्वाण अन्तिम सत्य है४। धम्मपदमें कहा है, ''निब्बाणं परमं सुखम्।'' सांसारिक वासनाओं एवं भावनाओंके अभावको

१ इतिवुत्तक २,२,६

२ उदान ८,३

३ उदान ८,२—

दुद्दसं अनत्तं नाम न हि सच्चं सुदस्सनं।
पटिविद्धा तण्हा जानतो पस्सतो नत्थि किञ्चन॥

४ नागार्जुन, माध्यमिकसूत्र २५,—

निर्वाणस्य या कोटिः कोटिः संसरणस्य च।
न तयोरन्तरं किंचित् सुसूक्ष्ममपि विद्यते॥

ही निर्वाण कहा जा सकता है। ध्यान एवं समाधिके द्वारा निर्वाण प्राप्त हो सकता है। ज्ञान-शक्तिके अतिशय केन्द्रीय-करणके कारण सत्य दर्शन होता है५। दुःख कर्मके बन्धनसे होता है। कर्मके छूटनेसे बन्धन छूट जाता है और दुःख दूर हो जाता है तथा शान्ति मिल जाती है। यही निर्वाण है। निर्वाणकी व्याख्या और तरीके से भी हुई है।

एक बार महामतीने बुद्धसे पूछा—"प्रभु! निर्वाण क्या है?" बुद्धने उत्तर दिया क निर्वाणकी व्याख्या विभिन्न लोगोंने विभिन्न प्रकारसे की है। ऐसे व्याख्याकारोंको चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—[१] ऐसे व्यक्ति जो कष्ट सहन कर रहे हैं या उससे डरते हैं और निर्वाणकी बात सोचते हैं, [२] ऐसे दार्शनिक जो निवर्णाको दूसरी वस्तुओंसे अलग करना चाहते हैं, [३] ऐसे शिष्य जो अपने सम्बन्धमें ही निर्वाणके विषयमें सोचते हैं और [४] बुद्धोंका निर्वाण। प्रथम कोटिके सोचनेवाले लोग यह नहीं समझते हैं कि जीवनको निर्वाणसे अलग नहीं किया जा सकता है। इसका मुख्य कारण यह है कि ये लोग निर्वाणकी वास्तविक विशेषताको न समझकर मुक्तिके कई रास्तेपर विचार करते हैं। तथागतकी शिक्षासे अपरिचित होनेके कारण ये लोग निर्वाणको जीवनसे अलग वस्तु समझते हैं। कुछ दार्शनिक इसकी तुलना ब्रह्मलोकसे करते हैं और यही कारण है कि निर्वाण सम्बन्धी उनका विचार संकीर्ण मालूम पड़ता है। तथागतके अनुसार जीवन और निर्वाण एक दूसरेसे अलग वस्तु नहीं है। जीवनमें तृष्णा एवं अहंका जब लोप हो जाता है

---

५ धर्मकीर्ति न्यायबिंदु—

भूतार्थे भावना प्रकर्ष पर्यन्तजं योगिज्ञानं चेति॥

और उसके स्थानपर जब स्वच्छ ज्ञानकी अनुभूति होती है, तभी मनुष्यके जीवनमें वासनाओंका अन्त होता है और उसके बाद ही निर्वाण प्राप्त होता है। बोधिसत्वके निर्वाणका वास्तविक अर्थ है कि सभी लोगोंको मुक्त करानेका प्रयास किया जाय। निर्वाणकी व्याख्याके सम्बन्धमें विभिन्न मत अब भी उपस्थित हैं६। कुछ लोगोंने तो निर्वाणसे आत्मा का विनाश समझा है। अश्वघोषने अपने बुद्ध-चरित्रमें निर्वाणकी व्याख्या इस प्रकार की है—"जिस प्रकार तेल समाप्त हो जानेपर प्रदीप बुझ जाता है और उसके बाद (याने उसके बुझनेपर) न आकाश, पृथ्वी या इधर जाता है बल्कि वहीं रहता है जहाँ पहले था, उसी प्रकार साधक भी निर्वाणोपरान्त कहीं नहीं जाता है। उसका सम्पूर्ण क्लेश समाप्त हो जाता है और उसे शान्ति मिल जाती है।" निर्वाणोपरान्त अवस्था क्या होती है इसपर अश्वघोष भी चुप हैं।

बुद्ध चरित्रमें इस सिलसिलेमें और भी दो तीन बातें हैं जिनका उल्लेख करना आवश्यक है—(क) मुक्ति पानेके लिये तृष्णाका उच्छेद आवश्यक है। कारणके क्षयसे ही कार्यका क्षय होगा। (ख) तृष्णाके क्षयसे ही दुःखका क्षय होगा। अतः धर्मके साथ आत्मीयता होनी चाहिये। मंगलमय एवं शान्तिमय धर्मका आश्रय लेनेसे तृष्णासे विराग होगा। धर्म ही प्राप्य वस्तु है और सभी दृष्टिकोणसे सर्वश्रेष्ठ भी।

'To call it a destruction' is to assume that there is something to destroy, and to call ...:ess is to assume the cont-...st of a substantial world'—Lin Yutang Wisdom of China and India' P. 550.

...लेश क्षयात् केवलमेति शांतिम् — अश्वघोष

निर्वाण सम्बन्धी प्रश्न पर पाली ग्रन्थों में भी विचार किया गया है। बुद्ध से जब यह पूछा गया कि निर्वाण के बाद कुछ रहेगा अथवा नहीं, तब बुद्धने उत्तर दिया, "नहीं"। निर्वाणके बाद क्या होगा, अवस्था कैसी रहेगी अथवा उसका रूप क्या होगा, इस सिलसिले में सबका बुद्धने एकही उत्तर किया "नहीं"। इसी अवस्था को महायानमें शून्य कहा गया है। निर्वाणही अंतिम शान्ति है। दुख के कारण के समाप्त होने से ही निर्वाण का रास्ता खुलता है। प्रत्येक प्रकार की विषय-वासनाओं से जो मुक्ति मिलती है, उसे ही निर्वाण कहते हैं।

निर्वाण की व्याख्याके विषयमें मिलिन्द ने भी नागसेन से पूछा था। मिलिन्द ने अपने आदरणीय गुरू नागसेनसे प्रश्न किया, कि "गुरु, आप जिस निर्वाणकी बात सदा कहते हैं, वह क्या है? मुझे भी समझाइये"। इसके उत्तरमें नागसेन ने कहा कि निर्वाण को किसी रूपमें समझाना तो कठिन है। पुनः मिलिन्द ने कहा कि यह तो समझमें नहीं आता कि निर्वाण के विषय में लोगोंको समझाया नहीं जा सकता। इसपर नागसेन ने राजा से पूछा—" "बतलाओ कि महासमुद्र नामक कोई वस्तु है या नहीं?"। राजाने उत्तर दिया—"हाँ है"। नागसेन ने राजा से कहा—"मान लो कि यदि तुमसे कोई पूछे कि उस महासमुद्रमें कितना जल है और उसमें कितने जानवर रहते हैं, तो क्या तुम ठीक ठीक बतला सकोगे? राजा ने उतर दिया, मैं यह उत्तर दूंगा कि ऐसे प्रश्न न पूछे जाँय क्योंकि न कोई समुद्र के जल को नाप सकता है और न कोई उसमें रहने वाले जन्तुओं को गिन ही सकता है। तब नागसेन ने फिर पूछा—जब समुद्र एक वास्तविक चीज है

तब तुम ऐसा उत्तर क्यों दोगे? । राजा ने कहा, "चूंकि उस प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक देना केवल असम्भव ही नहीं, बरन मानव शक्ति के बाहर की बात है, इसलिये इसका उत्तर नहीं दूंगा।" तब नागसेन ने कहा, "महाराज! ठीक निर्वाणका रूप बतलाना या उसकी वास्तविक व्याख्या इसी प्रकारसे असम्भव है यद्यपि यह बात सत्य है कि निर्वाण एक वास्तविक चीज है"। उपरोक्त कथाओं के आधारपर कुछ लोग निर्वाण की तुलना वेदान्त-दर्शन के निर्गुण ब्रह्म से करते हैं[१]। इसके अस्तित्व के बावजूद भी इसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। कथावस्तु में कहा गया है—"निर्वाण ही मुक्ति है, शान्ति है, आश्रय है, सर्वोत्तम पथ है, स्थिर है एवँ आराध है"। बुद्ध चरित में अश्वघोष बुद्ध से कहलाते हैं—"जबतक आत्मा का अस्तित्व स्वीकृत होगा, तबतक किसी प्रकार से उसकी मुक्ति नहीं हो सकता है"। बुद्ध के शिष्य लोग सँसार को भाव पदार्थ एवँ निर्वाण को अभाव समझते थे। मनके अपने अनुसार निर्वाण की कल्पना की जा सकती है। उनके शिष्योंने आत्माको शून्यरूप, अनिर्वचनीय रूप, चतुष्कोटि-विनिमुक्तरूप समझा।

निर्वाण की व्याख्या और भी कई प्रकारसे हो सकती है। मनुष्य जब ज्ञान-लाभ के लिये व्याकुल होता है तब उसे चित कहा जाता है। बोधिचित होने के बाद वह सत्पथ अथवा धर्म पथपर अग्रसर होता है। क्रमशः वह ऊपर उठने लगता है। उत्कट उद्यम से ही वह उठता है। इसजन्ममें भी वह बोधि लाभ कर सकता है। निर्वाण के बाद एक अनिर्वचनीय अवस्था का उदय होता है। सोपाधिशेष निर्वाण एवं निरुपाधिशेष निर्वाण के बाद ही पूर्ण मुक्ति होती है। बोधि वृक्षके

नीचे जो बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुआ था उसे ही सोपाधिशेष निर्वाण कहते हैं और कुशीनारा में जो उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त किया उसे निरुपाधिशेष निर्वाण कहते हैं। बुद्ध सोपा० धिशेष निर्वाण को ही अधिक महत्व देते हैं। निर्वाण का पथ संघके लिये खुला हुआ है और उसे पाने के चार रास्ते बतलाये हैं जिसे "मार्ग" और "फल' में बाँटा जा सकता हैं। इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष या निर्वाण प्राप्त कर सकता है। निर्वाण की तुलना परम शान्ति की अवस्था से की गई है। अविद्याके नाश से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है। अविद्या पर जीत पाने से ही साँसारिक इच्छाओं से मुक्त होना सम्भव है और इस प्रकार मुक्त होकर ही धर्म और कर्त्तव्य पूरे हो सकते हैं। पुनः इस संसारमें लौटने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। इसेही निर्वाण कहते हैं। अविद्या पर विजय प्राप्त करने वालोंको पारितोषिक मिलेगा ही, इसमें बुद्धको सन्देह नहीं था। बौद्धोंके अनुसार यह पारितोषिक इसी जीवनमें मिलता है। घृणा और इच्छा पर विजय प्राप्त करना ही निर्वाण है। पार्थिव १ सुखोंके ठुकरानेके बाद ही निर्वाणके रास्ते पर चढ़ा जा सकता है। निर्वाण पूर्णताका द्योतक है निर्वाणके लिये भी परिश्रम करना पड़ता है क्योंकि परिश्रम बिना संसार में कुछ नहीं होता। पापरहित मनुष्य ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। निर्वाणके पीछे वास्तविक उद्देश्य यह था कि मानव-समाजको इस संसारके दुःख और चिन्तासे मुक्त कराया जाय। जिस प्रकार समुद्रमें एक ही प्रकारका नमकीन स्वाद रहता है उसी प्रकार बुद्धके सिद्धान्तमें "मुक्ति" छोड़ कर और२ दूसरा स्वाद नहीं है। निर्वाणमें ही चेतनाको पूर्ण शान्ति मिलती है।

निर्वाणके बाद जब शरीर छूट जाता है तब क्या होता है? क्या आत्माका नाश हो जाता है? स्वयं बुद्धने इसका उत्तर नहीं दिया। संयुक्त निकायमें वच्छगोत बुद्धसे पूछता है कि आत्मा रहता है या नहीं? पर बुद्ध कोई उत्तर नहीं देते २। आनन्द भी यह जानना चाहता है कि मृत्युके बाद बुद्धका क्या होता है परन्तु वह उसे भी इस प्रश्नका उत्तर नहीं देते हैं। बुद्धने निर्वाणके बाद आत्माके प्रश्नको प्रश्नरूपमें ही रहने दिया। आत्मा पर विशद विश्लेषण पीछे होगा। यहाँ केवल इतना ही स्मरण रखना आवश्यक है कि बुद्ध तत्वज्ञानको अपने कार्य-क्षेत्रसे बाहर रखते थे। निर्वाण प्राप्तिका मार्ग बता देना ही उनका मुख्य कार्य था। किन्तु बौद्ध दर्शनिकोंके बीच यह प्रश्न उठता ही रहा। संयुक्त निकायमें एक विधर्मी भिक्षु यमक बुद्धके कथनोंसे यह सिद्ध करता है कि मरनेके बाद तथागत अर्थात् बुद्ध सर्वथा नष्ट हो जाता है। और वह कोरा शून्य रह जाता है। सारिपुत्र को यह अर्थ मंजूर नहीं है। बहुत प्रश्नोत्तरके बाद सारिपुत्र यमकसे कहता है कि तथागतको तो तुम जीवनमें ही नहीं समझ सके, भला मरनेके बादकी उनकी स्थितिको क्या समझोगे? बौद्ध दार्शनिकोंके बीच इस प्रश्नको लेकर काफी मतभेद रहा। कुछ लोगोंने तो यह समझा कि निर्वाणके बाद आत्मामें परिवर्तन नहीं हो सकता अतः आत्माका अस्तित्व मिट जाता है।

दुःख-निरोधकी अवस्थाका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है और इस दुःख-निरोधको ही निर्वाण कहते हैं। इसकी प्राप्ति जीवन-काल में भी होती है, राग द्वेषों पर विजय प्राप्त कर, आर्य सत्योंका निरन्तर ध्यान करते हुए मानव-गण

समाधिके द्वारा जब प्रज्ञा प्राप्त कर लेते हैं तब फिर उन्हें सांसारिक विषयोंके लिये आसक्ति नहीं रहती। एवं प्रकारेण वह मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त करता है। मोक्ष-प्राप्त व्यक्तिको ही अर्हत कहते हैं। निर्वाणसे अकर्मण्यताका बोध करना गलत है। सम्यक् ज्ञानकी प्राप्ति तबतक सम्भव नहीं जबतक मनसे बाह्य वस्तुओंको नहीं हटाया जाय और इसके लिये ही तो आर्य-सत्यों पर केन्द्रीभूत होकर मनन करना पड़ता है। प्रज्ञा-प्राप्तिके बाद निरंतर समाधिमें मग्न रहनेकी आवश्यकता नहीं रहती है और न जीवनके कर्मोंसे विरत रहनेकी आवश्यकता ही। उपरोक्त कथनकी पुष्टि इस बात से होती है कि निर्वाण प्राप्त होनेके बाद भी बुद्धका जीवन कर्ममय ही रहा। बुद्धने दो प्रकारसे कर्मकी व्याख्या की है— १) कर्म राग, द्वेष तथा मोह के कारण होता है (२) कर्म बिना राग, द्वेष, मोहका भी होता है। प्रथम प्रकारके कर्मके फलस्वरूप ऐसा संस्कार पैदा होता है जिससे हमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है। दूसरे प्रकारका कर्म अनासक्त भावसे तथा संसारको अनित्य समझकर किया जाता है जिससे पुनर्जन्मकी सम्भावना नहीं रह जाती है। इसका दृष्टान्त अंगुत्तरनिकायमें इस प्रकार दिया गया है कि साधारण ढंगसे यदि बीजका वपन किया जाय तो पौधेकी उत्पत्ति होती है, किन्तु यदि बीज को भूंज लिया जाय तो उसके वपनसे पौधेकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। राग, द्वेष एवं मोहसे प्रेरित होकर कर्म करने से ही पुनर्जन्म होता है और अनासक्त भाव से कर्म करने पर जन्म-ग्रहण नहीं होता। निर्वाण-प्राप्तिके बाद दूसरोंके प्रति प्रीति और दया और भी बढ जाती है।

बुद्ध निम्न प्रकारके प्रश्नोंकी चर्चा भर करते हैं, उनका कोई

समाधान नहीं देते। पोट्ठपाद-सुत्तके अनुसार बुद्धने दश प्रश्नों का समाधान करना असम्भव तथा व्यावहारिक दृष्टिसे व्यर्थ बतलाया। वे प्रश्न इस प्रकार हैं (१) क्या यह लोक शाश्वत है? (२) क्या यह अशाश्वत है? (३) क्या इसका अन्त है? (४) क्या यह अनन्त हैं? (५) आत्मा तथा शरीर क्या एक है? (६) क्या आत्मा शरीरसे भिन्न है? (७) तथागत क्या मृत्युके बाद फिर जीवन धारण करते हैं? क्या वे मृत्यु के बाद पुनर्जन्म नहीं धारण करते? (९) क्या वे मृत्युके बाद जीवन धारण करते हैं और नहीं भी करते हैं? (१०) क्या वे न अमर होते हैं और न मरणशील ही?

कुछ लोग निर्वाण-प्राप्त-व्यक्ति की अवस्थाको वर्णनातीत समझते हैं।१ निर्वाणके बाद पुनर्जन्म एवं तज्जनित दुःख सम्भव नहीं है क्योंकि उसके बाद की अवस्था पूर्णतया शान्त, स्थिर एवं तृष्णा विहीन होती है। इसके बाद ही सभी दुखोंसे मुक्ति मिल जाती है।

सप्तम अध्याय
बुद्धकी कथायें

बुद्धके व्यक्तित्वमें लोकोत्तर विशेषता थी। करुणा, दया एवं क्षमाके तो वे मानो अवतार ही थे। भय उनके समीप फटकने नहीं पाता था। शांति और आनन्द उनके चेहरेसे टपका पड़ता था। वे समय-समय पर आनन्द के साथ घुल-मिलकर बातें करते थे। उनका सौन्दर्य बोध भी अगाध था। एक स्थानमें वे कहते हैं कि उन्होंने बहुत देशोंमें भ्रमण किया किन्तु कहीं भी उन्हें यथार्थ सुरम्य स्थान देखनेको

नहीं मिला। एक बार उन्होंने लिच्छवी नगरके सौन्दर्यका वर्णन आनन्दसे किया था। वे एकान्त-प्रिय थे किन्तु घोर निर्जनता भी उन्हें नहीं भाती थी। यही कारण है कि वे प्राग-बोधि-पर्वतको त्याग कर उरुवेला चले आये थे। न वे नगरका कोलाहल पसन्द करते थे और न अरण्यकी नीरवता। वे ऋषिपतनमें 'मृगोद्यान', राजगृहमें "वेणुवन", वैशालीमें 'महावन', कौशाम्बीमें "शिंशपावन" और श्रावस्तीमें 'जेतवन" ही पसन्द करते थे। इन्हीं सब वनोंमें उन्होंने अपने ज्ञानका प्रचार किया था। जीवनके सभी क्षेत्रोंमें मनुष्य 'मध्य पथ' का अनुसरण करें, यही उनका मुख्य उद्देश्य था और इसीका प्रत्यक्ष दृष्टान्त उन्होंने लोगोंके समक्ष बराबर रखा।

किसीको समझानेकी शक्ति बुद्धमें असीम थी। सुन्दर एवं मधुर वचन तो उनके मुखकी शोभा थी। वे मौन-व्रत-धारी नहीं थे। मौनव्रतावलम्बीकी तुलना वे पशुसे करते थे। पथ-पर्यटनमें भी वे शिष्योंको उपदेश देते ही चलते थे। इसका सबसे जबर्दस्त दृष्टान्त है 'ब्रह्मजाल-सुत्त।" यह ग्रन्थ उन्हीं आलोचनाओंका सारांश है जो बुद्धने अपने शिष्योंको राजगीरसे नालन्दा जाते हुए दिया था। उनके व्यक्तित्वमें कुछ विशेष आकर्षण शक्ति थी। एकबार एक संन्यासीने महावीरसे कहा था कि श्रमण गौतम मायावी हैं और वे मायाकी भूल-भुलैयामें लोगोंको शिष्य बना लेते हैं अतः महावीरके शिष्यगण श्रमण गौतमके समीप न जायँ। बुद्धके मस्तिष्कका मध्यम भाग कुछ ऊँचा था और ललाट प्रशस्त था। दोनों आँखें तीक्ष्ण थीं और पुतलियाँ खूब काली थीं। वक्षस्थल, स्कन्ध और बाहु काफी प्रशस्त और-लम्बे थे।

सोणकी कथा

सोण नामक एक भिक्षुको बहुत तपस्याके बाद भी कोई लाभ नहीं हुआ अतः उसने यह निश्चय किया कि पुनः सांसारिक सुख-भोग में लिप्त हो जाँय। ऐसा सुनते ही बुद्ध उसके पास गये और पूछा "सोण, गृह-त्यागके पूर्व क्या तुम वीणा बजा सकते थे ?" उसने उत्तर दिया—"हाँ, भदन्त"। इसपर वार्त्तालापके द्वारा उन्होंने वीणाके दृष्टान्तसे उसे यह समझा दिया कि अति प्रयास एवं अत्यल्प प्रयास दोनों हानिकारक हैं[1] और उसने अपने बुरे संकल्पका परित्याग किया।

मालुंक्य-पुत्रकी कथा

बुद्ध-चरित्रको अच्छी तरह समझनेके लिये यह आवश्यक है, कि हमलोग बौद्ध-धर्मके लक्ष्यको अच्छी तरह समझें। जिसे बुद्ध धम्म कहते थे उसे ही हम धर्मके नामसे जानते हैं। उनके लक्ष्यको हम उनकी वाणीमें ही अच्छी तरह समझ सकते हैं। मज्झिमनिकाय के "चुल्ल मालुंकवाद" में एक कथा इस प्रकार है। मालुंक्य पुत्र निम्नलिखित प्रश्नोंका उत्तर चाहता था—"जगत अनन्त है अथवा सान्त" और मृत्युके बाद तथागतका कोई अस्तित्व रहेगा अथवा नहीं।" वह इन्ही सब शंकाओंका समाधान चाहता था और उसका कथन था कि इसके बिना उसे चैन नहीं मिल सकती। इन्हीं शंकाओंके समाधानके लिये वह बुद्धके समीप आया।

बुद्धने कहा—"मालुंक्य-पुत्र ! क्या मैंने पहले तुम्हें कुछ कहा था ? क्या मैंने तुमसे यह कहा था कि तुम मेरे पास

---

१. महावग्ग ५।१।१६—अनुवाद मेरा ही है—

आओ और मेरा शिष्य बनो तब मैं तुम्हारे तत्व-सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर दूँगा ?'

मालुंक्य पुत्र—"नहीं भदन्त, आपने तो ऐसा नहीं कहा था।"

बुद्ध—"क्या तुमने हमसे यह कहा था कि तुम मेरा शिष्य इसलिये बन रहे हो कि मैं तुम्हारे तत्व सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर दूँ ?"

मालुंक्य पुत्र—"नहीं भदन्त, मैंने ऐसा भी नहीं कहा था।"

बुद्ध—"देखो मालुंक्य-पुत्र. एक कथा है। यदि किसी व्यक्तिको विषाक्त बाण (तीर) लग जाय और जब उसकी भलाई के लिये उसके आत्मीयगण एक सुदक्ष चिकित्सकको बुलावें और तब यदि आहत व्यक्ति यह कहे कि जबतक उसे यह पता न लगेगा कि बाण किसने मारा तब तक वह चिकित्सा नहीं करावेगा—अथवा जबतक उसे यह पता नहीं लगेगा कि जिसने मुझे बाण मारा उसे लोग क्या कहते हैं। अथवा जिससे उसने मुझे मारा वह अस्त्र कैसे बना, यह सब बिना जाने हुये चिकित्सा नहीं कराने दूँगा तो इस हठका एक ही परिणाम होगा। वह आहत व्यक्ति, चिकित्सा उपलब्ध होते हुए भी, चिकित्सा न कराकर, प्राण त्याग करेगा। इसी प्रकार, तुम्हारा भी प्रश्न है कि जगत अनन्त है अथवा सान्त, ससीम अथवा असीम; देह एवं प्राण एक हैं अथवा भिन्न इत्यादि। बुद्धने अपने शिष्योंको इस आशयका उपदेश कभी दिया ही नहीं। कारण, इनके जानने से ज्ञान या शान्ति लाभ नहीं होता है। जिससे ज्ञान लाभ अथवा शान्ति लाभ हो, इस सम्बन्धमें बुद्धने स्वयं शिक्षा दी है और वह है चार आर्य सत्य। मैं अप्रकाशितको प्रकाशित करना नहीं चाहता हूँ।"

क्षेमा और प्रसेनजित् की कथा

बुद्धके जीवनका एक मात्र लक्ष्य था मानव जातिको दुःख से मुक्त करना। वे स्वयं भी अपनेको तात्विक प्रचारक नहीं समझते थे। बुद्ध-कथामें ऐसी अनेक घटनायें मिलती हैं जिनसे उनके विचारोंको समझने में सहायता मिलती है। संयुक्त निकाय का एक प्रश्न यहाँ उल्लेखनीय है। एक बार कोशलराज प्रसेन-जित् साकेत होता हुआ श्रावस्ती जा रहा था। पथमें बुद्धकी शिष्या भिक्खुनी क्षेमासे उसका साक्षात्कार हुआ। क्षेमा प्रसिद्ध ज्ञानवती थी। उसका अभिवादन करते हुए प्रसेनजितने पूछा—"आर्ये, क्या मृत्युके बाद तथागतका कोई अस्तित्व रहता है?"

भिक्खुनी क्षेमा—"महाराज, भगवानने इस प्रकार कभी नहीं कहा है कि मृत्युके बाद तथागतका अस्तित्व रहता है।"

प्रसेनजित्—"आर्ये; तब क्या मृत्युके बाद तथागतका अस्तित्व रहता ही नहीं?"

क्षेमा—"महाराज, भगवानने इस प्रकार भी नहीं कहा है कि मृत्युके बाद तथागतका अस्तित्व रहता ही नहीं है।"

प्रसेनजित्—"आर्ये, तब क्या मृत्युके बाद तथागतका अस्तित्व रहता भी है और नहीं भी रहता है?"

क्षेमा—"महाराज, भगवानने इस प्रकार भी नहीं कुछ कहा है कि मृत्यु के बाद तथागतका अस्तित्व रहता भी है और नहीं भी रहता है।"

प्रसेनजित्—"आर्ये, क्या कारण है कि भगवानने इस पर प्रकाश नहीं डाला है?"

क्षेमा—"महाराज, आज्ञा हो तो एक प्रश्न पूछूँ। क्या

आपके पास कोई ऐसा गणितज्ञ है जो यह ठीक-ठीक जोड़कर बतला सके कि गंगाके बालूके कितने कण हैं और महासमुद्रमें कितना पानी है ?'

प्रसेनजित्—"नहीं आर्ये, मेरे पास ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है।

खेमा—"ठीक है। उपरोक्त काम कोई इसलिये नहीं कर सकता है क्योंकि समुद्र अगाध, अतल एवं गम्भीर है। यही बात तथागतके अस्तित्व-सम्बन्धी प्रश्नमें भी है। महाराज, तथागतके जिस सांसारिक अस्तित्वके परिमाणको आप नापना चाहते हैं उसे वे पारकर मुक्तिलाभ कर चुके हैं, और वे अब गम्भीर समुद्रकी नाईं अगाध हैं। इसलिये मृत्युके बाद उनका अस्तित्व रहता है, अथवा नहीं यह प्रश्न व्यर्थ है।'

वत्सगोत्र परिव्राजककी कथा

प्रसेनजित्ने बुद्धसे भी यही सब प्रश्न पूछा और बुद्धने भी यही ऊत्तर दिया। इसी प्रकार एक बार वत्सगोत्र नामक एक परिव्राजकने बुद्धसे पूछा—"भदन्त गौतम, क्या आत्मा नामक कोई वस्तु है ?" उसके प्रश्नको सुनकर बुद्ध चुपचाप रहे। फिर वत्सगोत्रने पूछा—"भदन्त गौतम, तब क्या आत्मा नामक कोई वस्तु नहीं है ?" फिर भी बुद्ध चुप रहे। तब वत्सगोत्र उठकर चला गया। उसके उठकर चले जानेपर आनन्दने बुद्धसे पूछा कि उन्होंने वत्सगोत्रके प्रश्नोंका उत्तर क्यों नहीं दिया। बुद्धने कहा "यदि मैं वत्सगोत्रके प्रश्न का उत्तर देते हुए यह कहता कि आत्मा है तब शाश्वत्वादी श्रमण ब्राह्मणोंकी तरह उसका समर्थन करता, और यदि यह कहता कि आत्मा नहीं है तब मैं उच्छेदवादी

श्रमण ब्राह्मणकी तरह उसका समर्थन करता। यदि मैं यह भी कह देता कि आत्मा है तब उससे क्या मेरा उद्देश्य सिद्ध होता? क्या उसे ज्ञान होता कि सभी अनात्म है?" आनन्दने कहा—"नहीं, भदन्त, उसे यह ज्ञान नहीं होता।" बुद्धने कहा—"आनन्द, यदि मैं उसे यह कहता कि आत्मा नहीं है तब वह और विपत्तिमें पड़ता और सोचने लगता कि पूर्वमें उसे आत्मा थी अथवा नहीं। किन्तु अभी तो ऐसी बात नहीं होगी।" बुद्ध चाहते थे कि मनुष्यका जिससे वास्तविक उपकार हो वही किया जाय अन्यथा किसीको किसी प्रकारसे शंकामें न डाला जाय। "पोट्ठपाद-सुत्त" में उन्होंने कहा है कि आत्मा-सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर वे इसलिये नहीं देते हैं क्योंकि उससे कोई विशेष उद्देश्य सिद्ध नहीं होता है।

जातियोंकी अभिन्नता सम्बन्धी कथायें

बुद्ध जाति या वर्ण भेद नहीं मानते थे, इसका भी प्रमाण हमें बुद्ध-कथामें मिलता है। ब्राह्मणोंकी सत्ताको भी वे नहीं मानते थे। बोधिलाभके कुछ ही दिनोंके बाद उरुवेलाके वनमें उन्होंने एक उद्धत ब्राह्मणको खरी खोटी सुनायी थी। ब्राह्मणोंके साथ भी कई वार बुद्धको वाद-विवाद हुआ था। एक कथा इस प्रकार है। एक बार एक ब्राह्मण संसार त्याग कर किसी सम्प्रदायमें जा मिला। भिक्षाटनके द्वारा ही उसने अपना पालन-पोषण करना शुरू किया। एक बार उसके मनमें यह शंका उठी कि बुद्ध अपने शिष्योंको ही भिक्षु मानते हैं और दूसरेको नहीं। इसलिये बुद्धके समक्ष जाकर उसने पूछा—"भदन्त गौतम, मैं भी भिक्षाटनके द्वारा अपना पालन-पोषण कर रहा हूँ। क्या आप मुझे भी भिक्षु कहकर सम्बोधित

करेंगे ?" बुद्धने कहा—"ऐ ब्राह्मण, केवल भिक्षाटन करनेवाले को ही मैं भिक्षु कहकर सम्बोधित नहीं करता। सभी नियमोंके पालनसे भी कोई भिक्षु नहीं कहलाता। जो पाप-पुण्य त्याग कर एवं शुद्ध चित्त होकर ज्ञानके बलपर संसारमें विचरण करता है उसे ही मैं भिक्षु कहता हूँ।" केवल शास्त्र पढ़नेसे कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता है। प्राचीन ऋषियोंके बनाये हुए स्तोत्र पढ़नेसे कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता है। ऐसे ब्राह्मणोंकी तुलना बुद्ध दाससे करते हैं।१ बुद्ध : — "जटा, गोत्र अथवा जन्मसे कोई ब्राह्मण नहीं होता है। जिनके मनमें सत्य और धर्म रहता है, वही सुखी हैं, वही ब्राह्मण है।२ निर्वाण लाभके लिये ज्ञान प्राप्त करना ही उन्होंने सर्वश्रेष्ठ धर्म बतलाया३। उनके अनेक शिष्य ब्राह्मण थे जिनमें सारिपुत्त और मोग्गलान उल्लेखनीय हैं। एक बार एक ब्राह्मण दम्पतिने बुद्धको पुत्र कहकर सम्बोधित किया। यह सुनकर भिक्खु-गण आश्चर्य चकित हो गये। तब बुद्धने उत्तर दिया कि पूर्व जन्ममें कई बार वे इन लोगोंकी सन्तान रह चुके थे और मरनेके बाद उन्होंने उनकी (ब्राह्मण-दम्पतिकी) सेवाकी थी४ एक बार बुद्ध जब बात रोगसे पीड़ित थे तब उन्होंने उपवान नामक एक शिष्यको देवहित नामक एक ब्राह्मणके यहाँ जल लाने भेजा था। इसपर देवहितने पूछा कौन दान सबसे बड़ा

दीघनिकाय (अम्बद्धसुत्त) २ धम्मपद ३९३—

न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुखी सो च ब्राह्मणो॥

३ दीघनिकाय (कूटदन्त-सुत्त) ४ धम्मपद द्व कथा ३,३१

है ? बुद्धने उत्तर दिया कि जिस दानका मूल्य दाताके गुणके अनुसार होता है, वही सबसे बड़ा दान है[५]।

बुद्धने अपने संघके अन्दर जाति-भेदको स्थान नहीं दिया। यहाँ तक कि संघमें किसी प्रकारकी विभिन्नता नहीं थी। और वहाँ सभी समान थे। ज्ञान एवं गुणका उत्कर्ष ही सम्मान प्राप्त करेगा, ऐसा बुद्धका विचार था। इस प्रसंगमें बुद्धने कहा है—"हे भिक्खु-गण, गंगा, जमुना और सरयू नदी जब समुद्रमें मिलती है, तब उनका व्यक्तिगत नाम नहीं रह जाता है, उसी प्रकार जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र गृह त्याग कर तथागत द्वारा प्रदर्शित धम्म-विनयमें प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं तब उनलोगोंका पूर्व परिचय नहीं रहता है और वे सबके सब श्रमण नामसे परिचित होते हैं[६]।" एक बार एक ब्राह्मणका नौकर भागकर बुद्धके संघमें प्रवेश कर गया। उसे वापस लानेके लिये ब्राह्मण बुद्धके पास पहुँचा। बुद्धने उस ब्राह्मणसे कहा कि जो नौकर उसे छोड़कर भाग गया उसपर, अब उसका कोई अधिकार नहीं रहा[७]। संघमें प्रवेश करनेपर राजा और उसका दास भी समान हो जाता है[८]। थेरगाथामें सुनीत नामक एक भिक्खुने कहा है—"मेरा जन्म नीचमें हुआ, मैं अनाथ और दरिद्र था, मैं नीच कार्य करता था। मनुष्य मेरी अवहेलना करते, मुझसे घृणा करते थे। किन्तु जब मैं बुद्धकी शरणमें पहुँचा तो उन्होंने मुझे ग्रहण किया।" उसके बाद ज्ञान-प्राप्तिके लिये सुनीत ध्यानमग्न हुआ। उसपर बुद्धने कहा —"शुद्ध उद्यम, शुद्ध जीवन, संयम एवं आत्मदमनके

---

५ वहीं ४,२२३   ६ उदान ५,५

७ धम्मपदट्ठ कथा ४,१६८   ८ दीघ निकाय

द्वारा ही मनुष्य ब्राह्मण होता है।" शील एवं चरित्र बुद्धके अनुसार सबसे बड़ा धर्म था। वे निर्बुद्धिताके समर्थक नहीं थे१०। मूर्ख व्यक्ति यावज्जीवन पंडितोंके साथ रहनेपर भी धर्म ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है११।

ब्रह्म प्राप्तिकी निरर्थकता सम्बन्धी कथा

ब्राह्मणोंके ब्रह्मवाद और ब्रह्मलाभ विषयक वाद-विवादों को भी वे निरर्थक समझते थे। अचिरावती नदीके तट पर मनसाकट नामक ब्राह्मणोंके गाँव में एकबार उन्होंने भरद्वाज और वशिष्ठ नामक दो ब्राह्मण युवकोंके ऐसे ही वाद-विवाद पर समझाया कि जिस ब्रह्मको किसीने नहीं देखा है और जिसे कोई जानता भी नहीं उसके विषयमें इतना तर्क-वितर्क करना या पोथी-पत्रा ढोना क्या मूर्खता नहीं है? उन्होंने कहा—"जिस प्रकार अन्धकारमें बहुतसे मनुष्य एक दूसरेके सहारे अवस्थित रहते हैं और अपने आगे, पीछे और मध्यका कुछ नहीं देख सकते ठीक उसी प्रकार ब्राह्मणों द्वारा प्रदर्शित पथ भी है, जिसे हम हास्यास्पद, रिक्त एवं तुच्छ कह सकते हैं।"

उन्होंने यह भी कहा कि जिस प्रकार इस अचिरावती नदी का दोनों किनारा नहीं सट सकता, उसी प्रकार किसीको मरणोपरांत ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

---

९ धम्मपद ५५

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो॥

१० वहीं ६१ ११ वहीं ६४

उन ब्राह्मणोंने इस तर्कको समझा और उनके शिष्य हो गये।१

बुद्धने अनेकबार अपने शिष्योंको यह समझाया था कि वे लोग वाक्यशरण न होकर युक्तिशरण हो, व्यक्ति अथवा शास्त्र-वचन पर निर्भर न कर वे लोग तर्कका आश्रय ग्रहण करें। अपने वचनके विषयमें भी उन्होंने साफ-साफ कह दिया था कि उसे इसलिये न माने क्योंकि वह तथागतके मुखसे निकला था और जबतक वह युक्तिसंगत एवं तर्ककी कसौटी पर सत्य न निकले तबतक उसे न मानें२।

जेतवनकी कथा

अनाथ पिण्डक, जेतवन एवं गृद्धकूटका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। श्रावस्तीमें बुद्ध जेतवनमें ही रहा करते थे और कहा जाता है कि अपने जीवनके अन्तिम पच्चीस वर्ष उन्होंने वहीं व्यतीत किये। अनाथपिण्डकके अतिरिक्त वहाँ उनके और भी कई शिष्य थे। श्रावस्ती कोशलकी राजधानी थी और वहाँ का राजा पसेनदी (प्रसेनजित्) भी बुद्धका परमभक्त था। जेतवनमें बैठकर उन्होंने बहुतसे लोगोंको अपना धर्मोपदेश सुनाया था। यही कारण है कि बौद्ध-शास्त्रोंमें जेतवनको बहुत ही पवित्र स्थान कहा गया है। चीनी यात्री फहियान और हुएसंगने भी प्रशस्त बौद्ध स्थानोंका दर्शन किया था। फहियान

१—दीर्घनिकाय-तेविज्जिसुत्त

२—अंगुत्तर निकाय—बुद्धका यह उपदेश सभी देशोंके लिये आज भी ग्राह्य है। तर्क पर अपने विचारको आधारित करनेका इससे बड़ा एवं ज्वलन्त उदाहरण और किसी धर्म अथवा दर्शनमें नहीं मिलता है। विश्वको यह हमारी सबसे बड़ी देन है।

जब गृद्धकूट पहुँचा तो उसे रुलाई आ गई क्योंकि उसे यह दुःख हुआ कि वह बुद्धके मुखसे उपदेश न सुन सका। गृद्धकूट भी बौद्ध-स्थानोंमें बहुत ही पवित्र माना जाता है।

मालाकार सुमनकी कथा

राजा बिम्बिसारके एक मालीका नाम सुमन था। वह प्रति दिन राजाके लिये पुष्प जमा किया करता था। एक दिन राजाके लिये पुष्प ले जाते समय उसने रास्तेमें बुद्धको देखा। उस समय बुद्ध भिक्षाटनके लिये निकले थे। श्रद्धालु सुमनने सब पुष्प बुद्धके बिहारमें जाकर जमा कर दिये और घर लौटने पर सारी कहानी अपनी स्त्रीको कह सुनाई। पैसा नहीं मिलनेके कारण स्त्री रंज हो गई और दौड़कर राजा बिम्बिसारके पास जाकर विवाह-भंग करनेकी आज्ञा माँगी। सभी विवरणको सुननेके बाद राजाने स्त्रीको दरबारसे निकाल दिया और माली सुमनको बुलाकर उसे पुरष्कार दिया ३।

वैद्यराज जीवककी कथा

जीवक राजगृहका प्रसिद्ध राजवैद्य था। वह राजा बिम्बिसार, बड़े-बड़े लोगों और अन्यान्य राजाओंकी ही चिकित्सा किया करता था। वह राजगृहकी वेश्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ था और उसे जनमते ही माँ ने फेंकवा दिया था किन्तु राजकुमारकी आज्ञासे उसका लालन-पालन हुआ। तक्षशिला जाकर वह वैद्यकमें निष्णात हुआ। लौट आनेपर उसने विबिम्सारके भगन्दर रोग की चिकित्साकी और तबसे उसका राजवैद्य हुआ। वह बुद्धका परमभक्त था, इसलिये बुद्धकी ही नहीं संघके सन्यासियोंकी भी चिकित्सा निःशुल्क

३—धम्मपदट्ठ-कथा २।४०-४१

करता था। एकवार उसने उज्जयिनीके राजा चँडप्रद्योतकी चिकित्सा की। राजाने उनको पुरस्कारमें अनेक बहुमूल्य वस्त्रादि भेजा। जीवकने उसे बुद्धको अर्पण किया। बुद्धत्व प्राप्तिके २० वर्ष बाद तथागतने उसके आग्रहसे नवीन वस्त्र ग्रहण किया। यही नहीं, उन्होंने भिक्षुओंको भी आज्ञा दी कि यदि कोई गृहस्थ आदर और प्रेमसे उन्हें कोई नवीन वस्त्र अर्पण करें और उनकी इच्छा हो तो वे भी उसे ग्रहण कर सकते हैं।

कपिलवस्तु और कोलिय के झगड़े की कथा

राजगृह में रहने के समयमें ही बुद्ध एक बार वैशाली गये थे। राजा बिम्बिसार उन्हें गंगा-तट तक पहुंचाने आया और गंगा के उस ओर वैशाली के लिच्छवीगण उनके स्वागत के लिये आए थे। वैशाली में बुद्ध 'महावन' नामक स्थान में ठहरते थे। जाने के समय भी फिर उसी प्रकार दोनो ओर से इन्तजाम था[१]। राजगृह में उग्रसेन और उसकी स्त्री ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया[२]। बुद्ध जब एकवार वैशाली के 'महावन' में ठहरे हुए थे तब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि कपिलवस्तु और कोलिय के बीच युद्ध की तैयारी हो रही थी। छोटी सी बात को लेकर ही यह युद्ध होने वाला था। संघर्ष का कारण यह था कि बीचवाली नदी के जलसे दोनों अपने खेत में सिंचाई करना चाहते थे। उस साल उस नदी में जल भी बहुत कम था। बुद्ध ने उनलोगों को काफी समझाया और इस प्रसंग में उन लोगों से तीन प्रश्न किये—"(क) जल का मूल्य कितना है?

---

१ धम्मपद के कथा ३, ४३७

२ वहीं ४, ६०

(ख) मिट्टी का मूल्य कितना है ? और (ग) इस युद्धमें जो योद्धागण लड़ने आये हैं उनके जीवन का मूल्य कितना है ? उत्तर मिला "योद्धाओं का जीवन अमूल्य है"। तबबुद्ध ने उनलोगों को यह समझाया कि सामान्य जल के लिये इतने अमूल्य जीवन को नष्ट करना अच्छा नहीं होगा॰ और इस प्रकार इस झगड़े का अन्त हुआ। अपने पिता के मरने पर बुद्धने उसके प्राणहीन शरीर को दिखलाते हुए अपने शिष्यों का ध्यान सँसार की क्षणभंगुरता की ओर खींचा। उन्होंने अपने पिता के श्राद्ध-काल में भी धर्मोपदेश दिया था और महा-प्रजापति गौतमी गृह-त्याग कर संघ में भिक्खुनी के रूप में आई थीं।

गौतमी और संघ में नारी प्रवेश की कथा

बौद्ध-साहित्यमें संघमें नारी-प्रवेश सम्बन्धी अथेक कथायें, उपस्थित हैं। इस प्रसंग में आनन्द और बुद्धके बीच जो बातें हुई वे उल्लेखनीय हैं—

आनन्द—'संसार त्याग करने के बाद क्या स्त्रियाँ तथागत के धर्म एवं नियम का पालन कर सकती हैं और क्या वे अर्हत्-पद लाभ कर सकती हैं ?"

बुद्ध—"हाँ आनन्द ! हो सकता है",

आनन्द—"यदि स्त्रियाँ सम्पूर्ण फल लाभ कर सकती हैं, तब ऐसी स्त्रियाँ जिन्होंने भगवान का लालन-पालन किया है और दुग्ध पान कराया है, उन्हें संघ में प्रवेश करने देना उचित है"।

---

३ कनाज जातक और धम्मपदकथा ३, २५४

बुद्ध ने कहा—"महाप्रजापति यदि निम्नलिखित आठ प्रधान धर्मों का पालन करें तब वह और दूसरी भिक्खुणी दीक्षातुल्य हो सकती हैं"।

(क) सौ वर्षतक धर्म पालन करने पर भी भिक्षुणियों को भिक्खुओं, (चाहे वे सद्यः दीक्षित ही क्यों न हों) के सामने अञ्जलिबद्ध होकर खड़ा होना पड़ेगा, अभिवादन करना होगा एवं सब प्रकार से सम्मान करना होगा। इन नियमों के पालन करने पर उन्हें पूजा-पाठ भी करना होगा एवं जीवन में कभी भी व्यतिक्रम नहीं करना होगा"।

(ख) "ऐसे स्थान में जहाँ एक भी भिक्खु न हो वहाँ भिक्खुणी वर्षावास नहीं कर सकती है"।

(ग) "प्रत्येक पक्ष में भिक्खुणी को यह पता लगाना होगा कि उपोसथ (उस दिन को कहते हैं जिस दिन संघ में सम्मिलित धर्म-चर्चा होती है) एवं ओवाद (उपदेश) के लिये भिक्षु कब आयेंगे"।

(घ) "वर्षावास के बाद भिक्खुणीसंघ एवं भिक्खुसंघ के बीच खास प्रश्नों पर वाद-विवाद होगा। वर्षा उद्यापन नियम उन्हें पालन करना ही होगा"।

(ङ) "बड़े दोष के अपराध में भिक्खुणी को भी दण्ड दिया जायगा।"

(च) "धर्म में शिक्षित होने के दो वर्ष बाद भिक्खुणी को दोनो संघों के निकट उपसम्पदा की अनुमति के लिये प्रर्थना करनी होगी"।

(छ) भिक्खुणी किसी भी कारण से भिक्खुओं प्रति कटु-भाषा व्यवहार नहीं कर सकती हैं।

(ज) "भिक्खु उन्हें शासन-वचन कह सकते हैं ।

"आनन्द, महाप्रजापति यदि उपरोक्त नियमों का पालन कर सकती हैं तो उन्हें दीक्षा दी जा सकती है"। आनन्द ने महाप्रजापति से यह जा सुनाया और इस पर महाप्रजापति बोलीं—"मैं इन सभी नियमों को शिरोधार्य कर लेती हूं और अब जीवनमें किसी प्रकार का व्यक्तिक्रम नहीं करूंगी"। आनन्द ने यह समाचार भगवान बुद्धको सुनाया। इस पर बुद्ध ने कहा—"आनन्द, स्त्री-गण यदि संसार त्याग कर भिक्खुणी हो कर, तथागत के धर्म एवँ नियम पालन की अनुमति न पातीं, तब धर्म चिरस्थायी होता। किन्तु आनन्द, जब उनलोगों (स्त्रियों) को यह अनुमति मिल चुकी है, तब यह ज्यादा दिनों तक नहीं रहेगा। आनन्द, जिस प्रकार किसी घर में ज्यादा स्त्रियों और कम पुरुषके होनेसे चोर इत्यादि का प्रकोप बढ़ जाता है ठीक उसी प्रकार जिस धर्म-नियम में स्त्रियों को संसार छोड़कर सन्यास-ग्रहण करने की आज्ञा दी जाती है, वह चिरस्थायी नहीं हो सकता है। आनन्द, जिस प्रकार जलके प्रकोप से बचने के लिये मनुष्य तड़ाग इत्यादि में पहलेसे बाँध देकर रखता है, उसी प्रकार मैंने भी पहले से ही भिक्खुणीके लिये उपरोक्त नियम बाँध की तरह बना दिया है जिससे कि व्यतिक्रमका कोई स्थान न रह जाय"[1]?

जब बुद्ध कुशीनगरके समीप शालवनमें मृत्यु-शय्या पर थे तब आनन्द ने हठात् पूछा—'भदन्त, स्त्रियों के साथ हमें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये"? बुद्धने कहा—

---

१ चुल्लवग्ग—१०, १

"स्त्रियों की ओर हमें नहीं ताकना चाहिए ?"

प्रश्न—"यदि देखलें तब क्या करना चाहिए ?',

उत्तर—"आनन्द, तब बातचीत नहीं करनी चाहिए"।

प्रश्न—"भदन्त, यदि बातचीत हो जाय, तब क्या चाहिए"

उत्तर—"बातचीत होने पर सावधान एवँ सतर्क हो जाना चाहिए"१।

अस्तु, आनन्दकी रायसे महाप्रजापति गौतमी तथा अन्यान्य कपिलवस्तुसे आई हुई स्त्रियोंको दीक्षित करके संघमें लिया गया।

उपक और चापाकी कथा

उरुवेलासे ऋषिपतन जानेके समयमें बुद्धको उपक नामक एक आजीविकसे भेंट हुई। वन एवं गुफामें जाकर बहुत दिनों तक उपकने कठिन तपस्या की थी। तपस्या-कालमें वह कभी कभी व्याधकी कुटीमें भिक्षाटनके लिये जाया करता था। व्याध के चापा नामक एक युवती कन्या थी। उसे देखते ही उपककी काम-भावना जग उठी और वह तपस्याको तिलांजलि देकर गुहामें जाकर बैठ गया। बहुत दिनों तक उपकको न देख व्याध चिन्तित हुआ और उसे खोजते-खोजते उस गुहामें पहुँचा। वह उसकी अवस्था देखकर दुखी हुआ और उसने चापासे उसके विवाहका निश्चय किया। उपक और चापाका विवाह हुआ। उपक तपस्या त्याग व्याध-वृत्तिमें लग गया। कालक्रमसे उसके एक सन्तान हुई। बादमें उपकको पश्चात्ताप हुआ और बुद्धके समीप पहुँचा। दयावतार बुद्धने उसे अपने संघमें सम्मिलित किया और बादमें चापा भी भिक्खुणी हुई२।

---

१ दीघनिकाय, महापरिनर्वाण सुत्त।

२—थेरीगाथा—टीका।

तिस्सकी कथा

बुद्धके फुफेरे भाई तिस्स बुढ़ापेमें भिक्खु हुए थे। "स्थूल काय" होनेके कारण इन्हें सब कोई "मोटा शिष्य" कहा करता था। धर्म्मसभामें ये बीचमें ही बैठा करते थे। एकबार अनेकानेक भिक्खु-गण बुद्धके दर्शन करने आये थे। जब उनलोगोंने तिस्सको देखा तब उन्हें यह प्रतीत हुआ कि वे कोई महा स्थविर थे और इसलिये उनलोगोंने उनकी (तिस्स की) पदसेवा करनी चाही। उस पर तिस्सने उनलोगोंसे कुछ नहीं कहा। आगन्तुकोंमें से एक तरुण भिक्षुने तिस्ससे पूछा कि उन्होंने (तिस्स) कितना वर्षा-यापन किया था। उसपर तिस्सने यह बतलाया कि वे संघके नवीन सदस्य थे। तिस्स और तरुण आगन्तुकके बीच कुछ खरी-खोटी बातें हुईं। इसपर तिस्स बोले—"जानते हो, मैं क्षत्रिय हूं, तुमलोगोंको निर्वंश कर दूँगा"। इसके बाद तिस्सने बुद्धके समीप जाकर आगन्तुक तरुणके विरुद्ध शिकायत की। सब बात सुनने पर बुद्धने तिस्स को क्षमा माँगने कहा किन्तु तिस्सने इसको नहीं स्वीकार किया।१

पाठिक और एक स्त्रीकी कथा

पाठिक नामक एक आजीविक एक गृहस्थ स्त्रीसे भिक्षा प्राप्त करता था। एक दिन स्त्रीने बुद्धका उपदेश सुननेका निश्चय कर लिया किन्तु पाठिकने उसे वैसा करनेसे मना किया। इसलिये स्त्रीने बुद्धको भोजनका निमन्त्रण दिया और भोजन प्रस्तुत

१—धम्मपदट्ठ-कथा—१।३८

होनेपर अपने पुत्रको भेजकर बुद्धको बुला भेजा। रास्तेमें उस लड़केको नग्न श्रमणसे भेंट हुई और उस श्रमणने उस लड़केको सिखलाया कि वह जाकर बुद्धको गलत रास्ता दिखला दे और उसे यह भी समझा दिया कि बुद्ध यदि यथासमय नहीं आवें तो और भी अच्छा क्योंकि तब वे दोनों ज्यादा भोजन कर सकेंगे। लड़के ने तो बुद्धको गलत रास्ता दिखलाया किन्तु बुद्ध घर पहचानते थे, इसलिये वे ठीक पहुँच गये। नग्न-श्रमण आहारके लोभसे जब वहाँ पहुंचा तो बुद्धको देखकर क्रोधित हो गया और उस स्त्रीको गाली देने लगा। स्त्री जब व्यथित हुई तब बुद्धने उसे समझाया और कहा कि दूसरेके दोषका पर्यवेक्षण न कर अपना दोष दूर करना ही श्रेयस्कर है ३।

व्याधा और एक स्त्रीकी कथा

राजगृहमें एक व्याधा प्रतिदिन मृग-माँस विक्रय करने जाता था। एक दिन एक धनी युवती उसपर आसक्त हो गई। युवतीने चुपकेसे घरसे भागकर उसकी स्त्री बननेकी सूचना दी। उसके बादसे वे दोनों वनमें जाकर पति-पत्नीके रूपमें रहने लगे और उन्हें सन्तान भी उत्पन्न हुई। एक दिन वनमें व्याधाने जाल बिछाया। वहीं बुद्ध भी ध्यानस्थ होकर बैठे थे। उस दिन जालमें एक भी पशु नहीं फँसा। इसलिये व्याधाके मनमें शंका हुई कि कोई जालसे पशुको मुक्त कर देता है। खोजने पर उसने बुद्धको देखा और उनकी हत्याके लिये धनुष-बाण निकाला। उसी समय उसकी स्त्री भी आ गई और उसने बुद्धको मारनेसे मना किया।

३—वहीं १।३७६

उसी समय बुद्धका ध्यान भंग हुआ और वे दोनों बुद्धके भक्त हो गये ४।

अंगुलीमाल डाकूकी कथा

अंगुलिमाल नामक एक डाकू कोशल-राज्यमें बहुत उपद्रव मचाया करता था। लूट-पाट और नर-हत्या तो उसका दैनिक कार्यक्रम था। आहत व्यक्तियों की अंगुलियोंको काट कर वह माला बनाता और उसे धारण करता। इसलिये ही वह अंगुलि-मालके नामसे प्रसिद्ध हुआ था। उसके अत्याचारसे बचने के लिये प्रजाने कोशलराज प्रसेनजित्के पास अर्जी भेजी किन्तु किसी भी प्रकारसे उस दस्यु-सरदारको दबाया नहीं जा सका। एक दिन बुद्ध उसी वनके रास्तेसे जानेवाले थे जिसमें उस दस्यु दलका अड्डा था। भक्तोंने बुद्धको बहुत समझाया किन्तु उन्होंने नहीं माना और चलना आरम्भ कर दिया। अखण्ड वन के मध्यमें उनको रोककर अंगुलिमाल उनके समक्ष आकर खड़ा हो गया उसने बुद्धको रोकनेके अभिप्रायसे पूछा—"कहाँ जाते हो ?' बुद्धने कहा—"मैं स्थिर हूँ, तुम भी स्थिर हो जाओ" अंगुलिमालने बुद्धके कथनका तात्पर्य पूछा। बुद्धने कहा कि वे अहिंसा धर्ममें स्थिर थे किन्तु अंगुलिमाल वैसा नहीं था।१ इतना सुनते ही अंगुलिमालके हृदयमें बुद्धके प्रति श्रद्धा जग पड़ी। वह दस्यु वृत्तिको त्यागकर बुद्धका शिष्य हो गया और उसको लेकर बुद्ध कई स्थानोंमें भ्रमण करते हुए श्रावस्ती पहूँचे। इधर अंगुलिमालके उपद्रवसे बचनेके लिये प्रसेनजित

४—वहीं ३।२४

१ धम्मपद—आक्कोधेन जिनेकोधन्, असाधून् साधुना जिने ॥ और देखिये वहीं ३।१६९

बुद्धसे परामर्श लेने जेतवन पहुँचा। प्रसेनजितको देखकर बुद्धने पूछा—"महाराज, आप इतना उद्विग्न क्यों हैं ?" "क्या राजा बिम्बिसार अथवा लिच्छवीगण आपके विरुद्ध युद्धका उद्योग कर रहे है ?" तब प्रसेनजितने अंगुलिमालका प्रश्न उठाया और इसपर बुद्धने कहा—'क्या आप अंगुलि-मालको यहाँ देखकर विस्मित भी होंगे ?" प्रसेनजितने कहा "मैं उसका सम्मान करूँगा।" बादमें प्रसेनजितने वस्तुतः उसका सम्मान किया। एक वार भिक्षाटन करते समय अंगुलिमालने एक गर्भवती स्त्रीको पीड़ित देखा और तब इसप्र संगमैं बुद्ध से कहा। मंत्र देकर बुद्धने अंगुलिमालको ही भेजा औ उस स्त्रीकी वेदना कम हो गई।

शिष्य-सम्बन्धी कथायें

बुद्धके जीवन-चरित्र पर विश्लेषण करनेके समयमें हमें उनके शिष्यों पर भी विचार करना आवश्यक जान पड़ता है। प्रमुख शिष्योंका संघमें महत्त्वपूर्ण स्थान था और बौद्ध-धर्म और दर्शन पर भी उनलोगोंका काफी प्रभाव पड़ा था। बुद्धके जीवनमें सारिपुत्र, मोग्गलान और आनन्दका स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। सारिपुत्र एवं मोग्गलानके विषयमें पहले भी कुछ कहा जा चुका है। ये दोनों अपने समयके उद्भट विद्वान थे। उन दोनोंकी विद्वत्ता और नम्रतासे बुद्ध इतना अधिक प्रभावित हुऐ थे कि उन्होंने उन दोनोंको अपने प्रचार-कार्यमें अपना दायाँ और बायाँ हाथ मान लिया था। सारि-पुत्रमें सात्विक और मोग्गलानमें राजसिक भावनाओंकी प्रधानता थी। सारिपुत्र शान्त, धीर एवं तर्कमें पूर्ण पटु था और मोग्गलान विद्वान् एवं बुद्धिमान था। बुद्ध प्रत्येक काममें

इन लोगों पर निर्भर करते और परामर्श लेते। प्रयोजन होने पर इन्हीं लोगोंको बाहर भी भेजा जाता था। आनन्द कोम-लता एवं सहृदयताका अवतार था एवं मनुष्यके रूपमें ईश्वर ही था। बौद्ध-साहित्यमें इन तीनोंको भिक्षु-त्रय कहा गया है। एकवार बुद्धने सारिपुत्रसे पूछा कि क्या अमृतमें श्रद्धाका अन्त होता है ? सारिपुत्रने कहा कि बुद्धके उस कथनमें उसे विश्वास नहीं था। इस पर भिक्षु लोग उसकी निन्दा करने लगे। तब बुद्धने बतलाया कि सारिपुत्रने स्वयं उसे उपलब्ध किया है।

(क) धर्म-सेनापति सारिपुत्रकी कथा

एक बार ऐसी घटना हुई कि यात्रान्तरमें सारिपुत्रको स्थान नहीं मिला। सभी भिक्षु-गण अपने लिये स्थान बना लिये किन्तु सारिपुत्रकी कोई व्यवस्था नहीं हो सकी क्योंकि वह कुछ पीछे पहुँचा था। वह बिना कुछ बोले बाहरमें ही आराम करने लगा। रातमें उसे खाँसी हुई और बुद्धने पूछा बाहरमें कौन था। सारिपुत्रने कहा—"मैं हूँ भदन्त"। बुद्धने पूछा —"सारिपुत्र, तुम यहाँ क्यों बैठे हो ?" बुद्धको जब सब समा-चार मालूम हुआ तब उन्होंने सभी भिक्षुओंको डाँटा और तब यह नियम बना दिया कि उनके (बुद्ध) बाद प्रत्येक स्थानमें सारिपुत्रका ही द्वितीय स्थान होना चाहिये। उसको धम्म-सेना-पति कह कर सम्बोधित किया गया। इनके सम्बन्धमें और भी कितनी कथायें हैं जिनका उल्लेख विस्तारभयसे नहीं किया जा सकता है

(ख) उपस्थापक आनन्दकी कथा

आनन्द बुद्धका सर्वप्रिय शिष्य था और उनके जीवनके

नगर के सेठ धनञ्जय की लड़की थी। कोसलराज क आग्रह से धनञ्जय साकेत नगर में जाकर बसा था। उसी समय श्रावस्ती में मिगार नामक एक सेठ रहता था। उसे पुण्यवर्धन नामक एक पुत्र था। पुण्यवर्धन का विवाह विशाखा के साथ हुआ। पतिगृह जाने के पूर्व धनञ्जय ने अपनी लड़की को दश उपदेश दिये—(१) भीतरकी अग्नि को बाहर नहीं लाना, (२) बाहर की अग्नि को भीतर नहीं ले जाना, (३) सुख से रहना, (४) सुख से खाना, (५) सुख से सोना, (६) अग्नि को प्रज्वलित रखना, (७) गृहदेवता की श्रद्धा करना इत्यादि। बहुत दास-दासी को लेकर विशाखा ससुराल गई और श्रावस्ती के लोग उसकी सुन्दरता को देख कर मुग्ध हुए। पुण्यवर्धन के विवाहोत्सव में बुद्धको नहीं निमन्त्रित किया गया। पुण्यवर्धन के पिता ने नग्न-श्रमणों को निमन्त्रण दिया था। मिगार ने अपने पुत्रवधू को उन नग्न-श्रमणोंको प्रणाम करने कहा। उन्हें नग्न देख, विश्वाखा को घृणा हुई और वह लौटकर चली आई। इस पर नग्न श्रमणों ने विशाखाको घरसे निकाल देनेका परमर्श दिया। एक दिन मिगार भोजन कर रहा था और विशाखा पंखा चला रही थी। विशाखा ने एक बौद्ध-भिक्खुको अपने घर की ओर आते देखा और मिगार भी उसे देख सके ऐसा इन्तजाम किया। विशाखा ने भिक्षुसे कहा "मेरे श्वसुर बासी भात खा रहे हैं" अतः आप चले जाइये। इस पर मिगार क्रोधित हो गया और विशाखाको घरसे निकल जाने कहा। विशाखाने कहा कि मध्यस्थों का विचार पाने से ही वह घर से बाहर जायगी। मध्यस्थों को बुलाकर अभियोग उपस्थित किया गया। मध्यस्थों के समक्ष विशाखा ने 'वासीभात' का अर्थपूर्व

जन्म का सुकर्म लगाया औ सभी बातें सुनने पर मध्यस्थों ने उसे निरपराध बतलाया। जब मिगार ने धनञ्जय के दश उपदेशों का उल्लेख किया तब विशाखा ने उसका निम्नलिखित अर्थ बतलाया—

१. स्वसुर अथवा स्वामी का दोष किसी से न कहना।

२. उन लोगों के विरुद्ध यदि कोई कुछ कहे तो उन लोगों को नहीं जनाना।

३. जो वस्तु लेकर वापस न कर दे, उसे फिर कोई वस्तु नहीं देना

४. गरीब अगर सहायता चाहे तो उसे देना।

५. गरीब यदि कुछ लेकर नहीं भी लौटा सके तब भी उसकी सहायता करना।

६. स्वसुर, सास और स्वामी के सामने बैठी नहीं रहना।

७. उन लोगों को भोजन कराये बिना भोजन नहीं करना।

८. उन लोगों को सुलाये बिना नहीं सोना।

९. अग्नि की तरह उनलोगों की पूजा करना।

१०. उनलोगों को ईश्वर की तरह समझना।

मिगार को अपनी गलती सूझी और उसने क्षमा माँगी। विशाखाने उसे क्षमा प्रदान किया और कहा कि दोष-मुक्त होकर वह अब गृह-त्याग करेगी। बहुत अनुनय-विनय करने पर विशाखाने कहा कि वह एक ही शर्त पर घर में रह सकती थी कि उसे अपने घर में बुद्ध को निमन्त्रण करने का अधिकार दिया जाय। मिगार ने इसको मंजूर किया। बुद्धका उपदेश श्रवण करने पर मिगार भी बुद्ध-भक्त हो गया। विशाखाके प्रयत्नसे ही

मिगार बुद्ध-भक्ति लाभ कर सका। इसलिये बौद्धके बीच विशाखाका स्थान महत्वपूर्ण है। क्यों कि उसने अपने स्वसुर का मातृ तुल्य उपकार किया था, इसलिये विशाखा के नाम के पीछे "मिगार-माता" जोड़ दिया गया।१ बुद्धकी वह इतनी प्रसिद्ध भक्तिनी थी कि प्रत्येक उत्सव पर उसे निमंत्रित किया जाता था। ऐसा विश्वास लोगों को हो गया था कि उसके आने से घर का भाग्य बदल जाता है। वह बुद्ध के शिष्यों के लिये सभी सामग्रियों का बन्दोबस्त करती थी।

एक बार आराममें वह बुद्धका उपदेश सुनने गई। आराममें प्रवेश करनेके पूर्वही उसने अपना बहुमूल्य शिरस्त्राण खोल कर बाहर में रख दिया। नौकर लौटते समय उसे लेजाना भूल गया। आनन्द ने उसे उठाकर अलग रख दिया। यह शिरस्त्राण उसे विवाह के समयमें मिला था। विशाखाने यह प्रस्ताव किया कि उसे वेचकर जो मिले वह संघको दे दिया जाय। किन्तु वह इतनो मूल्यवान था कि उसका खरीदार ही नहीं मिलता था। तब विशाखा ने स्वयं ही उसका उचित मूल्य देकर खरीद लिया और उसी मूल्य से श्रावती में संघ के लिये एक नया आराम बनवा दिया। इसका नाम पूर्व्वाराम, रखा गया। जब-जब बुद्ध श्रावस्ती में रहते तब-तब कुछ दिन जेतवन और कुछ दिन पूर्वाराम में रहते थे।

अनाथपिण्डकको तरह विशाखा भी संघके पीछे बहुत खर्च करती थी। निम्नलिखित आख्यानसे हम उसके दानका परिमाण देख सकेंगे। एक दिन विशाखाने शिष्योंके साथ

---

१ धम्म पदट्ठ-कथा १।३८४

बुद्धको अपने घरपर भोजनका निर्मंत्रण दिया। उसके पूर्व रात्रिमें काफी वर्षा हुई थी और बुद्धने सब भिक्षुओंको वर्षामें स्नान करने कहा था। सभी-वस्त्र त्यागकर स्नान करने लगे। भोजन प्रस्तुत होनेपर विशाखाने उनलोगोंको बुलानेके लिये एक दासीको भेजा। दासीने आराममें किसीको नहीं देखा क्योंकि वहाँ सबका छोड़ा हुआ वस्त्र ही था। दासी विशाखासे जाकर बोली—"सभी भिक्षु नग्न होकर स्नान कर रहे हैं।" कुछ देर बाद बुद्ध शिष्योंके साथ भोजन करने पहुँच गये। भोजन समाप्त होनेके बाद विशाखाने बुद्धसे कहा कि उसे निम्नांकित बातोंकी अनुमति मिलनी चाहिये१।

[१] यावज्जीवन उसे वर्षा ही के लिये सबको (संघमें) वस्त्रदान देनेका अधिकार हो।

[२] आगन्तुक, गमन्मोन्मुख, रुग्न एवँ रुग्नोंके शुश्रुषाकारी भिक्षुकोंको औषध दान देनेका अधिकार हो।

[३] रुग्न भिक्षुओंको औषध-दान देनेका अधिकार हो

[४] भिक्षुणियोंको स्नानके समय पहनने लिये वस्त्रदान देनेका अभिकार हो।

[५] पयस दान करने का अधिकार हो

बुद्धने पूछा—"विशाखा तुम क्या इस प्रकार प्रार्थना करती हो?" विशाखाने कहा—"भदन्त, नग्नता अशुचि एवँ विरक्तिकर है।" अन्य प्रार्थनाओंके विषयमें विशाखाने कहा कि इससे भिक्षुओंके यातायातमें सुविधा होगी और रोगियोंकी चिकित्सा भी हो सकेगी। चौथी प्रार्थनाके सम्बन्धमें विशाखाने कहा कि भिक्षुणी नग्न वेश्याओंके साथ अचिरावती नदीमें जब स्नान करती हैं तब वेश्यायें उपहास

१ महावग्ग ८,१५

करती हुई कहती हैं—"जब तक यौवन है तब तक कामभोग करनेसे क्या लाभ? क्या काम भोग उचित नहीं है?" विशाखाने कहा—"भदन्त, यह दृश्य विरक्तिकर है।" बुद्धने पूछा—"विशाखा, इसमें तुम्हारा व्यक्तगत स्वार्थ क्या है?" विशाखाने कहा—"भदन्त, वर्षा अन्त होनेके बाद अनेकानेक भिक्षुगण आपके यहाँ श्रावस्ती आयेंगे और आपका उपदेश सुनेंगे। उससे कोई भिक्षुजन आपको मृत्युका संवाद सुनायेंगे तब मैं उनसे पूछूँगी कि क्या वे कभी श्रावस्ती आये थे? जब वे यह कहेंगे कि मृत भिक्षु श्रावस्ती आये थे तब मुझे यह सन्तोष होगा कि अवश्य ही उसने भिक्षु मेरे दिये वर्षावस्त्र एवं औषध और दानका सदुपयोग किया होगा।' बुद्ध विशाखाके इस प्रश्नसे बहुत सन्तुष्ट हुये और उसे वह अनुमति मिली१।

किश गौतमीकी कथा

किश गौतमीके एक शिशु पुत्रकी मृत्यु हुई। उस मृतपुत्र को गोदमें लेकर वह घर-घर दवाके लिये व्यग्र हो रही थी। यह समझकर कि उसे उन्माद हो गया है, लोगोंने उसे बुद्ध के पास जाने कहा। वह बुद्धके पास गई। बुद्धने उसे ऐसे घरसे श्वेत सरसों लाने कहा जिस घरमें कभी कोई नहीं मरा हो। गौतमी घर-घर घूम गई और तब उसे यह देखनेको मिला कि प्रत्येक घरमें जीनेवालेसे ज्यादा लोग मरे ही थे। इसमें गौतमीको ज्ञानोदय हुआ। लौटने पर बुद्धने उसे मृत्युके असम्भावित्य पर प्रवचन दिया२।

---

१ धम्मपद-२।७४

२ धम्मपदट्ठ कथा ३ २७८

जुलाहेकी लड़कीकी कथा

बुद्ध जब आलवी नगरमें जाते तब एक जुलाहेकी लड़की उनका उपदेश सुनने जाया करती थी। एकबार आलवी में जब बुद्ध उपदेश देनेको प्रस्तुत हो गये थे तब उनकी नजर श्रोताओं पर पड़ी और उन्होंने देखा कि जुलाहेकी लड़की नहीं थी। वे उसकी प्रतीक्षा करने लगे। पिताके काममें लगी रहनेके कारण उसे देर हो गई थी। पिताके कामसे आते समय लड़कीको बुद्धसे भेंट हुई और तब बुद्धने उससे पूछा—"तुम कहाँ से आ रही हो और कहाँ जाओगी ?" लड़कीने उत्तर दिया—"मैं नहीं जानती"। लड़कीकी इस बातसे श्रोतागण उसकी निन्दा करने लगे। बुद्ध ने तब उस लड़की को अपने किये हुए प्रश्न का महत्त्व समझाने कहा। लड़की बोली—"संसारमें मैंने कैसे और कहाँ से जन्म ग्रहण किया, यह मैं नहीं जानती हूं। एक दिन मरना होगा यह जनती हूँ। किन्तु कब मरना होगा, यह नहीं जानती हूं"। इतना कहकर लड़की अपने काम पर चली गई। तबतक उसका पिता सो गया था। निद्रा भंग होने के बाद जुलाहा फिर काम में लग गया और उसी समय ताँत से लड़की की छाती में चोट लग गई और वह मर गई। शोकार्त पिता बुद्ध के समीप आया और उनका उपदेश सुनकर संघ में सम्मिलित हो गया।[१]

(च) पुन्ना दासीकी कथा

राजगृहमें पुन्ना (पून्य) नामक दासी अपने घरके बाहर बैठी हुई थी। उस समय बुद्ध गृद्ध-कूट पर्वत पर रहा करते

(१) धम्मपद-३।१७०

थे। जिस समय वह दासी बाहर बैठी हुई थी उस समय भिक्षु लोग सोने जा रहे थे और एक आदमी उन्हें आगे-आगे चिराग दिखलाता जा रहा था। पर्वतांचलमें रोशनी देखकर पुन्ना बोली—"मैं तो काममें व्यस्त रहनेके कारण रातमें नहीं सो सकती हूँ, किन्तु इन भिक्षुओंको निन्द क्यों नहीं आती ?" कुछ देरके बाद उसे ऐसा सन्देह हुआ कि शायद किसी भिक्षुको साँपने डँस लिया है अथवा उनमेंसे कोई अस्वस्थ है। दूसरे दिन प्रातःकाल पुन्ना चावलकी रोटी बनाकर और उसे अपने आँचलमें रख स्नान करने चली। रास्तेमें उसे बुद्धसे भेंट हुई और तब उसे यह हुआ कि बुद्धको भिक्षामें वही रोटी दे दी जाय। यही सोचकर उसने बुद्धका अभिवादन किया और कहा—"भदन्त, यह तुच्छ वस्तु ग्रहण कर मुझे आशीर्वाद दें"। बुद्धने उसका दान ग्रहण किया और "तथास्तु" कहते हुए उसे आशीर्वाद दिया। समाजमें कोई भी उसकी इज्जत करनेवाला नहीं था इसलिये उसे विश्वास नहीं हुआ कि बुद्ध उसका दिया हुआ तुच्छ दान ग्रहण करेंगे। उसे ऐसा लगा कि बुद्ध उसे फेंक देंगे। बुद्ध उस दासीकी मुखाकृतिसे उसका भाव समझ गये और वहीं बैठकर आनन्दके साथ मिलकर उसकी बासी रोटी खा गये। पुन्ना अपनेको कृतार्थ समझ कर बुद्धकी भक्तिनी बन गई। पुन्नाकी रोटीकी कहानी बुद्ध ने बादमें भिक्षुओंसे कहा और उसपर आलोचना करते हुए उपदेश दिया" दाताके अनुसार ही दानका मूल्यांकन होता है[१]।"

१—धम्मपदट्ठ कथा ३।३२१

(छ) प्रसिद्ध गणिका अम्बपालीकी कथा

बुद्ध एक बार वैशालीके निकट कोटिग्राम गये। वहाँ अम्बपाली नामक वैशाली की प्रसिद्ध गणिका (वेश्या) उनसे भेंट करने गई। जहाँ तक गाड़ी जा सकी अम्बपाली वहाँ तक गाड़ी पर और उसके बाद पैदल चलकर बुद्धके समीप पहुँची। उसने उनका अभिवादन किया और वहाँ बैठ गई। बुद्धने उसको उपदेश दिया। उपदेशके बाद अम्बपालीने बुद्धको शिष्योंके साथ अपने घरमें भोजनके लिये निमन्त्रण दिया। उसके बाद बुद्धको प्रणाम कर वह वहाँसे चल पड़ी। यह सुनकर, कि बुद्ध कोटिग्राममें ठहरे हुए थे, वैशालीके नर-नारी उनसे मिलने आये। रास्तेमें अम्बपालीने पूछने पर उन लोगोंसे कहा "हे आर्य पुत्रगण, मैं आज बुद्धको शिष्योंके सहित निमंत्रण करके आ रही हूँ"। उन लोगोंने कहा—"अम्बपाली हमलोग तुम्हें लाखों मुद्रा देंगे, तुम कृपया यह हमलोगोंको लौटा दो"। अम्बपालीने उत्तर दिया—"आर्य पुत्रगण, समग्र वैशाली राज्य मिलने पर भी यह निमंत्रण मैं वापस नहीं ले सकती हूं"। इसपर वे लोग बोले —"अम्बपाली आज हमलोगोंसे जीत गई।" बुद्धने लिच्छवियों को दूरसे आते देखकर भिक्षुओंसे कहा—"भिक्षुओ, जिन भिक्षुओंने तावतिंश देवताओंको नहीं देखा है, वे लिच्छवियोंकी इस परिषदको ध्यानसे देखें, लिच्छवियों की इस परिषदकी आलोचना करें, और लिच्छवियोंकी इस परिषदसे तावतिंश देवताओंकी परिषदका अनुमान करें।" लिच्छवियोंने बुद्धका उपदेश सुन चुकने पर उन्हें दूसरे दिनके भोजनके लिये निमन्त्रित किया। बुद्धने कहा—लिच्छवियो,

मैंने कलके लिये अम्बपाली गणिकाका निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। तब उनलोगोंने कहा–"हमें अम्बकाने हरा दिया।" दूसरे दिन बुद्धने भिक्षु-संघके साथ जाकर अम्बपालीके यहाँ भोजन किया और उसे धर्मका उपदेश दिया। तब अम्बपाली ने कहा–'भगवन ! मैं यह बगीचा (आराम) भिक्षुओंके संघ के लिये, जिसके प्रधान स्वयं बुद्ध हैं, देती हूं।" इसका दान स्वीकार किया गया। उसके बाद आनन्दके परामर्शानुसार अम्बपालीको भिक्षुणी संघमें दीक्षित कर लिया गया। इसकी वाणी थेरीगाथामें विद्यमान है १।

उत्तरा की कथा

सेठ सुमनके यहाँ पूर्ण नामक एक नौकर था। उसकी स्त्री और उसकी लड़की उत्तरा भी सुमनके यहाँ काम करती थी। कुछ दिनोंके बाद धन जमाकर पूर्ण बड़ा आदमी हो गया और अपनी लड़की उत्तराका विवाह सुमनके पुत्रके साथ कर दिया। सुमन बुद्ध-भक्त था। गृह-कर्ममें ज्यादा फँसी रहने के कारण उत्तरा संघ-सेवा नहीं कर पाती इसलिये उसने अपने पिताको सब हाल सुनाया। पूर्णने परामर्श दिया कि उत्तरा अपने स्वामीको कहकर सिरिमाको अपने घरमें ले आये

१—अम्पापाली की आयु एवं अन्यान्य विषय सम्बन्धी घटनाओं के लिये देखिये अमूल्यचन्द्र सेन कृत "बुद्ध-कथा" (बंगला मासिक "वंगश्री" द्वितीय खण्ड षष्ठ संख्यामें प्रकाशित—पृष्ट ७३२)

अम्पापाली पर और देखिये—रामवृक्षबेनीपुरी चरित "अम्बपाली" (नाटक)

और अपने पतिसे अनुरोध करे कि वह उसे उपपत्नीके रूपमें स्वीकार करे। खर्चका भार पूर्णाने अपने ऊपर लिया। उत्तरा का पति मान गया और तबसे उत्तरा रसोई घरमें रहने लगी और भिक्खु-संघके लिये भोजनादिका प्रबन्ध करने लगी। एक दिन सिरिमाने उत्तराके साथ दुर्व्यवहार किया किन्तु बादमें जब सिरिमाको यह ज्ञात हुआ कि वह (सिरिमा) रक्षिता मात्र थी तब उसने उत्तरासे क्षमा चाही। उस पर उत्तराने कहा कि बुद्ध यदि उसे क्षमा कर दें तब उसे कोई आपत्ति नहीं थी। दोनों बुद्धके पास गई और बुद्धने उत्तरा की बड़ी प्रशंसा की[१]।

(ज) जनपदकल्याणीकी कथा

महाप्रजापतिके साथ जो स्त्रियां भिक्षुणी हुई थीं उनमें बुद्धके भाई नन्दकी मनोनीता स्त्री 'जनपदकल्याणी' भी थी। चूंकि वह अति सुन्दरी थी इसलिये वह 'रूपनन्दा'के नामसे प्रसिद्ध थी और उसे अपनी सुन्दरता पर बहुत गर्व भी था। वह यह जानती कि बुद्ध नारी-रूपको असार कहते हैं और उसके मुखपर ही नारी सुन्दरताकी निन्दा भी करते हैं इसलिये वह बुद्धके समक्ष नहीं जाती और भिक्षुणियोंके साथ जाने पर भी सबसे पीछे बैठती थी ताकि बुद्धकी नजर उस पर नहीं पड़े। कहा जाता है कि उसकी सुन्दरताके गर्वको चूर करनेके लिये बुद्धने एक अपूर्व सुन्दर नारीका निर्माण किया जिसे देखते ही जनपदकल्याणी ने स्वयं अपनी तुलना उससे की। उस मायामयी सुन्दरी के द्वारा ही बुद्धने सुन्दरताके अस्थायित्वकी शिक्षा दी। रूपका यह परिणाम देख जनपदकल्याणीका गर्व चूर्ण हो गया।

१—धम्मपद ३,३०२

बिम्बिसारकी रानी क्षेमा अपने रूपाभिमानसे वशीभूत होकर बुद्धके सामने नहीं जाना चाहती थी किन्तु बिम्बिसारने उसे एक दिन ठग फुसलाकर वेलुवनमें बुद्धके सामने उपस्थितकर ही दिया१। उसे भी जनपद्कल्याणीसे यही शिक्षा। फिर एक दिन एक भिक्षु जीर्णोद्यानमें ध्यान करनेके लिये गया। उसी दिन एक सुन्दरी भी वहीं अभिसार करने गई किन्तु उसका प्रेमी नहीं आया इसलिये वह इधर-उधर घूमने लगी कि उसकी नजर उस साधु पर पड़ी और उसने उसे भुलाना चाहा। किन्तु उसे सफलता नहीं मिली२। इसलिये से भी यही शिक्षा मिली।

अष्टम अध्याय

भिक्षु-संघ, उसके नियम और बुद्धका महापरिनिर्वाण

तथागतके भ्रमणका वृत्तान्त और उनके जीवन-सम्बन्धी मुख्य कथानकोंका उल्लेख करनेके बाद अब हम उनके संघ तथा शिष्योंकी प्रणाली और महापरिनिर्वाण पर विचार करेंगे। हम देख चुकेहैं कि वे लगातार ४५ वर्षों तक उत्तर भारतमें प्रचार करते रहे और इसी बीचमें मगधराज बिम्बिसार, कोसलराज प्रसेनजित एवं कोसम्बी-राज उदयन आदि उनके

२—धम्मपद ३,११३;४।५७

३—वहीं २,२०१

बुद्धका कथन था कि नदी एवं पथकी तरह स्त्रीके सम्बन्धमें कुछ ठीक कहना कठिन है—वहीं ३।३४८

जीवन-कालमें ही उपासक हो गये। मध्य देशके सभी बड़े केन्द्रोंमें भिक्खु-संघके विहार स्थापित हो गये। बौद्ध-संघ विश्वकी प्राचीनतम संस्था है, जिसके द्वारा उस समय भ्रातृ-भाव एवं मानव-प्रेमका संदेश प्रचारित होता था। बुद्धने ही इस संघको स्थापित किया। संघमें सभीको संयत जीवन व्यतीत करना पड़ता था और जीवनकी प्रत्येक साधारण बात स्वयं बुद्धने बड़ी सावधानीसे नियमित कर दी थी जिससे किसी प्रकारकी दुर्बलता संघमें न आने पाये१। संघमें किसी प्रकार का विभेद नहीं रखा गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको बराबर स्थान मिला और सबके लिये बुद्धका उपदेश था— "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।" वर्ण-विभेद ही केवल उन्होंने दूर नहीं किया, वरन् गरीबी और अमीरीकी विभिन्नताको भी महात्मा बुद्धने संघसे दूर किया। संघका निर्माण ही गणतान्त्रिक आधार पर हुआ था। वे जातीयताका एकदम महत्त्व नहीं देते थे।

---

१ महावग्ग ८, १–It was from the beginning much more of a community of ascetics organised according to the fixed rules, a formal monastic order with Budha at its head........a monastic order appeared there to the religious consciousness to the reasonable, natural form, in which above the iife of those who are associated in a common struggle for realease could find expression (Oldenberg—opt. at. P. 150)

संघ-सम्बन्धी नियमोंका प्रवर्त्तन बुद्धके समयमें ही हो चुका था। विनय-पिटकमें इसका विवरण सुविस्तृत पाया जाता है। 'विनय'में हमें उस समयका सामाजिक चित्रण भी मिलता है। मानव-समाजके सुसचालनके लिये ही इन नियमोंका आविर्भाव हुआ था। मनुष्यको बुद्ध बड़ा समझते थे और मनुष्यके लिये उन्होंने नियम बनाया था। संघका प्राचीनतम इतिहास हमें 'विनय'में ही मिलता है[१]। ओल्डेन वर्गके अनुसार दीघनिकायमें संगीति अथवा बुद्धके संघका विवरण नहीं मिलता है[२]। कुछ विद्वान विनय-पिटकके सभी विवरणोंको बुद्धके निश्चित किये हुये नियमोंके रूपमें नहीं मानते हैं। उनलोगोंके अनुसार ये सभी उपदेश बुद्धके मरनेके बाद इनमें घुसा दिये गये। किंतु, यह नहीं माना जा सकता है कि बुद्धके प्रतिकूल विचारोंको शास्त्रोंमें पीछे स्थान दिया गया। संघमें सम्मिलित होनेके कई नियम थे। संघमें सम्मिलित होनेके बाद भी यदि कोई उससे पृथक होना चाहता तो वह सानन्द उससे हटकर गृहस्थाश्रममें जुट सकता था। बुद्धके अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना संसार त्याग किये और सांसारिक सुखोंको तिलाञ्जलि दिये निर्वाण-प्राप्तिके लिये अग्रसर नहीं हो सकता था अतः इस उद्देश्य-प्राप्तिके इच्छुकोंको गृह त्यागकर सन्यास ग्रहण करना ही पड़ता था। उसके बाद उनकी पूर्ण दीक्षा होती थी और तब भिक्षु कहकर उनका परिचय करवाया जाता था।

---

१ विनय २—२८४ (थेरवाद सम्प्रदाय का वि
Taranath—History of Budhism.

२ Thomas opt. at 165

प्रारम्भमें आन्तरिक दीक्षार्थीके अलावा भी बहुत लोग संघमें सम्मिलित होने लगे। उस समय मगधमें विद्रोहकी सम्भावना देखते हुए राजा बिम्बिसारने अपने महामात्योंसे विद्रोह-दमन करनेको कहा। अनेकानेक सिपाही युद्धकी ववंरतासे आतंकित हो गये और उस भीषणतासे परित्राण पानेके लिये भिक्षुओंके समीप जाकर उनलोगोंने प्रवज्जा ग्रहण कर ली। इधर युद्धमें जब उनलोगोंकी आवश्यकता पड़ी तब खोजनेपर यह पता चला कि वे लोग प्रवज्जा ग्रहण कर चुके थे। यह समाचार राजा बिम्बिसारके पास पहुँचा। बिम्बिसारने बुद्धसे अनुरोध किया कि राज्य-भृत्योंको प्रवज्जा नहीं ग्रहण करने दिया जाय। तबसे बुद्ध ने भिक्षुओंको समझा कर उन लोगों का रास्ता बन्द कर दिया। अपने नगरमें बिम्बसार ने यह घोषित कर दिया कि किसी भी बौद्ध भिक्षुको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचे। कुछ बन्दी कारागृह से भाग कर प्रवज्जा ले लिये थे। जब उन्हें फिर गिरफ्तार करने की बात चली तब कुछ लोगों ने यह कह कर रोकवा दिया कि वे लोग बौद्ध भिक्षु हो चुके थे। एवं प्रकारेण अनेक अपराधी, कर्जदार और क्रीतदास (खरीदा हुआ नौकर) भी बौद्ध भिक्षु हो चुके थे। बुद्धने बन्दीगणोंको भिक्षु होने से रोका और साथ ही ऐसे लोगों को भी जो किसी कारण से इसमें भाग कर आये थे। इसी प्रकार एक चनैल वाले स्वर्णकार ने अपने माता पिता से झगड़कर प्रवज्जा ग्रहण कर लिया। खोजते-खोजते जब उसके माता-पिता संघमें पहुंचे और अपने पुत्र के विषयमें पूछा तब वे भिक्षु ठीक-ठीक नहीं बतला सके कारण कि उस स्वर्णकार के माथ-मुन्डन के समय उन्होंने यह गौर से नहीं देखा था कि उसको चनैल

था अथवा नहीं। बाद में जब वहींसे उसके माता पिताने अपने पुत्रको खोज निकाला तब उनलोगों ने भिक्षुओं को झूठा कहना शुरू किया। भिक्षुओं ने बुद्धका ध्यान इस ओर आकर्षित किया और तबसे बुद्धने यह नियम बना दिया कि प्रत्येक नवीन भिक्षुके माथा-मुण्डनके पहले उसे सभी भिक्षुओं को दिखला दिया जाय। स्वार्थपर लोग भी संघमें आने लगे और संघकी बदनामी बढ़ने लगी। लोग यहाँ तक कहने लगे कि 'श्रमण' आराम से जीवन व्यतीत करता है। इसी भावना से प्रेरित होकर कितने लोगों ने अपने छोटे छोटे बच्चों को प्रवज्जा ग्रहण करा दिया। ऐसे-ऐसे बच्चे प्रातःकाल ही उठकर खाना माँगना शुरू कर देते थे। एक दिन अचानक बुद्धके कानों में इन बच्चों की आवाज पहुँची और तबसे बुद्धने इस प्रकार निश्चित कर दिया कि २० वर्ष से कम आयु वाला प्रवज्जा ग्रहण नहीं कर सकता। इस प्रकार एक व्यक्ति अपने छोटे पुत्रके साथ संघ में सम्मिलित हो गया। एक दिन भिक्षाटन करते समय उस बच्चे को जब कुछ नहीं मिला तब उसने अपने पिता से कहा 'मुझे भी कुछ दो।' इस पर कुछ लोग संघकी खिल्ली उड़ाने लगे और कहना शुरू किया कि यह बालक भिक्षुणी-पुत्र है। श्रमण लोग चरित्रहीन हैं। बुद्धको जब यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने यह निश्चत किया कि १५ वर्ष से कम आयु वाले बालकोंको प्रवज्जा-दान नहीं दिया जाय।

समय-समय पर बुद्धको अपने नियमोंमें परिवर्तन भी करना पड़ता था। वे श्रद्धालु और दयाके अवतार थे अतः वे अपने शिष्योंके अनुरोधको नहीं टाल सकते थे। एक परिवार का सब कोई एक ही बार संक्रामक रोग से मारा गया और

केवल दो ही छोटे बच्चे बच गये। भिक्षुओं को देखते ही वे दोनों बच्चे दौड़कर उनके पास आ जाते किन्तु नियमों से प्रतिबन्धित भिक्षुगण कुछ भी करने से असमर्थ थे कारण उन की आयु १५ वर्ष से कम थी। किन्तु उन बच्चों को देख कर आनन्द को दया आई। निरुपाय होकर आनन्द ने बुद्धसे सब समाचार कहा। वे स्वयं पर दुखकातर एवं उदारचेता थे और उन्हें रहस्य-बोध भी था। उन बच्चों को देखकर वे स्वयं द्रवीभूत हो गये। बुद्धने आनन्द से पूछा कि वे लोग (दोनों बच्चे) कौआ हाँक सकते थे अथवा नहीं। इस काम में वे दोनो प्रवीण थे। यह सुन कर बुद्धने उन्हें संघमें प्रवेश करने की अनुमति दे दी। संघके बालकोंको ही श्रमण कहकर पुकारा जाता था। एक बार संघ में दो-चार श्रमणों ने कुछ बुरा काम किया और बुद्धको जब पता चला तब उन्होंने यह नियम बना दिया कि एक भिक्षु के समीप एकसे अधिक श्रमण नहीं रह सकता था। सारिपुत्तके एक अनुरागी गृहस्थ भक्तने अपने पुत्रको उसके पास प्रवज्जा ग्रहण के लिये भेजा किन्तु उस समय बुद्ध पुत्र-राहुल सारिपुत्तके अधीन शिक्षा-ग्रहण कर रहा था अतः नियमानुसार वह किसी दूसरे श्रमण को अपने अधीन नहीं ले सकता था। बुद्धको जब यह ज्ञात हुआ कि वह सारिपुत्तका एक अनुरागी भक्त था तब बुद्ध ने उसे ग्रहण करने की अनुमति दी और कहा—विद्वान एवं उपयुक्त भिक्षु एकसे अधिक जितने शिष्यों को यथा साध्य शिक्षित कर सके उतनेको रख सकते हैं। एक श्रमणने एकबार भिक्षुणी के साथ बुरा काम किया। बुद्धने उस श्रमण को संघ से बहिष्कृत करने कहा। इस प्रकार अनेक घटनायें संघमें घटती थीं और बुद्ध अपने अनुभवों के आधार पर ही नियम बनाते थे। कुछ लोग आराम से जीवन

व्यतीत करनेके विचार से ही संघ में सम्मिलित हुआ करते थे। संघमें सम्मिलित होने के प्रारम्भिक साधारण नियम थे—

(क) मैथुनका परित्याग करना

(ख) अदत्त द्रव्योंका ग्रहण नहीं करना

(ग) प्राण हत्या नहीं करना

(छ) अहंकार नहीं करना

बौद्ध-संघ एवं भिक्षुओंका उद्देश था कि वे अपने मनको सांसारिक पदार्थोंसे अलग रखे और उन पदार्थोंके तत्वोंको समझे जिससे चिर शान्ति मिले। इसके लिये सांसारिक ममताओंसे मुक्त होना आवश्यक था। बुद्धका विचार था कि भस्मीभूत होनेसे, उपवास करने से अथवा पृथ्वी पर सोने से आत्मा पवित्र नहीं होती, केवल इन्हीं कर्मोंसे मनुष्यका पाप दूर नहीं होता। बुद्ध कर्मके अटल सिद्धान्तों में विश्वास करते थे और सत्कर्मके महत्वको समझते थे। बौद्ध-संघ बुद्धके पवित्र एवं पुनीत आदर्शोंके प्रचारार्थ ही संगठित हुआ था। संघमें सम्मिलित होनेकी विधि पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण थी। जो संघमें प्रविष्ट होना चाहता उसकी परीक्षा होती थी। सभी नियमोंसे परिचित होने के बाद वह निम्नलिखित वाक्योंको पढ़ता था जिसे बौद्ध लोग "त्रिशरणम्" कहते हैं—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि॥।

इनमें से प्रत्येकको तीन बार दुहराया जाता और इसके बाद वह निम्नलिखित दश प्रतिज्ञायें करता और प्रत्येकको तीन बार पढ़ता था—निम्नलिखित वाक्य बुद्धके हैं।

१. मैं हिंसा नहीं करूँगा २. मैं किसी प्रकारकी चोरी नहीं करूँगा ३. मैं पवित्र जीवन बिताऊँगा ४. मैं असत्य नहीं बोलूंगा ५. मैं किसी प्रकारका नशा नहीं खाऊँगा	ये ५ प्रतिज्ञायें प्रत्येक व्यक्ति [चाहे भिक्षु हों अथवा गृहस्थ] के लिये अनिवार्य हैं।
६. मैं केवल निर्दिष्ट समयमें ही भोजन करूँगा। ७. मैं नाच-रंग-रागमें सम्मिलित नहीं होऊंगा। ८. मैं आभूषण धारण नहीं करूंगा। ९. मैं गद्दी पर नहीं सोऊंगा। १०. मैं द्रव्य ग्रहण नहीं करूंगा।	ये पाँच भिक्षुओंके लिये ही अनिवार्य हैं।

इन प्रतिज्ञाओंके बाद ही प्रवेश-विधि समाप्त होती। संघ में दो प्रकारके भिक्षु होते थे—नव-भिक्षु एवं प्रौढ़ भिक्षु। नव भिक्षु प्रौढ़ भिक्षुकी अधीनतामें रहते थे। इन दोनोंका सम्बन्ध ठीक पिता-पुत्रकी तरह होता था। नव-भिक्षुओंका कर्त्तव्य था अपने गुरुओंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करना। इन नियमों इत्यदिके निश्चित होनेके बाद भी नये-नये भिक्षु अनेकानेक अनाचार संघमें किया करते थे। कोई उपयुक्त वस्त्र धारण किये बिना ही भिक्षाटनके लिये चल देता और इससे संघकी निन्दा होती। उच्छृङ्खल भिक्षुओंके व्यवहारसे तंग आकर शीलवान एवं संयत भिक्षुओंने बुद्धके समक्ष यह

प्रश्न उपस्थित किया। बुद्धने इन सभी उच्छृङ्खल भिक्षुओंको बहिष्कृत किया और नियम बना दिया कि प्रत्येक नवीन भिक्षु को पुराने भिक्षुओंके अधीन रहना होगा। शिक्षक भिक्षुको उपाध्याय (उपज्झाय) और छात्र-भिक्षुको सार्द्ध विहारी (सद्ध विहारी) कहा गया। उनलोगोंके परस्पर व्यवहारके संबंधमें बुद्ध ने कहा है- "उपाध्याय के लिये यह उचित है कि वह सार्द्ध बिहारी को पुत्र-तुल्य समझे और सार्द्ध बिहारी के लिये भी यह उचित है कि वे उपाध्याय को पिता तुल्य समझे और इस प्रकार श्रद्धावान, विश्वासवान एवं ऐक्यवान होकर दोनों एक दूसरे की उन्नति में अग्रसर हों"। दीक्षा देने के लिये भी बुद्ध ने नियम बना दिया कि दीक्षा दाता किसी को दीक्षा देने के सम्बन्ध में तीन बार संघ के समक्ष प्रस्ताव करेंगे और यदि संघ में किसी को कोई आपति नहीं हो तब उसके बाद दीक्षाप्रार्थी को दीक्षित किया जायगा। प्रस्ताव उपस्थित करने की पद्धति बन गई। दीक्षा दाता संघ के समस्त भिक्षुओं के समक्ष इस प्रकार प्रस्ताव रखेंगे-"भदन्त गण, मेरी बात सुनें, अमुक व्यक्ति आयुष्मान अमुकके समीप उपसम्पदा लेना चाहता है। यदि संघकी सम्मति हो तो आयुष्मान अमुक इस अमुक व्यक्ति का उपाध्यायत्व ग्रहण करें और उसे उपसम्पदा दें। यही मेरा प्रस्ताव है।" इस प्रकार तीन बार प्रस्ताव रखनेका नियम था। मतभेद होनेपर भिक्षुओंका मतामत लिया जाता था।

पहिले कहा जा चुका है कि अधिकांश नियम अनुभव पर ही आधारित थे। एक बार एक व्यक्तिने उपसम्पदा लेने पर संघमें अनाचार किया। तब बुद्धने यह नियम बना दिया कि उपसम्पदा-प्रार्थी को सर्व-प्रथम निम्नलिखित प्रतिज्ञा करनेके बाद ही उपसम्पदा दी जाय। प्रतिज्ञा यह थी-"संघ

कृपा करके हमें संसारसे मुक्ति पानेके लिये उपसम्पदा दान करें" । राजगृहमें कुछ उपासक [गृहस्थ-भक्त] ने भिक्षुओंको निमन्त्रण दे रखा था। एक ब्राह्मण भिक्षुओंके भोजन एवं शयनकी इस सुन्दर व्यवस्थाको देखकर संघमें प्रविष्ट कर गया और उसे उपसम्पदा भी मिल गई। कुछ दिन बाद उपासकों द्वारा दिया हुआ निमन्त्रण समाप्त हो गया। तब भिक्षुओंने ब्राह्मणसे कहा "चलो, अब भिक्षाटनके लिये बाहर जाया जाय"। ब्राह्मणने कहा—"मैंने भिक्षाटनके लिये प्रवज्जा नहीं ली है। यदि तुमलोग भोजन दो तो अन्युत्तम नहीं तो मैं घर वापिस चला जाऊँगा"। भिक्षुओं ने पूछा—"तो क्या तुमने पेटके लिये ही प्रवज्जा ली थी"। ब्राह्मणने उत्तर दिया—"हाँ"। बुद्धको जब यह मालूम हुआ तब उन्होंने निम्नलिखित चार नियमोंका प्रतिपादन किया और कहा कि प्रत्येक दीक्षार्थीको इन चार नियमोंका अवलम्बन करना पड़ेगा।

(क) भिक्षुओंको भिक्षान्न पर ही निर्भर करना पड़ेगा।
(ख) फटे पुराने कपड़ों पर ही भिक्षुओंको निर्भर करना होगा।
(ग) वृक्ष तले बास करना पड़ेगा।
(घ) भिक्षुओंको गोमुत्र इत्यादि भेषज पर ही निर्भरकरना होगा।

इनके आलावा जो कुछ मिल जाय; उसे अतिरिक्त लाभ ही समझना होगा। दश भिक्षुओंसे कम वाले संघको उपसम्पदा दान करनेके अधिकार से वंचित कर दिया गया। उपसम्पदा दान-नियममें भी कुछ बुराइयाँ आगईं और इसके फलस्वरूप मूर्ख, निर्बोध एवं अयोग्य व्यक्ति आने लगे। इसका फल यह हुआ कि उपसम्पदा सम्बन्धी नियम कठोर हो गया और यह निश्चित हुआ कि दश वर्ष या उससे अधिक दिन तक

संघमें रहनेवाले भी किसीको उपसम्पदा दान नहीं दे सकते थे। उपयुक्त पंडितोंको ही अब उपसम्पदा-दान देनेका अधिकार दिया गया।

भिक्षु दिन-रात मिलाकर केवल एक ही बार भोजन करते और वह समय प्रातःकाल और मध्याह्नके बीच था। नव-भिक्षु अपने गुरु प्रौढ़ भिक्षुके साथ भिक्षाटनके लिये निकलते। भिक्षुओंका काफी सत्कार होता और उनलोगोंके लिये अन्न अथवा आवश्यक वस्त्रादि रखे जाते थे। भिक्षुके लिये आठ पदार्थ आवश्यक थे—भिक्षाटनका कटोरा, अस्तूरा, सुई, पानी छाननेका वस्त्र, पहिनने-ओढ़नेके तीन वस्त्र और एक कमर-बन्द। त्याग एवं सादगी ही उनके जीवनका सार था। वे धर्मग्रन्थोंका अध्ययन करते, नकल करते, कंठस्थ करते, ध्यान करते और नव-भिक्षुओंको पढ़ाते। प्रत्येक मासमें दो दिन—द्वितीया और पूर्णिमाको-एक प्रान्तके भिक्षु दोष-स्वीकार करने की विधिके लिये एकत्र होते। धर्म-ग्रन्थ-पठन-पाठनके बाद यह विधि शुरु होती और तब दोषके विषयमें तीन बार पूछा जाता। इस प्रकार आत्म-समीक्षाके द्वारा ही आत्म-शुद्धिकी जाती और इससे सम्पूर्ण संघ पर अच्छा प्रभाव पड़ता था।

संघ में अनेकानेक नियम लागू किये गये और यह सब इसलिये कि संघ का जीवन आदर्शमय हो। संघ-सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों पर भी बुद्धने अपना उपदेश दिया था। वस्त्रादि व्यवहार के नियम भी निश्चित किये गये थे१। सोण नामक एक धनी पुत्र भिक्षु हुआ था। वह इतना सुकुमार था कि खाली पाँव चल भी नहीं सकता था। बुद्धने उसे

१—महावग्ग ५।१–१३; ८।१–३२ चुल्लवग्ग–५।६

पादुका व्यवहार करने का आदेश दिया। सोण ने अनुरोध कि कि यदि सभी भिक्षुओं को पादुका व्यवहार करने की अनुम दी जाय तब वह भी करेगा और उसकी भक्ति से प्रस होकर बुद्धने ऐसाही आदेश दिया। एकबार बुद्धने भिक्षुओं को जूता पहनने का भी आदेश दिया था किन्तु जब उनलोगों अशिष्ट व्यवहार करना शुरू किया तब बुद्धने आराम [बगीच में जूता का व्यवहार निषेध कर दिया। किन्तु रोगियोंके लि आराम में भी जूता व्यवहार करने का नियम रहा। बुद्धने य नियम भी बना दिया कि अन्धकार में प्रदीप एवं लाठी लेक चला जाय। बुद्धने यह नियम बनाया कि कोई भी भिक्षु अप स्वार्थ के लिये अथवा अपने दैनिक व्यवहार के लिये वृक्ष औ वृक्ष के पत्ते को नष्ट न करें। बुद्ध के ऐसा आदेश देने क कारण यह था कि लोग यह समझते थे कि मनुष्य की तरह वृक्ष में भी प्राण है अतः उसे नष्ट नहीं करना चाहिये और कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। पीड़ित अवस्था में ही भिक्षुओं को गाड़ी में सवार होकर चलने की आज्ञा मिली। सिंह, व्या इत्यादि के चमड़े से ही वे लोग अपना बिछावन आदि बनाते थे किन्तु बाद में चमड़े वाले आसन का व्यवहार उपासकों के बीच ही सीमित रहा। अवन्ती के कात्यायन ने सोण भिक्षु द्वारा निम्नलिखित विषय पर अनुमति माँगी—[क] अवन्ती एवं दक्षिण पथ के अंचलों में दश जन भिक्षुओं को संगठित करने एव उपसम्पदा दान करने का अधिकार हो—इसका कारण यह बतलाया गया कि उन अंचलों में बौद्ध-भिक्षुओं की संख्या अल्प थी। (ख) इन अंचलों की मिट्टी कड़ी थी इसलिये अनुरोध किया कि भिक्षुओं को मोटी चमड़ी व्यवहार करने की अनुमति दी जाय। (ग) ज्यादा स्नान करने की अनुमति दें।

(घ)पशु-चर्म बिछावनके लिये व्यवहार करनेकी अनुमति दें और (ङ) भिक्षुओं को यदि कोई वस्त्रदान करे, तो उन्हें ग्रहण करने का अधिकार दें। कात्यायनकी इन सभी प्रार्थनाओं को बुद्ध ने मान लिया। वस्त्रदान स्वीकार करने के लिये संघ में एक उपयुक्त भिक्षु नियुक्त किया जाता था। बुद्धने संघमें त्रि-चीवर १ नियम चलाया। विशाखाने जब बुद्धको गमछा दिया तब बुद्ध ने सबों को एक गमछा रखनका भी आदेश दिया और कहा कि यदि कोई सप्रेम एवँ सन्तुष्ट होकर वस्त्र दान करे तो उसे स्वीकार करना चाहिये एवँ उसका अपव्यय नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार संघमें अनेकानेक नियम लागू किये गये। यथार्थमें बौद्ध-भिक्षुओंके लिये केवल पूर्व कथित आठ ही पदार्थ आवश्यक थे, इनके अतिरिक्त तीन वस्त्र और एक कमर-बन्द। भोजनादि के नियम भी निश्चित किये गये। घृत, माखन, तेल, मधु एवं गुड़ औषधरूपमें व्यवहार किया जा सकता था। और प्रयोजन होनेपर दूसरे समयमें भी भिक्षुगण इन सब वस्तुओंका व्यवहार कर सकते थे। प्रयोजन होने पर सूअर, गदहा, मत्स्य इत्यादिकी चर्बी को भी व्यवहारमें लानेकी अनुमति थी किन्तु अप्रयोजन में व्यवहार करनेसे उसे दोष समझा जाता था। किसी वस्तुको लाकर बिहारमें संचित नहीं किया जा सकता था। कथित है कि बनारस की भक्तिनी सुप्रियाने अपना माँस शरीरसे काट कर एक भिक्षुको दिया था। बुध्द् को जब यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने यह नियम बना दिया कि माँस खाने के पूर्व यह जान लेना चाहिये कि किस जानवर का माँस है।

---

[१] तीन टुकड़ा कपड़ा—

प्राचीन काल में माँस-भोजन प्रचलित था। भिक्षुओं को जो मिलता था, वही खाते थे[१]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस-समय के अनेकानेक प्रसिद्ध व्यक्ति एवं विद्वान बुद्धके समर्थक हुये और संघके सदस्योंकी संख्या बढ़ने लगी। सदाचार, पवित्रता, मानव-कल्याण इत्यादि के मूल-मंत्रों से प्रेरित होकर एक अपार जान-समूह बुद्धके पीछे हो चले जिनका एक मात्र उद्देश्य था मानवीय-दुखों का अन्त करना। सन्यासियों के अलावा बहुत ऐसे उपासक भी थे जो गृह-त्याग किये विना भी बुद्धके शिष्य थे। केवल भिक्षु अथवा सन्यासी संघके सदस्य हो सकते थे। बुद्धके उपासक दूसरे संघके भी उपासक रह सकते थे[२]। राजा-महाराजा, सेठ, सहूकार, ब्राह्मण इत्यादि सब इनके शिष्य थे। मगध के राजा बिम्बिसार का राजवैद्य जीवक भी उनका समर्थक था[३]। सेठों में अनाथ-पिण्डक का नाम सर्वप्रथम आता है। प्रसिद्धा एवं विदुषी स्त्रियाँ भी संघ में सम्मिलित हुई थीं[४]।

संघका जीवन बहुत ही सुन्दर था और वहाँ की सभी बातें सहकारिता की भावनाओं पर आधारित थीं। संघका जीवन शान्तिमय एवं अनुशासित था। आपस में वाद-विवाद करके वे

१. मज्झिम-निकाय (जीवन-सुत्त)

२. चुल्लवग ५।२७।३

३. महावग्ग-८

४. The circle of Budha,s disciples was from the very begining a monastic brotherhood.[Oldenberg opt. cil. P. 151]

लोग अपनी ज्ञान वृत्ति करते थे१। व्यक्तिगत प्रतिभा की उन्नति का यह सर्वोत्तम स्थान था जिसमें प्रत्येक भिक्षु-समस्त भिक्षु समुदाय की शुभ-कामना चाहता और उसी प्रकार भिक्षु समुदाय प्रत्येक व्यक्तिगत भिक्षुओंका। संघमें जात-पात का प्रश्न नहीं था। कोई भी व्यक्ति बौद्ध-धर्ममें दीक्षित होने के बाद संघका सदस्य हो सकता था। बुद्धका कथन था कि जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियाँ समुद्र में मिलने के बाद एक हो जाती है, उसी प्रकार चारो वर्णा के लोग संघ में आने के बाद एक हो जाते हैं और उसके बाद वे लोग शाक्य-श्रमणों के नाम से ही सम्बोधित होते हैं। दास भी संघ में सम्मिलित होनेके बाद बराबरका स्थान प्राप्त करता है। संघ तो "बहुजन हिताय, बहुजन सुखायके उद्देश्यपर संगठित ही हुआ था। सामाजिक विभिन्नताको दूर तो उन्होंने किया ही और संघ को गणतान्त्रिक आधारपर संगठित किया। अपने आध्यात्मिक राष्ट्र में उन्होंने धनी और गरीब दोनों को स्थान दिया। अभिजातवर्गके लोग इसमें ज्यादा सम्मिलित हुए थे। प्रसिद्ध ब्राह्मण सारिपुत्र और मोग्गलान, प्रसिद्ध रईस एवँ राजपुत्र आनन्द, अनुरुद्ध एवं राहुल, प्रसिद्ध व्यापारी एवं धनी यश इत्यादि लोग इस संघ में थे। इसके अलावा समाज के निम्न स्तर की नाई जाति का उपालि भी बौद्ध-संघ का प्रमुख सदस्य था। राज-दरबारका नाई

---

१. संघ की बैठक रात में भी काफी देर तक हुआ करती थी। देखिये माज्झिम निकाय ११०; दीघ निकाय--२ इसमें उस कथाका वर्णन है जब पूर्णिमा की रात में मगध सम्राट अजातशत्रु बुद्धसे मिलने जाते हैं। अजातशत्रु जीवक के कहने पर ही बुद्धसे मिलने आये थे।

(हज़ारा) होने कारण उसे शाक्यवंशीय राजकुमारों से काफी मित्रता थी१। संघ पर अभिजात वर्गोंका प्रभाव विशेष था इसमें सन्देह नहीं। इसके उदाहरण के लिये हमे वह प्रसंग उपस्थित करना पड़ेगा जिसमें आनन्द बुद्धसे मल्ल वंशके विषयमें कहता है। आनन्द बुद्धसे कहते हैं—"भदन्त, यह मल्ल राजा बहुत ही जनप्रिय एवं लब्ध-प्रतिष्ठित है। संघ एवं धर्मके प्रति ऐसे लब्ध-प्रतिष्ठित व्यक्तिकी शुभकामना एवं शुभेच्छा वाँछनीय है। भदन्त, इसलिये आप ऐसा करें जिससे कि मल्ल राजाको धम्म एवं संघके अधीन लाया जाय।" बुद्धने आनन्दके इस अनुरोधको मान लिया२।

नियमोंका निर्माण भी संघ में होता था। संघके लिये बुद्ध ने स्वयं ही बहुत नियम बनाये। चूंकि नियमोंका प्रतिपादन स्वयं बुद्धने किया इसलिये संघके लिये वह अनिवार्य और मान्य था। संघके सभी कामोंमें उनके द्वारा प्रतिपादित नियम ही लागू किये जाते थे। नियमोंके विरुद्ध काम करने वालेको दोषी ठहराया जाता था।३ संघके उन नियमोंमें परिवर्तन अथवा संशोधन लानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। बुद्धके मरनेके बाद यह निर्णय हुआ था कि सब कोई नियम नहीं बनायेगा जिसे बुद्धने नहीं बनाया और उनके द्वारा

१—चुल्लवग्ग ७।१।४। जातक-खण्ड१-पृष्ठ ३४२ (अंग्रेजी); संघ सम्बन्धी नियमोंके लिये देखिये महावग्ग १ ६७; चुल्लवग्ग ६।३।६

२—महावग्ग ६।३६ और देखिये-अंगुत्तर निकाय, तिक निपात (विशेष बर्णन के लिये)

३—विनय-पिटक, खण्ड १-(ओल्डेनवर्ग द्वारा सम्पादित)

बनाये हुये नियमों एवं अनुशासनोंको स्वीकार करके ही उसका पालन करेगा४। उनकी मृत्युके बाद संघ उन्हींके बनाये हुए नियमों पर चला यह कहना कठिन है। उन्होंने मृत्युके पूर्व ही कहा था—"*अपनी ज्योति आप बनो। सत्यको ही अपनी ज्योति बनाओ*"५। उन्होंने अपने व्यवहारसे भी संघको बहुत प्रभावित किया था। अपने कामको पूरा करनेके लिये वे कठिनसे कठिन मार्ग पर चल सकते थे और उसमें भी उन्हें प्रसन्नता होती थी। उनके इस अध्यवसायी प्रवृत्तिका प्रभाव संघ पर पड़ा, इसमें तो सन्देह ही नहीं। जब उनके जीवनका अवसान समीप था तब आनन्द ने पूछा—भदन्त संघके विषयमें क्या होगा और आपका क्या विचार है। उन्होंने उत्तर दिया—आनन्द, 'मैंने, बिना किसी भेद अथवा मतभेद या पक्षपातके, सत्यका प्रचार दीक्षित एवं जन साधारणके लिये कर दिया और मैंने कुछ भी छोड़ नहीं रखा है। मैं यह नहीं सोचता हूं कि संघ मुझ पर निर्भर करता है अथवा मैं संघका परिचालन करता हूं। अतः संघ-सम्बन्धी किसी प्रकारका उपदेश अपने पीछे छोड़ जाना मैं आवश्यक नहीं

४—प्रथम बौद्ध संघ-संगीति (राजगृह) चुल्लवग्ग ११।१ ६: सुत-विभंग निस्सग्गिय १५।१।२
वैशाली संगीतमें भी बुद्ध द्वारा प्रतिपादित नियमोंका समर्थन चुल्लवग्ग—१२

५—कुछ लोगों का विचार है "त्रिशरणम्" मे "बुद्धंशरणम्" पीछे (बुद्धके मरनेके बाद) जोड़गया (Olden berg—वहीं पृष्ठ ३२६)

६ अंगुत्तर निकाय; संयुक्त निकाय १।१६०

समझता। आनन्द, तुम लोग सत्य का आश्रय ग्रहण करो। उसीसे तुम्हें ज्योति मिलेगी। जो शुद्ध आचरण करेगा, वही धम्म और संघका समादर करेगा। तुम लोग मेरे विषयमें न सोचकर अपने विषयमें सोचो और मेरे चले जानेके बाद मेरे द्वारा प्रतिपादित संघ-नियमोंको ही अपना गुरु समझो।" बुद्धने संघमें किसीको भी अपना उत्तराधिकारी नहीं चुना। इसका दूसरा उदाहरण हमें निम्नलिखित अवतरणोंमें मिलता है। एक बार आनन्द राजगृहमें आराम कर रहे थे तब तक बुद्धका महापरिनिर्वाण हो चुका था। इसी समय मगध-सम्राट अजातशत्रु राजा प्रद्योतके आक्रमणके भयसे राजगृहमें किला बनवा रहा था। उसने अपने मंत्री वर्षकारको किला बनवाने का भार दे दिया था अतः वर्षकार राजगृहमें ही रहा करता था। वर्षकारने एक दिन आनन्दसे पूछा—"भदन्त, क्या भदन्त गौतमने किसी खास शिष्यको संघका परिचालक अथवा उत्तराधिकारी बनाया है?" आनन्दने उत्तर दिया "नहीं"। वर्षकारने फिर पूछा—"क्या संघने किसीको चुना है" आनन्द ने फिर उत्तर दिया—"नहीं"। तब वर्षकारने पूछा कि भदन्त इसके बिना आपके संघमें एकता कैसे रहेगी। इस पर आनन्दने कहा कि "एकता धम्ममें है" १।

संघ सम्बन्धी और भी दो चार बातोंके विश्लेषणके बाद अन्यान्य बातों पर विश्लेषण होगा। संघका प्रथम नियम था ब्रह्मचर्य। उसके बाद यह भी नियम हुआ कि संघके सदस्यों का जीवन सरल होना चाहिये। संघके सदस्य होनेके पूर्व ही आनेवालोंको अपनी सम्पत्ति छोड़नी पड़ती थी। इस प्रकार

१—मज्झिम निकाय—गोपक मोग्गलान-सुतान्त।

उन्हें वैवाहिक जीवनका भी अन्त करना पड़ता था२ सम्पत्तिकी तुलना जंजीरसे हुई है। सन्यासके बाद स्त्रीके साथ बहनका सम्बन्ध हो जाता था। इधर-उधरके उल्लेखोंसे ऐसा जान पड़ता है कि संघ के कोई कोई सदस्य कुछ सम्पति भी रखते थे। एक सन्यासिनी मृत्युके समय कहती है कि उसके मरनेके बाद उसकी सम्पत्ति संघको मिलनी चाहिये३। संघमें जमीन, नौकर पशु इत्यादि रखनेका नियम ही नहीं था। यहाँ तक कि मिट्टी खोदना या खोदवाना भी दोष समझा जाता था४। ऐसे ही एकाध उदाहरण मिलते हैं जिससे यह पता चलता है कि संघके आरामोंमें कहीं-कहीं खेती होती थी५। संघके प्रत्येक सदस्योंकी पूरी शक्ति आध्यात्मिक कार्यमें लगाई जाती थी। धर्म-ग्रथोंका पठन पाठन भी दैनिक चर्याओंमें प्रमुख था। वाद-विवाद भी हुआ करता

२—महावग्ग-१।८।७८—सुत विभंग

३—चूल्लवग्ग—१०।२–सम्पत्ति सम्बन्धी बातोंके लिये और देखिये– वहीं ६,१५.१६ और महावग्ग—८।२७।५

४—ब्रह्मजाल-सुत।

५—महावग्ग—६।३६

We must keep before us the fact........the conception that the divine Head of the church is not absent from his people; but that he dwells powerfully in thier midst as thier Lord and king....Buddhism is riligion without prayer [olden berg P. 365-70]

था। संघ-सम्बन्धी सभी कठिन प्रश्नों पर उपदेश भी हुआ करता था। धम्म पर ज्यादा वाद-विवाद होता था६। संघ ही वास्तविक शान्तिका स्थान था७। भिक्षु-संघ और भिक्षुणी-संघका सम्मिलित नाम "उभतो-संघ" था। कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जिन्हें संघमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता था। ऐसे व्यक्ति निम्नलिखित थे—

(क) जिनका शरीर बेकार हो या जो बराबर अस्वस्थ्य रहते हों—

(ख) बदमाश और समाजमें जो बदमाशीसे अपना जीवन निर्वाह करते हों—

(ग) जो राजदरबारकी नौकरीमें हो—विशेषकर सिपाही

(घ) जो कर्जदार (लेनेवाले अथवा देनेवाले)

(ङ) ऐसे लड़के जिन्हें पिताकी अनुमति न मिली हो—

संघ-सम्बन्धी उपदेश देते हुए भी वे सरल थे और किसी धर्म-विशेष या व्यक्ति-विशेषको आघात नहीं पहुँचाते थे। अपने भ्रमण एवं उपदेश प्रसारके सम्बन्धमें बुद्ध ऐसे व्यक्तियोंके यहाँ भी रहते थे जो उनके धर्म अथवा संघको नहीं मानता था। इस सम्बन्धमें जटिल (आपनका] का नाम उल्लेखनीय है८। उसने एकबार बुद्ध और उनके २५० शिष्योंको भोजन कराया

६—महावग्ग—१०।४।५; अंगुत्तर निकाय—३रा खण्ड अंग्रेजी]

७—मिलिन्द-पन्होमें संयुक्त- निकायकी उक्ति—पृष्ठ ४०२—धम्मपद ३२८

८—सुत-निपात ३,७,२१-२

था और उनसे ब्राह्मण-धर्म पर उपदेश भी सुनाया था। इसी प्रकार मगधका एक आर्जाविक कर्मचारीने भी उनका स्वागत किया था१। कभी-कभी वे ब्राह्मणोंके साथ बैठकर भी वाद-विवाद करते किन्तु उनके धर्मकी निन्दा नहीं करते२। अपने जीवनके क्षण क्षणमें संघकी ही चिन्ता करते थे और उसे सुदृढ़ एवं सुसंगठित बनानेके प्रयत्नमें लगे रहते थे। विश्व इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जो केवल अपने शुद्ध आचरण, पवित्र विचार एवं ढकोसला-रहित धर्मसे मानवता की विशेष संख्याको अपने तथा अपने संघके प्रभावमें लाया हो। बौद्ध-धर्म प्राचीन होते हुए भी विश्वके एक-तिहाईका प्रतिनिधित्व करता है। संसारके इतिहास में यह एक अद्वितीय संस्था रही है।

*बुद्ध का महापरिनिर्वाण*३ :—बुद्धके जीवनका अन्तिम भाग कुछ दुखद एवं शोक-ग्रस्त रहा। बुद्धके प्रिय बन्धु-गणोंका

१—चूल्ल॰ ५,६,१०,१

२—मज्झिम-निकाय ७५

३ महापरिनिर्वाणकी तिथिपर विद्वानोंमें काफी मतभेद है। विभिन्न विद्वानोंका मत यहाँ उपस्थित किया जाता है—[i] Kern—368,370,388, 380,b.c; [ii] Rhys Davids 412 B. c. [iii] Maxmuller 477 B. c. ; [iv] L.D. S. Pillai—478 b.c. ; [v] Oldenberg—480 b. c. ; [vi] Fleet 482 b. c. ; [vii] Fachow 483 b. c. ; [viii] Conton tradition 485 b. c. ; [ix] Smith 487 and 508 b. c. ; [x] Mahavansa 520 b c. ; [xi] Siam tradition 529 b. c. ; [xii]

देहावसान हो गया। मगधराज बिम्बिसारकी मृत्यु हुई और उसके बाद उसका पुत्र राजा हुआ। उसने बुद्धके विरूद्ध काम किया। देवदत्तने भी बुद्धपर लांछना लगाई। उनका दूसरा प्रधान शिष्य अनाथपिण्डक भी संसार-त्यागकर चुके थे। मरनेके समय सारिपुत्तने अनाथ-पिण्डकको उपदेश दिया था। उनके जीवनके शेषमें सारिपुत्त और मोग्गलान भी काल-कवलित हो चुके थे। पहले मोग्गलान ही परलोक-वासी हुये। मोग्गलानकी मृत्यु शोचनीय हुई थी। नग्न श्रमणोंने मोग्गलानकी हत्या गुण्डों द्वारा कराई। मोग्गलानकी मृत्युका समाचर सुनकर बुद्धने कहा कि उनकी मृत्यु पूर्वजन्मके कर्मके अनुसार हुई है और इसमें कुछ भी अन्याय नहीं[२]।

Dipvansa and Cylon tradition—543 b. c.; [xiii] K. P. Jayasadal—544 b. c.; [xiv Tibetan tradition 546 and 576 b. c. 653 and 752;837,880;882,884; [xv] Gaya Inscription 633 b. c.; [xvi] Chinese Date 638 b c., 1036; [xvii] Mougol chronolgy 901; [xviii] Giorgi, 959,960; [xix] Sir W. Jones 1004 [xx] Baithy 1031; [xxi] Fahien 1050; [xxii] Bhutan 1058, [xxiii] Sir James Prinsep1332; [xxiv] Triveda 1790,1793—साधारणतः अभी तक ज्यादा विद्वान 483 b. c. मानते हैं।

२ मोग्गलानके पूर्व-जन्मकी कथाके लिये देखिये— धम्मपदट्ठ-कथा ३,४५

बुद्ध यह जानते थे कि उनका अन्त समीप था अतः उन्हें इच्छा हुई कि नाना स्थानोंमें भ्रमणकर भिक्षु-मण्डलोंको अन्तिम उपदेश दिया जाय। इस उद्देश्यसे वे भ्रमणके लिये फिर निकल पड़े और गृद्ध-कूटसे अम्बलट्ठिका ग्राम गये और फिर वहाँसे नालन्दा। यहाँ पर उन्हें सारिपुत्तसे अन्तिम भेंट हुई। सारिपुत्त भी अपने जन्म-स्थानमें अपनी मृत्युकी प्रतीक्षामें थे। नालन्दासे बुद्ध पाटलिग्राम गये। उस नगरको देखकर उन्होंने वहाँ एक महानगरकी स्थापनाके विषयमें भविष्य वाणीकी थी। वास्तवमें वही पाटलिग्राम बादमें पाटलिपुत्र हुआ। जिस द्वार और जिस घाटसे बुद्ध निकले थे उन दोनोंका नाम क्रमशः गौतम-द्वार और गौतम-घाट रक्खा गया। वहाँसे बुद्ध कोटिग्राम पहुँचे और भिक्षुओंको चार-आर्य-सत्यपर उपदेश दिया। इसी बीच सारिपुत्तकी मृत्यु हो चुकी थी। बुद्धको यह समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ। सारिपुत्तमें उन्हें अगाध विश्वास था। कोटिग्रामसे बुद्ध नादिकदेर गये। फिर वहाँ से वैशाली गये और आम्र-वनमें ठहरे। इसी समय अम्बपाली बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हुई। वहाँसे वेलवाग्राममें जाकर बुद्धने वर्षा-वास किया। बुद्ध इस बीच कुछ अस्वस्थ्य हो चुके थे और यह देखकर आनन्द चिन्तित हो गया था।

बुद्धके पेटमें दर्द उठा और मृत्यु निकट दीखने लगी। आनन्दने उनसे संघ-सम्बन्धी कुछ प्रश्न किया। इसपर बुद्धने उत्तर दिया—"आनन्द, भिक्षु-संघ मुझसे क्या आशा करताहै? मैंने धर्मका प्रत्यक्ष उपदेश कर दिया, तथागतके के धर्ममें कोई गाँठ और पहेली (आचरिय मुट्ठी) तो नहीं है जिसे यह अनुमान हो कि मैं ही भिक्षु-संघ को चलाऊँगा। संघ मेरा ही मुख देखा करेगा, वह भिक्षु संघ का रास्ता बनाये।

तथागतकी तो को बात नहीं है ।......इसलिये आनन्द अब तुम अपनी ही ज्योति में चलो, अपनी ही शरण जाओ, किसी दूसरे की शरण मत जाओ, धम्मकी ज्योति धम्म की शरण में चलो"[१] । वेलुवग्राम से बुद्धदेव मल्लों के अनेक गाँवों में भ्रमण करते हुए पावा पहुँचे । वहाँ चुन्द कुमारपुत्तने (लोहार) उन्हें भोजन कराया और उसमें सूअर का माँस भी परोस दिया[२] । उसके बाद से ही उनका दर्द बढ़ गया और रक्तातिसार जारी हो गया । पावा से वे कुसीनारा की ओर चले । पथमें कुकुधा नदी में स्नान करके एक आम्रवन में ठहरे और आनन्द से कहा—"आनन्द शायद कोई चुन्द कुमारपुत्त के मनमें यह शंका पैदा कर दे कि तू कैसा अभागा है जो तेरी भिक्षा खाकर बुद्ध का परिनिर्वाण हो गया, सो चुन्द की उस शंका को दूर करना । आयुष्मान चुन्द से कहना, मेरे लिये सुजाता का दिया हुआ भोजन और चुन्द का दिया हुआ भोजन एक समान है, क्योंकि एक को पाकर बोध हुआ और दूसरे को पाकर परिनिर्वाण होता है" ।

वहाँ से वे कुसीनारा के समीप मल्लों के साल-वन में गये और वहाँ आनन्द से कहा कि जोड़े साल के बीच उत्तर की ओर सिर करके मेरा आसन बिछा दो । उनके ऊपर फूलों की वर्षा होने लगी । इसी समय सुभद्र नामक एक विद्वान अपनी शंका के समाधान के लिये उनके समीप आया । बुद्धने अन्तिम बार भिक्षुओं से कहा—"अब मैं तुम्हें

---

१ अत्तादीपा विहरथ अत्त सरणा अनञ्ञसरण धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा ।

२ तेलोवाद जातक (२४६)

अन्तिम बार बुलाता हूँ; संसार की सब सत्ताओं को अपनी-अपनी आयु है, अप्रमाद से काम करते जाओ, यही तथागत की अन्तिम वाणी है"। ऐसा उपदेश करते हुये इस महामानव ने अस्सी वर्ष की आयुमें अपने नश्वर शरीरको उस त्यागकर लोकोत्तर अमरत्वको प्राप्त किया जिसका अलौकिक प्रकाश आज भी समस्त भूमंडलको प्रकाशितकर रहा है एवं यावच्चन्द्र दिवाकर प्रकाशित करता रहेगा यही उनका महापरिनिर्वाण था। कुशीनारा में उनकी दाह-क्रिया सम्पन्न हुई। महापरिनिर्वाण का समाचार सुनकर भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के दूत धातु(फल) का भाग मांगने आये। उनके आठ भाग किये गये। मगध के अजातशत्रु को एक भाग मिला, जिस पर राजगृह में एक स्तूप बनवाया गया। वैशाली के लिच्छवी, कापलवस्तु के शाक्य, पावा और कुशीनारा के मल्लों; रामगाम के कोलिय, अलकप्प के बुलियों और वेठदीप के ब्रह्मणों ने एक-एकभाग लिया। उन सभों ने अलग-अलग स्तूप बनवाया। पिप्पली के मोरियों को चिता के भस्म से ही सन्तोष करना पड़ा।

नवम अध्याय

प्रकीर्ण

(१) बुद्धकी लोक सेवा

भगवान बुद्ध वैयक्तिक निर्वाणके पक्षपाती नहीं थे। वे संसारको ही दुःखोंसे छुटकारा दिलाना चाहते थे। इसी

अभिप्रायसे उन्होंने इतने लोगोंको अपने धर्ममें दीक्षित किया और उन्हें नियमानुकूल संघबद्ध किया कि यह काम अधिकसे अधिक जनसमुदायमें और अधिकसे अधिक समय तक चलता रहे। बौद्ध संघ वस्तुतः एक जीवित संस्था बन गया और उसके सदस्योंमें एकताकी भावना थी। संघमें शिष्योंकी एकता एवं उनके सदाचारके महत्त्व पर उपदेश करते हुए उन्होंने कहा था—"जबतक भिक्षुगण भ्रातृभावसे एक स्थानमें एकत्र होते रहेंगे, गुरुजनोंकी आज्ञा और संघके नियमों का पालन करते रहेंगे, उन नियमोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं करेंगे, सांसारिक झंझटोंमें नहीं पड़ेंगे, और निष्प्रयोजन वार्तालाप नहीं करेंगे, तब तक बौद्ध-धर्मका ह्रास नहीं होगा—उन्नति ही होती रहेगी।" उन्होंने अपने शिष्योंको आदेश दिया था कि वे लोग अपने पवित्र धर्मसे मानव-जातिका कल्याण करें। मरते दमतक उन्होंने स्वयं यही काम किया।

यह ठीक है कि भगवान बुद्ध मानव प्रवृत्तिको ही बदल देना चाहते थे और इसीलिये संसारत्यागी निःस्वार्थ भिक्षुओं का संघ स्थापित किया एवं उनके लिये कठोर लोकोत्तर नियमों का विधान किया परन्तु वे यह भी जानते थे कि सारा संसार सन्यास नहीं ग्रहण करेगा। राजपाट, घर गृहस्थी, व्यापार-विनिमय आदि चलते ही रहेंगे। इसलिये समाजके अंदर ही उस विशाल जनसमुदायकी भलाई कैसे हो सकती है (जो संघ से बाहर है), यह बात भी उनकी पैनी दृष्टिसे ओझल नहीं थी। उन्होंने ऐसे बहुतसे उपदेश और नियम दिये हैं जिनसे अधिकसे अधिक लोगोंको अधिकसे अधिक सुख हो। वे साधारण जनताके समक्ष अपने ऊँचे दार्शनिक विचार या सन्यासियोंके उपयुक्त कड़े नियमोंको नहीं रखते थे बल्कि साधा-

रण धर्मकी ही शिक्षा देते थे जिससे घरमें ही लोगोंको शांति और सुख मिले। दीग्घ निकायके चक्रवर्ती सिंह नाद सुतमें यह स्पष्ट कहा गया है कि दरिद्रता ही अपराध और दुराचारकी जड़ है। उसके कूटदन्तसुत से प्रत्यक्ष होता है कि इन बुराइयों को रोकनेका भी उपाय बुद्धने बतलाया था। उनके अनुसार दण्ड देनेसे चोरी इत्यादि नहीं रुक सकती बल्कि यह तब रुक सकती थी जब कि लोगोंको सुख-पूर्वक जीवन-व्यतीत करने की सुविधा प्रदान की जाय। सफलता प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि उत्साहसे काम किया जाय। साधारण एवं दैनिक रोजगारके विषय पर बुद्धके विचार 'अंगुत्तर निकाय के अनेक स्थानोंमें पाये जाते हैं। 'अंगुत्तर-निकय' में मनुष्यके चार निम्नलिखित ऐहिक सुख बतलाये गये हैं—

गृहस्थोंके लिये बतलाये चार प्रकारके सुख—
(क धनका होना (अत्थसुखं) और (ख) उसका सम्यक् प्रकारसे व्यवहार करना (ग) (भोग सुखं)
(ख) कर्जदार न होना (अनण सुखं)

मनुष्यके चार ऐहिक सुख—
क. अपनी आजिविका चलानेमें दक्षता (उट्ठान सम्मपदा)
ख. सम्पत्तिकी रक्षा (आरक्ख सम्पदा)
ग. कल्याणकारी लोगोंकी संगति (कल्याण-मित्तता)
घ. आयसे कम खर्च करना (समंजीविका)

लोक-सेवा एवं समाज-संगठनके अनेकानेक उदाहरण बौद्ध ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। हानिकर स्वभाव एवं चर्य्यावाली स्त्री अथवा पुरुष परिवारका प्रधान न हो। इस प्रकारके प्रसंगोंका उल्लेख अंगुत्तर निकायके "चतुक्क-निपात'में मिलता है।

(२) बुद्धकी सौजन्य-कुशलता

एक वार लिच्छवी-लोग अपने संस्थागारमें बैठकर युद्धकी प्रशंसामें संलग्न थे। इस बैठकमें लिच्छवी सेनापति सिंह भी उपस्थित थे। सेनापति सिंह महावीर के भक्त थे किन्तु अपने बन्धुबान्धवोंके मुखसे बुद्धकी प्रशंसा सुनकर उन्हें एक वार बुद्धको देखनेकी इच्छा हुई। अतः महावीर से अनुमति लेना आवश्यक समझ, सिंह महावीरके पास गये और उनसे आज्ञा मांगी। महावीरने कहा—"सिंह तुम तो क्रिया-वादी हो, फिर अक्रियावादी गौतमसे मिलने क्यों जाओगे?" अन्त में एक दिन सिंह बुद्धसे भेंट करनेके लिये वैशालीसे चल दिये। विरोधी सम्प्रदायभुक्त सिंहको बुद्धने अपने सुकौशलसे वशमें किया। यथोचित अभिवादन करते हुए सिंह ने बुद्धसे कहा—"भदन्त, सुनते हैं कि लोग कहते हैं कि श्रमण गौतम अक्रियावादी हैं और शिष्यको भी ऐसा ही उपदेश देते हैं।" उत्तर देते हुये बुद्धने सिंहसे कहा—"मेरे विषयमें बहुत कुछ कहा जाता है। कोई मुझे क्रियावादी, अक्रियावादी, जगुप्सु, अउच्छदवादी, वैनायिक, तपस्वी इत्यादि कहा करते हैं" "असाधु कार्य करनेकी शिक्षा जब मैं नहीं देता, उस सर्थमें मुझे अक्रियावादी कहा जाता है; साधु कार्य करनेकी शिक्षा देने पर मुझे क्रियावादी कहा जाता है। क्रोध, मोह एवं द्वेषके उच्छेदके लिये जब शिक्षा दी जाती है, तब मुझे उच्छेदवादी कहा जाता है। एवं प्रका-रेण मेरे लिये उपरोक्त विशेषणोंका व्यवहार होता है।" सिंहने कहा—"भदन्त, आपके प्रवचनसे मेरे मनका अंधकार दूर हो गया और मेरी अन्तरात्मा आलोकमय हो गई"। सिंह स्वयं ही शिक्षित

चिन्ताशील एवं बुद्धिमान व्यक्ति थे। बुद्धने सिंहको तर्क अथवा विवादके द्वारा नहीं वरन उसके अन्दर उसकी पवित्र श्रद्धाको जगाकर ही उसे अपने वशमें किया था। सिंहने भी बुद्धकी शरण ली। बुद्धने सिंहसे कहा—"सिंह, निग्रन्थोंको तुम्हारे यहाँसे सदा अन्नजल मिलता रहा है। भविष्यमें भी भिक्षा दान करना तुम अपना कर्त्तव्य समझना"। इसपर सिंहने कहा—"समयानुसार उचित कर्त्तव्य किया जायगा"१।

इसके बाद बुद्धने सिंहको धर्मोपदेश दिया। विदा होनेके समय सिंहने बुद्धको भोजनके लिये निमन्त्रण किया। इस निमंत्रणको लेकर निग्रन्थोंने वैशालीमें एक महाकाण्ड खड़ा किया था। सिंह-सम्बन्धी उपरोक्त विवरणोंसे यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि बुद्ध अपनी सौजन्य-कुशलतासे ही ज्यादातर मनुष्योंको अभिभूत करते थे। वे सहनशीलताके अवतार थे और हम देखते हैं कि निग्रन्थोंसे भी उन्हें शत्रुता नहीं थी। वे किसीको कष्ट पहुँचाना नहीं चाहते थे। उनके सौजन्यकी कहानियां बौद्ध साहित्यमें अनेक हैं।

बुद्ध एकबार कुशीनारा गये थे। कुशीनगरके मल्लोंने अपने बीच यह निश्चय किया कि बुद्धकी अभ्यर्थना की जाय। यह निश्चित हुआ कि जो उनकी अभ्यर्थना करने नहीं जायगा उन्हें पाँच सौ कार्षापण दण्ड देना पड़ेगा। इस प्रकार मल्ल-लोग एक साथ होकर बुद्धके यहाँ गये और उसी समय रोज नामक एक मल्लसे आनन्दका साक्षात्कार हुआ। रोज आनन्दके समीप खड़ा हुआ और आनन्दने उससे कहा कि भगवान बुद्धकी अभ्यर्थना करके तुमने बहुत अच्छा काम किया है।

१—महावग्ग ६।३१

इसपर रोजने उत्तर दिया—"इसका अर्थ यह नहीं कि मैं बुद्ध अथवा उनके धर्मका भक्त हूं। मैंने तो ऐसा इस डरसे किया है कि मुझे पाँच सौ कार्षापन दण्ड न देना पड़े। आनन्द को यह सुनकर बहुत दुःख हुआ और कुछ दिन बाद, आनन्द ने बुद्धसे कहा—"रोज एक विख्यात एवं विशिष्ट व्यक्ति है। यदि ऐसे व्यक्तिको धर्मका अनुरागी बनाया जाय तो बहुत अच्छा होगा। भगवन्, आप ऐसा करें जिससे कि वह धर्मानुरागी हो सके"। बड़ी सौजन्यताके साथ बुद्धने रोजको आदर किया और ऐसा व्यवहार देखकर वह और भी मुग्ध हो गया। अन्तमें वह भी बुद्धका भक्त हो गया २।

(३) बुद्ध और महावीर

बुद्ध और महावीर सम-सामयिक थे। आयुमें महावीर बुद्धसे दश वर्ष बड़े थे और बुद्धके उदयके पूर्व प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उनकी मृत्युभी बुद्धसे पहले हुई थी। राजगृह, नालन्दा वैशाली, श्रावस्ती इत्यादि स्थानोंमें महावीर भी प्रचार कर चुके थे। ईसा पूर्व षष्ठ शताब्दी मेंजितने धर्म प्रचारित हुये थे, उनमें बौद्ध-धर्म एवं जैन-धर्म ही जनतामें सर्व-प्रिय हो सका था। यों तो धर्म एवं विभिन्न सम्प्रदायके सन्यासियों की भी कमी नहीं थी ३। बुद्ध और महावीरके बीच

२—वहीं—६।३६

३—दीघानिकाय—१ (ब्रह्मजाल-सुत्त)। इसके अनुसार करीब ६२ विभिन्न सम्प्रदाय थे जिसकी कटु आलोचना बुद्धने की थी। जैन ग्रन्थोंमें इस प्रकारके सम्प्रदाओंकी संख्या ३६३ है। सभोंको ब्राह्मण और श्रमण वर्गमें विभक्त किया गया था। ब्राह्मण कहलाने वाले निम्नलिखित सम्प्रदायके थे—तित्थिय, आजीविक, निगण्ठ, मुंडशावक, जटीलक, परिव्रा-

साक्षात कभी नहीं हुआ यद्यपि उन दोनोंके शिष्यको बराबर भेंट हुआ करती थी। एक बार बुद्ध और महावीर दोनों नालन्दा-ग्राम में उपस्थित थे और वहीं पर महावीरका शिष्य जैन-धर्म त्याग कर बुद्ध-संघमें सम्मिलित हो गया। इसपर महावीरने अपने दल बलके साथ उपालिके घर पर जाकर उसे दुतकारा था। इस प्रकार अब वैशालीके सेनापति सिंहने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया था तब जैन शिष्योंने वैसा ही किया था। कितनी ऐसी परिस्थियोंमें भी बुद्ध और महावीरमें साक्षातकार नहीं हुआ। उस युगमें प्रत्येक गुरुजन अपने पीछे शिष्योंका झुण्ड बनाना चाहते थे। इसलिये गुरुजनोंके बीच इस प्रश्न पर बराबर संघर्ष हुआ करता था और जैन शास्त्रसे यह पता चलता है कि गोस्साल और महावीरके बीच एकबार इस प्रकारका संघर्ष हुआ था। किन्तु बुद्ध अथवा उनके अनुयायियोंमें ऐसी सकीर्णता नहीं थी। बिम्बिसारका पुत्र अभय राजगृहमें जैनोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखता था। महावीरने एकबार कुमार अभयको यह सिखाया कि यदि वह यश प्राप्त करना चाहता था तो बुद्धको ठगनेकी कोशिश करे। महावीर ने कहा—श्रमण गौतमसे जाकर यह पूछो कि वे दूसरोंके विरुद्ध अप्रिय शब्द का व्यवहार करते हैं अथवा नहीं। यदि वे 'हाँ' कह दें तब उनसे यह पूछो कि वे साधारण मनुष्यसे कैसे ऊपर हैं क्योंकि साधारण मनुष्य भी तो दूसरोंके विरुद्ध

जक, मागन्दिक, तेदन्डिक, एक सातक, (संयुक्त निकाय १ ७७७), अभिरुद्धक, गौतमक (दूसरे गौतम् द्वारा संस्थापित), देवम्मिक, चरक, अछेलक (I R A 5--1898-P. 197 और सुत्त निपात।

अप्रिय शब्दका व्यवहार करता है। यदि वे 'नहीं' कह दें तब उनसे यह पूछो कि उन्होंने देवदत्तको "आपायिक देवदत्त" क्यों कहा था। इससे वे घबड़ा जायेंगे।"

इस उद्देश्यसे अभय बुद्धके पास गया। उसने बुद्धको भोजन के लिये निमंत्रित किया। बुद्धके आने पर अभय ने वही प्रश्न किया। बुद्धने कहा कि वे ऐसा नहीं कहते कि वे अप्रिय शब्द का व्यवहार नहीं करते। इस पर अभयने कहा कि निर्ग्रन्थोंने ऐसा सुना है। इस प्रकार प्रश्न करनेका उद्देश्य पूछने पर अभयने निर्ग्रन्थोंका सारा पोल खोल दिया। उसी समय अभय की गोदमें एक शिशु बैठा हुआ था। बुद्धने पूछा—"अभय, अभी यदि इस शिशुके कण्ठमें लकड़ी चला जाय तब तुम क्या करोगे?" अभयने उत्तर दिया—"भदन्त, मैं शीघ्र ही उसे बाहर निकालनेकी कोशिश करूँगा, कारण इसके प्रति मेरा स्नेह है"। बुद्धने कहा इसी सत्यका अनुशरण सब करते हैं। किसके समक्ष क्या बोलना उपयुक्त होगा यह तथागत जानते हैं। श्रीदत्त नामक बुद्ध-भक्त एवं ग्रहदत्त नामक निर्ग्रन्थ-भक्तमें गाढ़ी मित्रता थी। उन दोनोंमें उसी प्रकार तर्क-वितर्क होता था।

बुद्ध और महावीरके धर्मोंमें काफी समनता और विषमतायें हैं। दोनों ब्राह्मण-धर्मके विरोधी एवं अहिंसाके समर्थक हैं। दोनोंने वेदोंकी प्रामाणिकताका विरोध किया और साथ ही यज्ञ-परक कर्मकाण्डोंका भी। ईश्वर पर विचार करना दोनोंने व्यर्थ समझा। जन्मके कारण व्यक्तिकी विशेषता माननेसे उन्होंने इन्कार किया और अपने संघोंमें विभिन्न वर्णावलम्बियोंको स्थान दिया। दोनोंने भावी जन्मोंका आधार कर्मोंको माना। जन-विश्वासोंको दोनोंने कायम रखा। बौद्धोंने अनात्मवाद प्रचार किया परन्तु जैनोंका विश्वास है कि प्रत्येक वस्तुमें जीव

है। बुद्धने मध्यम-मार्गका अवलम्बन किया परन्तु जैनोंने कायिक तपकी अमित मर्यादा की। अहिंसामें जैनोंकी श्रद्धा अधिक है। निर्वाण और मोक्ष-सम्बन्धी विचार भी उनके असमान हैं। जैन-धर्मके ग्रंथ अधिकतर संस्कृत या प्राकृतमें लिखे गये और बौद्ध-धर्मके अधिकतर पालीमें।

(४) बुद्ध और वैशाली

वैशालीकी प्राचीन कथा बौद्ध-ग्रन्थोंमें मिलती है। तिब्बती "विनय-ग्रन्थ"में इस नगरका वर्णन निम्न-लिखित है "वैशाली तीन महल्लोंमें विभक्त था। पहले महल्लेमें सात हजार मकान थे जिनकी गुम्बजें सोनेसे ढकी हुई थीं। बीचके महल्वेमें चौदह हजार मकान थे; जिनकी गुम्बजें चाँदीसे मँढ़ी हुई थी आखिरी महल्लेमें इक्कीस हजार मकान थे, जिनकी गुम्बजें ताँवेसे मँढ़ी हुई थी। इनमें ऊच्च, मध्य और निम्न वर्गों के नागरिक अपनी श्रेणीके अनुसार निवास करते थे।" महावग्ग" में राजगृहके व्यापारीके वैशालीकी कहानी है। वहाँ एक मंगल पुष्पकरिणी पोखरा था जिसके जलसे राजाओं का 'अभिषेक पर्व' सम्पूर्ण होता था। श्रावस्तीके सेनापति बन्धुलकी स्त्री मल्लिकाने अपनी गर्भावस्थामें यह इच्छा प्रकट की कि मैं वैशाली नगरकी अभिषेक-मंगल पुष्करिणीमें स्नान

और ये लोग ६ प्रसिद्ध गुरुओंको भी गिनते थे। थे ६ तिथ्थकर (सिद्धान्त प्रतिपादन करनेवाले] कहलाते थे, और बुद्धके समसामयिक थे। इन ६ प्रसिद्ध शिक्षकोंके नाम ये हैं—पुराणकस्सप, मक्खलि गोसाल [आजीविक सम्प्रदायके संस्थापक, अजीत, पकुध कच्छायन, संजय और निग्गन्ध नातपुत्र। इसके अतिरिक्त और भी कितने गुरुजन थे यथा—बावरी, सेल, चंकिन, तारुख, पोखरसाती, जानुस्सोनी,

कर उसका, जल पान करूँगी१। बन्धुल वहाँ पहुँचा और सिपाहियोंको हराकर अपनी स्त्रीके साथ पोखरमें स्नान किया और जी भर जल पीकर लौट गया। इसके अतिरिक्त वहाँ अगणित चैत्य गृह अथवा पूजास्थान थे यथा—उदेन चैत्य, गोतमक चैत्य, सतम्बक चैत्य, बहुपुत्तक चैत्य, सारन्दद चैत्य, चापाल चैत्य, कपिनह्य चैत्य, मर्कह्द तीर चैत्य, और मुकुट-बन्धन चैत्य। एक दिन बुद्धने चापाल चैत्यमें बैठकर आनन्दसे कहा था—"कितनी रमणीयहैं आनन्द! यह वैशाली। कितने सुन्दर और मनको हरनेवाले हैं, ये चैत्य। जबतक वज्जी अपनी भक्ति एवं अटूट, श्रद्धा रखकर इन चैत्योंकी पूजा अर्चना पर कायम रहेंगे, तबतक उनकी प्रगति होगी, हानि नहीं२।

लोदेय इत्यादि। ये लोग भौतिकवादी और अज्ञेयवादी थे और इन्हें लोग वादशील, लोकायात, वैतण्डिक, तेविज्ज इत्यादि नामों से सम्बोधित करते थे। श्रमण कहलानेवाले लोग निम्नलिखित थे—मग्ग-जीन, मग्गनदेशीन, और मग्ग देशीन और बादमें मतभेद होने के कारण इनमें विभिन्न सम्प्रदाय होगये और इसकी संख्या ६३ तक पहुँच गई। बुद्धके समयमें इन लोगोंको तित्थी कहा जाता था।

१—जातक, ४, पृष्ठ १४८—

वेशालीनगरे गणराज़ कुलानाम् मंगल पोक्खरणम्।
ओतरित्वा नहाता पानीयम् पाउकम् अहिस्सामीति।

२—'एक' 'भिक्खु' हं ब्राह्मण समयं वेशालियं विहरामि सानन्दे चेतिये। तत्राहं वज्जीनं इमे सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेसिं यावकीवञ्च ब्राह्मण इमं मत अपरिहाणाया धम्मावज्जीसु ठस्सन्ति इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसुवज्जी सन्दिस्सन्ति, बुद्धि येव ब्राह्मण वज्जीनं पाटिकंखा तोपरिहानि'तं। म।परिनिब्बानसुत्तम, दीध्यानिकाय १ [भाग ७]

हम पहले कह चुके हैं कि वैशालीका सेनापति सिंह बुद्धका भक्त हो गया था। वैशालीके उत्तर में "शालवन' या "महावन" नामक एक आश्रम था। उस आश्रमके अधिपति गोशृङ्गीने बुद्धको उसका दान किया था। इसी आश्रममें 'कूटाग्रशाला' बनी थी। उसी प्रकार अम्बपालीने आम्र-कानन भेंट किया। 'चुल्लवग्ग' में जिस भद्र महाकश्यप का नाम है वह भी वैशालीका ही था। बुद्धके जीवनकी बहुत सी विशिष्ट घटनायें वैशालीमें घटी थीं। सम्बोधिलाभके तीन वर्ष बाद जब बुद्ध राजगृहमें वर्षावास कर रहे थे, उस समय वैशाली नगरमें महामारी का प्रकोप हुआ। उस समय तोमरदेव लिच्छवीके सभापति और महोत्तरक थे। उसने बुद्धदेवके पास एक दूत भेजा। राजा बिम्बिसारकी अनुमति लेकर बुद्ध वैशाली गये। बुद्ध के इस दलका विशद वर्णन "महावस्तु" में है१। बुद्धके पदार्पण करते ही महामारी शान्त हो गई। बुद्धने रत्तन-सुत्तका मुक्त-कंठसे उच्चारण किया। वैशाली नगरमें दूसरी महत्वपूर्ण घटना थी स्त्रियोंको संघमें प्रवेश करनेकी अनुमति और भिक्षुणी-संघ

१— "संत्यत्र लिच्छवयः पीताश्वा पीतरथा पीतरश्मि-प्रत्योद-यष्टि।
(पीले घोड़े वाला, पीले रथ—पीली राश—पीली चाबुक)
पीतवस्त्रा, पीतालंकारा, पीतोष्णीशा, पीतछत्राः, पीतखड्ग-मुनिपादुकाः" (कपड़े, गहने, पगड़ी, छत्रआदि सब पीला ४।)
—पीताश्वा। पीतरथा, पीतरश्मि, प्रत्योदमुष्णीशा।
पीता च पंचककुदा पीता वस्त्रा अलंकारा
—नीलश्वा, नीलरथा नीलरश्मि प्रत्योदमुष्णीशा। (नीले घोड़ेवाला ·······सब नीला ही नीला)
नीला च मंचककुदा नीलावस्त्रा अलंकाराः

की स्थापना। वैशालीसे अन्तिमबार चलनेके समय उन्होंने कहा था—"आनन्द, मेरा यह अन्तिम वैशाली दर्शन है।" जिस स्थान पर खड़े होकर बुद्धने वैशालीका अन्तिम दर्शन किया था, वहाँ एक स्तूपका निर्माण करके उस स्थानको चिरस्मरणीय बनाया गया। ह्वेनसंगने उस स्तूपको देखा था। कुशीनारा प्रस्थानके पूर्व बुद्धने लिच्छविओंको पिण्ड-पात्र दान किया और चिरस्मरणीय बनानेके लिये उनलोगोंने एक लिखित शिला स्तम्भ स्थापित किया। फाहियानने उस स्मृतिस्तम्भको देखा था। उनके भस्मको लाकर भी वैशाली में शरीर-स्तूपका निर्माण किया गया था। आनन्दका भी शरीर-स्तूप वैशालीमें बना।

दीघ्घनिकायके अट्ठ-कथामें एक कहानी है—"एक नदीके घाटके पास अजातशत्रुका आधा योजन राज्य था और आधा योजन लिच्छवियों का। वहाँ पर्वतके नीचे बहुमूल्य सुगंधि माल उतरता था। अजातशत्रु उधेर बुन में ही रहता था तब तक लिच्छवी कर वसूल लेते थे और अजातशत्रु यह सुनकर कुपित हो जाता। उसने सोचा, किसी बुद्धिमानसे मंत्रणा करना अच्छा होगा और इसलिये अपने ब्राह्मण महामात्य वर्षकारको बुद्धके पास भेजा २।" वज्जियोंको हरानेका उपाय जाननेके लिये ही अजातशत्रुने वर्षकारको बुद्धके पास भेजा था। उस-गण संस्थाके प्रति बुद्धको अगाध प्रेम था और उन्होंने उनकी परिषदको त्रयस्त्रिंशकी परिषद कही थी। वर्षकारको सीधे उत्तर न देकर उन्होंने आनन्दसे कहा—

२—दीध्घनिकाय (महापरिनि र्वेणसुत्त) अट्ठ-कथा।

३—महा—पृष्ट १३७

"आनन्द! सुना है न कि वज्जी बराबर सभा करके, अपना काम करते हैं?"

"सुना है भगवन्!

"आनन्द, जबतक वज्जी बार-बार सभा करके काम करेंगे, तबतक वज्जियोंकी उन्नति होगी हानि नहीं"

इस प्रसंग में बुद्धके कथनका सार निम्नलिखित है—

१. जबतक बज्जी अपनी परिषदकी बैठक पूर्ण रूपेण और बार-बार करते हैं—

२. जबतक वज्जी मिलकर बैठते-उठते और राष्ट्रीय कार्योंको मिलकर करते हैं—

३. जबतक वे उचित विधि के बिना कोई कानून नहीं जारी करते, विधिपूर्वक बनाये कानूनका उल्लंघन कर कोई कार्य नहीं करते और विधिपूर्वक बने कानूनसे स्थापित प्राचीन संस्थाओंके अनुकूल आचरण करते हैं।

४. जबतक वे अपने बृद्धों और गुरुओंका सम्मान करते और उनकी सुनने लायक बातोंको सुनते-मानते और तदनुकूल आचरण करते हैं;

५. जबतक वे अपनी कुल-स्त्रियों और कुमारियों पर जोर-जबरदस्ती कर उन्हें नहीं रोकते या उनपर अत्याचार नहीं करते;

६. जबतक वे अपने चैत्योंका आदर सत्कार और मान करते और उनको पहलेसे दी गई धर्मानुकूल बलिका अपहरण नहीं करते, उसे नहीं छुड़ाते और,

७. जबतक वे अपने अर्हतोंकी शरण, रक्षा और पोषणका उचित प्रबन्ध करते हैं, तबतक उनकी बृद्धि ही समझनी चाहिये। उपरोक्त उपदेशोंको "अपरिहानिया धम्म"

कहा गया। इतना ही नहीं, बादमें भी वैशाली बौद्धोंका पवित्र स्थान बना रहा और यहाँ पर बौद्धोंकी द्वितीय संगीति हुई थी, जिसका विशद् विश्लेषण आगे होगा।

(५) बुद्ध और राजन्य वर्ग

मगधराज बिन्बिसार और बुद्धके बीच घनिष्ठसम्बन्ध था। बिम्बिसार बुद्धके प्रति बहुत आसक्त था। उसका पुत्र अजातशत्रु 'कुनिक' नामसे भी प्रसिद्ध है। बुद्धके साथ उसका सम्बन्ध कैसा था यह प्रत्यक्ष रूपसे नहीं कहा जा सकता है, कारण उसके विषयमें बहुत सी भ्रान्तियाँ है। बुद्ध-द्वेषी उसे कहा जाय, अथवा नहीं, इस पर भी कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता है। बुद्धसे अलग होने पर देवदत्तको अजातशत्रु ने ही शरण दी थी। जैनशास्त्रमें अजातशत्रुको महावीरका भक्त कहा गया है। इतना निश्चित है कि समसामयिक राजन्यवर्ग बुद्धका समादर करते थे। इस सम्बन्धमें दो एक कथा नीचे उद्धृत की जाती है—कोशलराज प्रसेनजितने एकबार बुद्धको भोजनके लिये राजभवनमे निमन्त्रित किया। धीरे-धीरे उसके व्यवहारसे अप्रसन्न हो भिक्षुगण एक-करके हट गये। जब प्रसेनजितने बुद्धका ध्यान इस ओर आकर्षित किया तब बुद्धने कहा कि यदि निमन्त्रणकर्त्ता श्रद्धावान एवं धर्म्मजिज्ञासु नहीं हो तब भिक्षुगणके लिये यह उचित है कि वैसे व्यक्तिका गृह-त्याग करे। बिम्बिसारने प्रसेनजितकी बहन कोशल देवीके साथ विवाह किया था और काशी बिम्बिसारको दानके रूपमें मिला। बिम्बिसारकी मृत्युके बाद कोशल देवी भी मर गई और प्रसेनजितने पुनः काशी अपने कब्जेमें कर लिया। इसको लेकर मगध और कोशल राज्यके बीच युद्ध हुआ और अजातशत्रुने प्रसेनजितको पराजित किया। इस

वृतान्तको सुननेके बाद बुद्धने कहा—जयलाभसे अहंकार, पराजयसे दुखका जन्म होता है और जो इन दोनोंको त्याग करता है वही सुखी होता है"। कथित है कि अपने प्रधान सेनापति बन्धुलकी प्रतिभासे आतंकित होकर प्रसेनजितने उसे मरवा डाला। बन्धुलका भाँजा सेनापतिके पदपर नियुक्त किया गया। एकबार उसको (बन्धुलका भाँजा दीर्घकरायण] लेकर प्रसेनजित शाक्य ग्राम गया था। जब प्रसेनजित बुद्ध से वार्तालाप करनेमें व्यस्त था तब दीर्घकारायणने श्रावस्ती लौट कर उसके (प्रसेनजित) पुत्रको गद्दी पर बिठा दिया। ऐसी परिस्थिति देखकर प्रसेनजित अजातशत्रुसे सहायता माँगने राजगृहकी ओर चला किन्तु रास्तेमें ही वह परलोक सिधार गया। राजा होनेपर विडुडभने शाक्य-रक्तसे पीढ़ी धोनेकी प्रतिज्ञा की। उसके इस प्रयासको बुद्धने तीन बार रोका किन्तु चौथी बार उसने शाक्योंको परास्त किया ही। उसने शाक्यके बहुतसे लोगोंको नदीमें डुबाकर मार दिया।

राजाओं से भी बुद्ध उचित अनुचित सुना दिया करते थे। राजाओं से भी उन्हें विशेष आव-भाव नहीं रहता था। राजा प्रसेनाजित बहुत ज्यादा भोजन प्रेमी था अतः भोजन के बाद उसे आराम की आवश्यकता होती थी। एक बार बुद्धने उससे कहा था—"अतिभोजन से कुफल होता है। मिताचारी भोजन से प्राण-रक्षा होती है" इस उपदेशके पालनसे प्रसेनजितका स्वास्थ्य अच्छा हो गया था। तब बुद्ध ने कहा था—"स्वास्थ्य ही सर्वोत्तम सुख है"। इस प्रकार बुद्ध से राजन्य-वर्ग अनेकानेक अनुरोध करते थे। अनुगत व्यक्तियों के अनुरोधका प्रत्याख्यान बुद्ध नहीं करते और यही कारण था कि छोटे-मोटे उन्हें समय-समय पर व्यक्तिक्रम करना पड़ा था।

बिम्बिसारके अनुरोधको मानते हुए एकबार उन्होंने कहा था—"राजाका आदेश पालन करना उचित है।" वे कभी भी किसी व्यक्ति-विशेषको अपने व्यवहार अथवा अपनी वाणीसे कष्ट पहुंचाना नहीं चाहते थे। सर्वथा सत्य एवं सदाचारके आधार पर ही वे चलते थे और यही कारण है कि उनके समसामयिक राजन्यवर्ग अन्य गुरुजनोंकी अपेक्षा बुद्धका ज्यादा समादर करते थे। अजातशत्रुको वैशाली पर आक्रमण करते समय जब यह इच्छा हुई कि किसी योग्य व्यक्तिसे मंत्रणा ली जाय तब उसने भी अपने महामात्य वर्षकारको बुद्धके पास भेजा था। राजा एवं रंक सभी एक ही प्रकारसे बुद्धके समक्ष उपदेशके लिये आते थे और सभीको उचित ही कहते थे। राज्यसे इतना परिचित रहने पर भी उन्होंने कभी अन्याय अथवा अनियंत्रित शासनका समर्थन नहीं किया वरन् उन्ही राजाओंके बीच एक नवीन आदर्श पेश किया।

(६) बौद्धधर्मका प्रसार और इतिहास

उत्तरी भारतमें इसका काफी प्रचार बुद्धके जीवनमें ही हो चुका था किन्तु आगे चलकर यह एक विश्वधर्मके रूपमें प्रतिष्ठित हो गया। यहाँ उसका संक्षिप्त इतिहास दिया जाता है। बुद्धके कुछ ही दिन बाद भिक्षुओंने बुद्ध-वाणीको संग्रह करने और उसे संकलित करनेकी व्यवस्थाकी। उनकी मृत्युके बाद संघमें धर्म और विनयके प्रश्नोंपर मतभेद प्रारम्भ हो चुका था और यही कारण था कि बुद्ध-वाणी संग्रह करनेका प्रयोजन हो गया था। महाकाश्यपके कथनसे तो ऐसा ही मालूम पड़ता है कि बुद्धके दो प्रमुख

शिष्य सारिपुत्त और मोग्गलानका देहावसान हो चुका था१। एक स्थायी नियम बनानेके लिये स्थविर महाकाश्यपके नेतृत्वमें पाँच सौ भिक्षु-गण इस कामके लिये निर्वाचित हुये। सर्व-प्रथम आनन्द निर्वाचित नहीं हुआ किन्तु वह बुद्धके समीप बराबर रहता था इसलिये उसे बादमें निर्वाचित किया गया। राजगृहमें उन्होंने धर्म और विनय सम्बन्धी नियमोंके संग्रह करनेका निश्चय किया। प्रथम बौद्ध-संगीतिकी बैठक राजगृहमें सप्तपर्णी-गुहामें हुई। संगीतिका कार्य-क्रम नियमानुसार आरम्भ हुआ। संगीतिकी अनुमतिसे महाकश्यपने भिक्षु उपालिसे विनय-सम्बन्धी नियमोंपर प्रश्न कना आरम्भ किया। उसके उत्तरमें उपालिने बुद्धका विचार संसद (संगीति) के समक्ष उपस्थित किया। इसी प्रकार महाकश्यपने आनन्दसे धर्म-सम्बन्धी नियमोंपर प्रश्न किया और उसके उत्तरमें आनन्दने बुद्धका विचार उपस्थित किया। इसके बाद आनन्दने यह भी बतलाया कि बुद्धने कहा था कि उनके मरनेके बाद संघ चाहे तो थोड़े-बहुत नियमोंका प्रत्याहार कर सकता था। इस-पर प्रश्न हुआ और आनन्दने जो उत्तर दिया उससे भिक्षुओंके बीच मतभेद बढ़ने लगा। आनन्दपर तरह-तरहकी टीका-टिप-णियां होने लगीं और इसके लिये आनन्दने अपने आपको दोषी ठहराया। इसी संगीतिमें धर्म और विनय पिटकोंका निर्माण हुआ। महाकश्यपक ही इस संगीतिके अध्यक्ष थे। इस संगीतिमें जो व्यवस्था हुई इसे सभी भिक्षुओंने स्वीकार नहीं किया क्योंकि हम देखते हैं कि दक्षिणागिरीसे आये भिक्षु

१ साँचीमें इन दो प्रधान शिष्योंकी शरीर-अस्थियां सुन्दर स्तूपोंमें रखी गई थीं।

पुराणको जब स्थविरोंने नियम-पालनेके सम्बन्धमें कहा तब उसने यही उत्तर दिया कि उसने जो कुछ भी बुद्धसे सीखा था उसीको स्वतन्त्र रूपसे मानेगा।

बुद्धके मरनेके एक सौ वर्ष बाद द्वितीय बौद्ध-संगीतिकी बैठक वैशालीमें हुई थी। इस संगीतिको बुलानेका विशेष उद्देश्य था उन नियमोंपर विचार-विमर्श करना जो वैशालीके भिक्षुओंने अपना लिया था। इस संगीतिमें भागलेनेके लिये सभी स्थानोंसे भिक्षुगण आये थे। उस समय कालाशोक मगधका राजा था। वज्जीवंशीय भिक्षुओंने अशास्त्रीय नियमोंका प्रचलन किया था[२]—जैसे—

(क) भिक्षु लोग निमंत्रणमें जानेके समय सींगके अन्दर नमक रखकर ले जा सकते हैं अथवा नहीं।

(ख) मध्याह्नके दो घड़ी बाद भिक्षुगण भोजन कर सकते हैं अथवा नहीं।

(ग) भोजनके बाद गाँवमें जानेपर यदि वहाँ भोजन करने का निमंत्रण मिले, तो फिर खा सकते हैं या नहीं।

(घ) बिना झालरका आसन और दरी व्यवहार कर सकते हैं अथवा नहीं।

(ङ) सोना-चाँदी दानके रूपमें ले सकते हैं अथवा नहीं। इस संगीतिमें सात सौ भिक्षु सम्मिलित हुये थे और इसके अतिरिक्त बहुतसे गण्यमान्य भिक्षु और स्थविर भी थे। उनमें प्रधान थे स्थविर रेवत, स्थविर सम्भूत और स्थविर यश। सब लोगोंने बहुत विचार करके इन दश विधियोंके विरूद्ध अपनी

---

२ इन्होंने दस विधियोंका प्रचलन किया।

राय दी। वैशाली के भक्षुओं की यह नई विधि हुई। भिक्षुओंके बीच मतभेद हुआ। जो पुराने विनय नियमोंके समर्थक थे स्थविर कहलाये और परिवर्तनकारी भिक्षुगण महासंघिकके नामसे प्रसिद्ध हुए। यहाँ पर थेरवाद और महासघिक सम्प्रदायपर विचार कर लेना आवश्यक है। हम पहले महासांघिक सम्प्रदायपर विचार करेंगे।

आपसी मतभेद का वर्णण हमें बौद्ध साहित्य में मिलता है[१]। वज्जीवंशीय भिक्षुओं ने जब विनय नियमों को परित्याग किया और एक नवीन सम्प्रदाय बनाया तब वे लोग महासंधिक के नामसे प्रसिद्ध हुये। पोग्गलीपुत्त तिस्स और वशुमित्र के लेखों से यह प्रतीत होता है कि इस सम्प्रदाय के कई स्वतन्त्र नियम थे जिसका अन्य नियमों से कोई सम्बन्ध नहीं था। थेरवादी इनके दश नियमों २ को प्राचीन नियमों के विरुद्ध मानते थे। भव्य, वशुमित्र, विनीत देव और

१ महावंश—अध्याय ४ दीपवंश अध्याय चार विनय; Rockhill. "Life of Buddha—P. 173.

२ [क] सिंगीलोन कप्पो—Carring salt in a horn.

[ख] द्वंगुल कप्पो—Taking food after midday.

[ग] गामान्तर कप्पो—going to neighbouring village—

[घ] आवासकप्पो— Observance of Uposatha on differents dayr—(महावस्तु २, ८, ३)

— ङ अनुमति कप्पो—Obtaining sanctions afterward—[महावस्तु ६, ३ । ५]

तारानाथ निम्नलिखित बातों कोही महासंधिक सम्प्रदाय की उत्पत्ति का कारण मानते हैं—

[क] आर्हत अचेतन अवस्था में पाप कर सकता है—

[ख] कोई आर्हत होने पर समझ नहीं सकता है—

[ग] उपदेश पर किसी आर्हत को सन्देह हो सकता है—

[घ] बिना गुरू के कोई आर्हत्व प्राप्त नहीं कर सकता—

[ङ] पूर्णता लाभ के लिये ध्यान और चित्कार होता है—

इस सम्प्रदाय के भिक्षु थोड़ी बहुत स्वतंत्रता चाहते थे और इसलिये नियम में भी परिवर्तन करना चाहते थे। वे लोग संघ के कट्टर विचार के विरोधी थे और आर्हतों में जो घमण्ड की भावना आ गई थी उसे खत्म करना चाहते थे। आर्हतों के अधिकार अनियमित रूप से बढ़ रहे थे अतः महासंघिकों ने सोचा कि यदि उनके अधिकार इस प्रकार

[च] आसीन कप्पो—Use of precedents as authority

[छ] अमथित कप्पो—Drinking of milk afer meal

[ज] जलोगिम पातुम—Drinking of fermenting palm Juice—

[झ] अदसकम निसिदनम—Usc of a borderless sheet—

[ञ] जातरुपरजतम Aeccptance of gold and silver.

२ Pof. Poussfr—"Several traditoins indicate that there was a Council conlersiding the five points, and that this controvecry was tle origine of the Mahasanghik sect." [J. R. A. S. 1910, P. 414]

बढ़ेंगे तो पुनः उनलोगों में ब्राह्मण वाले दुर्गुण आयंगे और संघ की गणतान्त्रिक विचारधारा चकनाचूर हो जायगी। उनलोगों ने अपने तरीके से पुनः धर्म और विनय का संग्रह किया और उसका अलग संकलन हुआ जो प्रथम संगीति के थेरवादियो से विभिन्न था। उनलोगोंने अपने लिये नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और ग्रथों में भी परिवर्तन किया। उनलोगों ने परिवार, अभिधम्मप्पकरण, प्रतिसम्भिधा, निद्देश और जातकों को अपने संग्रह में सम्मिलित नहीं किया[४]। उनलोगों ने भी अपने ग्रन्थों को सूत्र, विनय अभिधर्म इत्यादि में विभक्त किया। खृष्टाब्द ४१४ में फाहियान पाटलीपुत्र से एक महासांघिक विनय चीन ले गया था[५]। भिक्षुणियों के लिये उनलोगों ने अलग विनय बनाया। कहा जाता है कि ह्यान-च्वांग ने भी दो महासंघिक अभिधर्मों का अध्ययन धनकटक में किया था। शुरू में कालाशोकने महासंघिकों का साथदिया किन्तु बादमें उसे इसके लिये पश्चाताप हुआ। चीनी यात्री इत्सींग के समय में मगध महासंघिकों का केन्द्र था। लोकोत्तरवाद और चैत्यवाद महासंघिक सम्प्रदायकी शाखायें थी। तृतीय बौद्ध-संगीति पर प्रकाश डालनेके पूर्व हम थेरवाद और सर्वास्ति वादपर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

---

४ दीपवंश—५।३२—३८ Pfys Darrds—Hibbert Lectnrs P. 42

६ Takakusee -Record of the Buddhist Religion P. 10.

थेरवादियों को ही विभज्जीवादी कहा गया है। बुद्ध भी अपने को विभज्जीवादिन् कहते थे१। पाली साहित्य थेरवाद सम्प्रदाय का ही—प्रतिनिधित्व करता है। संस्कृतमें निदानका अर्थ होता है आदिकारण या मूल कारण। बौद्ध जब संसारका मूल खोजते हैं तब वे अविद्या, संस्कार-विज्ञान, नाम-रूप, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरा, मरण, षड़ायतन इत्यादिको सांसारिक निदान कहते हैं। जब वे इसका निदान खोजते हैं तब वे बोधिसत्वके पूर्व-जीवनकी ओर जाते हैं। इस बुद्ध-निदानके सम्बन्धमें थेरवादियों और महासंघिकों के बीच मतभेद है। थेरवादी विनय नियम एवं अनुशासनके कठोर समर्थक थे। थेरवादियोंका विश्वास था कि विनय नियमोंकी रक्षासे चरित्र शुद्ध होगा और उसके फलस्वरूप अनेक जन्मके बाद मुक्ति-लाभ करेंगे। ऐसी अवस्थाको वे लोग 'श्रोतापत्ति' कहते थे। ऐसे श्रोतका आविर्भाव होगा, जिसमें वे भस जायेंगे और उन्हें निर्वाण प्राप्त होगा। 'श्रोतापत्तिके बाद 'सकृदागामी' अवस्थाका आविर्भाव होगा और इसके बाद अनागामी अवस्था आयगी तब वे लोग अर्हत होंगे। थेरवादी बुद्धको मनुष्य मानते थे किन्तु महासंघिक नहीं और इसीके आधार पर महासंघिकों के बीच लोकोत्तरवादीका उत्थान हुआ।२

---

१ मज्झिमनिकाय २।९९

२ Mahasanghikas were divided four times into nine schools during the hundred years following the success of the second council. These schools are:—

थेरवादियोंका कथन था कि बुद्धने कभी अपनेको लोकोत्तर नहीं कहा था। महासंघिकोंका प्रभाव बढ़ने से थेरवादियों को भी धक्का लगा और वे लोग कमजोर हो गये। बाद में वे लोग भी कई शाखाओंमें बँट गये।

सभी बौद्ध सम्प्रदायोंमें स्थविरवाद प्राचीन और मौलिक माना गया है। उसके बाद सर्वास्तिवादका ही स्थान आता

Maha Sanghika School—

I Ekavyavaharika
    Lokottariya
    Kaukkutika (Gokulika)

II Bahusrutiya.

III Prajnaptivadins

IV Caityasaila
    Aparsaila
    Uttarasail.

The Sthaviras were divided seven times in ten subsects—

I Sarvastivadins (Hetnbadins)

II Vatsagotriyas from the Sarvastivadin

III Dharmo ttariyas, Sammitiyas, Sannagarikas } from the vatsagotriyas

IV Mahisasakas from the Sarvastivadins

V Dharmaguptikas from the Mahisaskas

VI Kasyapiyas from the Sarvastivadius

VII Santrantikas from the Sarvastivadins

है। अशोक स्थविरवाद और कनिष्क सर्वास्तिवादका समर्थक था। मगध स्थविरोंका केन्द्र था और काश्मीर-सर्वास्तिवादियों का। वसुमित्र भी सर्वास्तिवादी थे। सर्वास्ति वादकी स्थापना अशोकसे पहले हुई थी क्योंकि हम देखते हैं कि मोग्गलीपुत्त तिस्सने अपने कथावत्थुमें इसकी समालोचना की है। तिस्स थेरवादी था। सर्वास्तिवाद भी पाटलीपुत्र से काश्मीर गया था और वहाँ वे लोग आर्य सर्वास्तिवादिनके नाम से प्रसिद्ध हुये। चीनी लेखकोंने सारिपुत्तके शिष्य राहुल को सर्वास्तिवाद सम्प्रदायका संस्थापक माना है१। सर्वास्तिवादियों ने अपना अलग ग्रन्थ संग्रह किया —'विनय-वस्तु' प्रतिमोक्ष-सूत्र, विनय-विभाग, विनयक्षुद्रक-वस्तु, और विनय उत्तर ग्रन्थ। इनलोगोंने अपने वस्त्र इत्यादि पर भी अलग नियम बनाया। बाद में इन्होंने अपनी टीका निकाली। दार्शनिक दृष्टिकोणसे ये सभी सम्प्रदाय बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों पर विचार कर लेनेके बाद हम अब अशोकके धर्मकी विवेचना करते हुए तृतीय और चतुर्थ बौद्ध-संगीतिका विश्लेषण करेंगे।

अशोकके समयमें ही बौद्ध-धर्म विश्वधर्म-के रूपमें परिणत हुआ। विश्व इतिहासमें अशोकका नाम अद्वितीय है। बौद्ध-धर्म चरित्र निर्माणका धर्म है। अशोकने धर्मका समीकरण न्याय के साथ किया और बौद्ध-धर्मको जनसाधारणके स्तर पर

(R. Kimura—"History of Early Buddhist Schools" in 'Orientalia' Pt 3 P. 123-4)

१—Edkins—Handbook of Chinees Buddhism

लाया। "अत्यधिक संख्यामें अत्यधिककी भलाई" का मानव-वादी सिद्धान्त उसके समयमें अधिक विकासशील रहा। वह चाहता था कि प्रत्येक मनुष्य यह देखनेका प्रयास करे कि "पापोन्मुख प्रवृत्तिसे सभी परे हों"। उसके समयमें धर्म नियमोंका संकलन था जो मनुष्योंको उत्तम आदेश देता था। उसके धर्ममें दान, दया, सत्यम् शौचम्, साधुता इत्यादि अनेक आदर्श गुण समाहित थे। उसके समयमें ही पाटलीपुत्रमें तृतीय बौद्ध-संगीतिकी बैठक हुई। प्रसिद्ध विद्वान् भिक्षु मोग्गलिपुत्त तिस्स इस संगीतिके अध्यक्ष थे। इस संगीतिमें धर्म एवं विनय सम्बन्धी व्यवस्था निश्चित हुई। विनय और धम्मपिटकके अतिरिक्त अभिधर्मपिटकका संकलन हुआ इसमें धर्म और विनयके दार्श-निक विचारोंकी व्याख्या संकलित हुई। इसके बादसे ही बुद्धके प्रवचनोंको ही त्रिपिटक कहा जाने लगा विकेन्द्रीकरणकी प्रवृत्तियोंका अन्त किया गया और संघके भीतर किसी भी प्रकारके सम्प्रदायका स्थान नहीं रहा। इस संगीतिके विचार को राज-शासनों द्वारा प्रचारित किया गया १। स्थविरोंके पक्षमें संगीतिने अपना निर्णय दिया।

इस संगीतिके अन्तमें धर्म प्रचारके लिये अनेक बौद्ध भिक्षु भिन्न-भिन्न प्रान्तों सीमान्त-देशोंमें बसनेवाली यवन, कम्बोज, गान्धार, राष्ट्रकपितनीक, भोज, आन्ध्र, पुलिन्द आदि जातियों, केरलपुत्र, सतियपुत्र, चोड़ और पाण्ड नामक दक्षि-णात्य स्वाधीन राज्यों और सिंहल द्वीपमें बसने बौद्ध-आचार्योंको भेजा। उनमेंसे कुछके नाम साँचीके स्तूप पर

(१) Kausambi Edict in the Allahabad pillar; Sarnath and Sanchi pillar Edicts.

उत्कीर्ण हैं। बौद्धाचार्य मध्यान्तिक काश्मीर और गान्धारको, मज्झिम हिमालय को, महारक्षित यवन देशको, सोन और उत्तर सुवर्णभूमि को, महाधर्म रक्षित महाराष्ट्र को, महादेव महिषमण्डलको और महेन्द्र लंकाको भेजे गये। बादमें सम्राटकी पुत्री और महेन्द्रकी भगिनी संघमित्राने बोधि-वृक्षकी शाखा लंका में ले जाकर लगायी। महेन्द्र और संघमित्रा दोनों भिक्षु और भिक्षुणी हो गये। उपदेशोंके प्रचारके लिये धर्म्मस्तम्भ खड़े किये गये और धर्म-लेख उत्कीर्ण कराये गये। देश-विदेशोंमें प्रचारके लिये अनेकानेक प्रयत्न किया गया।

बौद्ध-धर्मके विकासके इतिहासमें कनिष्कका नाम भी महत्त्वपूर्ण है। बौद्ध अनुश्रुतियोंसे विदित होता है कि कनिष्क जब बौद्ध होकर उस धर्मके सिद्धान्तों और बुद्धके उपदेशोंका अनुशीलन करने लगा तो उसके पारस्परिक साम्प्रदायिक विरोधोंके कारण उसको समझना उसके लिये बड़ा कठिन हो गया। इन सिद्धान्तोंके स्पष्टीकरण के लिये अपने गुरु पार्श्वकी अनुमति लेकर उसने सर्वास्तिवादिन शाखाके ५०० भिक्षुओंके महासंघका अधिवेशन कराया। इसी अधिवेशनको चौथी बौद्ध-संगीति कहते हैं। इसका अधिवेशन काश्मीर के कुण्डल-विहारमें१ भिक्षु वसुमित्रकी अध्यक्षतामें हुआ और उसकी अनुपस्थितिमें अश्वघोष अध्यक्षका कार्य-सम्पादन करता था। इसमें बौद्ध-सिद्धान्तों पर अनेक भाष्य सम्पादित हुए जिसमें "विभाषाशास्त्र" मुख्य था। इन भाष्योंको ताम्रपत्रों पर खुदवाकर एक स्तूपमें सुरक्षित कर दिया गया।

---

१ Beal (si-yu-ki) I—P. 151-56; Watters I P. 270-78

महायान—कनिष्कके समयमें ही महायानका विकास हुआ। बुद्धकी मूर्तियाँ बनने लगी और उस मूर्ति-निर्माणसे बौद्ध-धर्मके इतिहासमें एक नवीन आन्दोलन शुरू हुआ जिसे महायान कहते हैं। प्राचीन बौद्ध बुद्धको केवल मानव-गुरु, आचार्य और पथ-प्रदर्शकके रूपमें मानते थे। देवपद पर उनकी प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। बौद्ध-धर्मके इस प्रारम्भिक रूपको 'हीनयान' कहा गया१। हीनयान शुष्क सिद्धान्त परक था। जब तक बौद्ध-धर्म विद्वानों तक सीमित था तब तक हीनयानकी प्रतिष्ठा बनी रही। जन-विश्वास तर्क और दर्शनसे दूर था। साधारण जनता एक आधार चाहती थी और महायान उसीका परिणाम था। महायानने बौद्ध-धर्मका 'साधारीकरण' किया। बुद्ध-मूर्ति के साथ अनेकों बोधिसत्वों की कल्पना हुई। महायानका दूसरा नाम 'बुद्धायन' भी था। हीनयान ग्रन्थ पालीमें और महायान ग्रन्थ संस्कृतमें लिखा जाता था। महायानमें पूजा एवं भक्तिका प्रसार हुआ।

महायानमें उदारता एवं धर्म-प्रचारकी भावनायें वर्तमान थी। इसका प्रचार चीन, कोरिया और जापान तक हुआ। इसमें अन्यान्य मतोंके अनुयायी भी प्रविष्ट हो गये। इसमें अन्यान्य धार्मिक विचारोंका समावेश होता गया। महायानी अपने धर्मको प्रगतिशील मानते थे और हीनयानियोंके आदर्श को स्वार्थपूर्ण समझते थे। महायानके विभिन्न शाखाओं में क्रमशः नूतन विचारोंका आविर्भाव हुआ जिनमें मुख्य निम्नलिखित तीन थे—

---

१) "आत्मदीपो भव" (बुद्ध); "संघात सभी नाशवान हैं। परिश्रमके द्वारा अपनी मुक्तिका उपाय करना चाहिये"।

(क) बोधिसत्व—महायानी सब जीवोंकी मुक्तिको जीवनका लक्ष्य मानते हैं। वे संसारसे विमुख नहीं, वरन् दुख-विनाशके लिये सतत प्रयास करना चाहते—। उनका यह आदर्श 'बोधिसत्व' कहलाता है। जो व्यक्ति 'बोधिसत्व' को प्राप्त करता है और जन-कल्याणके लिये प्रयत्नशील रहता है उसे भी बोधिसत्व कहते हैं। ऐसे व्यक्तिका जीवन करुणा एव प्रज्ञासे अनुप्राणित होता है।१ बोधिसत्व अपने कार्योंके द्वारा दूसरोंको विमुक्त करता है और उनके पापमय कर्मोंका स्वयं उपभोग करता है। उनके कर्मोंके इस आदान

---

(१) ऐसे सिद्ध पुरुषको 'बोधिचित्त' कहा गया है। इस प्रसंग (महा-परिनिर्वाण प्राप्त करनेके पूर्व बुद्धने कहा था) में प्रसिद्ध बौद्ध-दार्शनिक नागार्जुनका विचार यह है—"सभी बोधिसत्व महा करुणा चित्त वाले होते हैं एवं प्राणीमात्र उनकी करुणाके पात्र होते हैं। प्राणियोंको दुखसे मुक्त करनेके लिये उनमें एक अलौकिक शक्तिका संचार होता रहता है। वे जन-कल्याणके लिये आवागमनके कष्टसे नहीं डरते हैं। प्रत्युत जन्म-ग्रहणके चक्र में पड़े रहने पर भी उनका चित्त स्वच्छ रहता है। किसी प्रकारकी पाप प्रवृति या आसक्ति उनमें नहीं रहती है। उनकी तुलना पंकजसे की जा सकती है। जिस प्रकार पंकज पंकमें जन्म लेनेपर भो स्वच्छ एवं सुन्दर रहता है, उसी प्रकार ये बोधिसत्व जन्म-मरणके जालमें फँसे रहकर भी बिल्कुल स्वच्छ तथा निर्मल रहते हैं।"

(२) महायानियोंके अनुसार १—'क्लेश' चार प्रकार का होता है—

प्रदानको "परिवत्त" कहते हैं। बादमें प्राणियोंके स्वतंत्र अस्तित्वको असत्य और उसे पारमार्थिक सत्तामें ही सन्निविष्ट माना गया है।

(ख) बुद्धका उपास्य-रूप—महायानी दो प्रकारके थे—कुछ तो बोधिसत्वको जीवनका अभीष्ट मानते किन्तु कुछ ऐसे थे जिनके लिये बोधिसत्वका आदर्श दुरूह था। ऐसे व्यक्तियोंके लिये भी महायान में स्थान है। बुद्धकी दयासे सभोंका उद्धार हो सकता है। सिद्धार्थ गौतमको 'पारमार्थिक सत्य' या "बुद्ध" का अवतार माना गया। दुखित मानव बुद्धको ईश्वर मानकर उसकी सहायता, प्रीति तथा दयाकी अपेक्षा करने लगता है। इस रूपमें बुद्धको "अमिताभ-बुद्ध"१ कहा गया है। बुद्धको ईश्वर

(क) अविद्या, (ख) रज-वालुक-क्लेश, (ग) दर्शनाहेय क्लेश और (घ) भावनाहेय क्लेश।

२—दशपारमिताहः—शील, क्षान्ति, दान, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, उपाय, प्रणिधान, बल, ज्ञान।

३—चत्वार्यप्रमाणानिः—मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा।

(१) The Amitabha sect held that the future salvation is the only salvation taught by Buddha. F. N.—Pure-Land Sect or Amitabha sect prevailed in Tibet, China and Japan. The sect was founded upon three Sutras—The great Amitayus Sutra, the small Ami-

मानकर महायानी अपनी धार्मिक प्रवृत्तियोंकी रक्षा करते हैं।

ग) आत्मामें पुनर्विश्वास—महायानके अनुसार केवल हीनात्मा ही मिथ्या है।

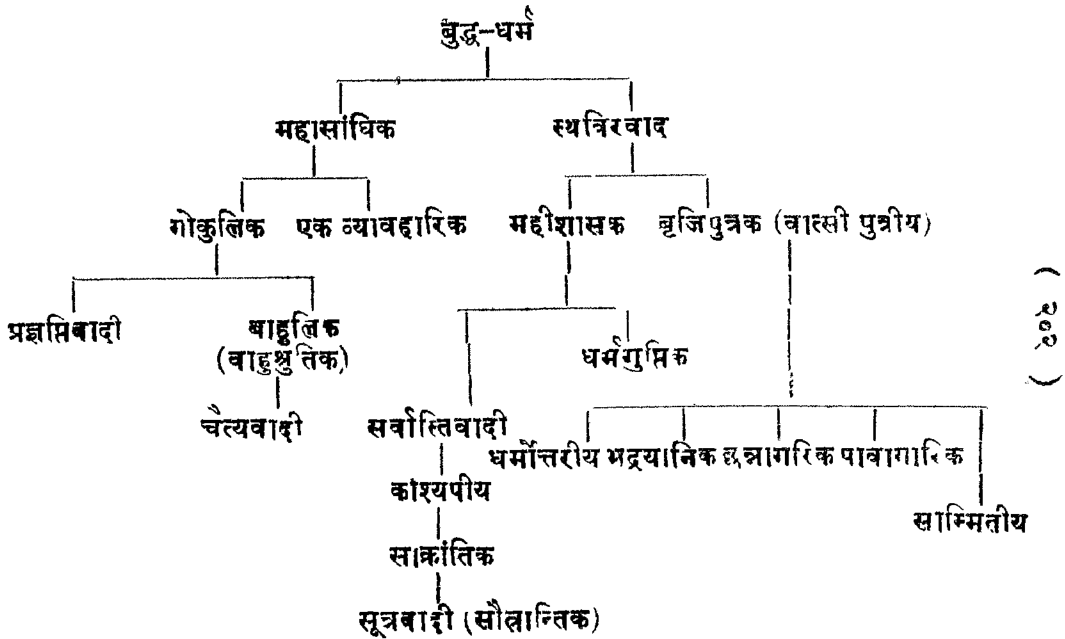
इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्धके मरनेके बाद ही बौद्ध अनेक सम्प्रदायोंमें बँट गये और उनके अठारह सम्प्रदाय हो गये जिनका वंश-वृत्त 'कथावत्थु' की 'अत्थ-कथा' के अनुसार आगेके पृष्ठपर दियाजाता है—

---

tayus-Sutra, and Amitayus-Dhyana-Sutra. In India the doctrine was beleived by Nagarjuna, Vasubandhu and Aswaghosh II. But no sect was founded in India. This idea was introduced in China by the Translators of the above sutras.

(R. Kimura—"What is Buddhism" in J. D. L. Vol. IV. P 200.)

Theory of Buddha-Kaya:—It arose immedidiately after the Parinirvan of Buddha and Hinayan Buddha-Kaya was conceived as Rup-Kaya Buddha—i. e. historical Buddha. From Mahayan standpoint there are three kinds of Buddha-Kayas. (Continued in p.203)


बुद्ध-धर्म
महासांघिक
स्थविरवाद
गोकुलिक
एक व्यावहारिक
महीशासक
वृजिपुत्रक (वात्सी पुत्रीय)
प्रज्ञप्तिवादी
बाहुलिक
(बाहुश्रुतिक)
चैत्यवादी
धर्मगुप्तिक
सर्वास्तिवादी
काश्यपीय
सांक्रांतिक
सूत्रवादी (सौत्रान्तिक)
धर्मोत्तरीय
भद्रयानिक
छन्नागरिक
पावागारिक
साम्मितीय

आन्ध्र साम्राज्यमें महासंघिकोंकी प्रधानता थी। उसके अन्दर ही चैत्यवाद सम्प्रदाय भी था। धान्यकटकमें इसकी प्रधानता

(i) Dharmakaya Buddha (Cosmic Unity)

(ii) Bambhogkaya Buddha (a) the body obtained by the Tathagata for his self enjoyment, by dint of his discipline.
(b) The body which the Tathagata manifests to the Bodhisattvas in pure Lands (Vasubandhu in "विज्ञप्तिमात्र-सिद्ध-शास्त्र)

(iii) Nirvankaya Buddha—Historical Buddha-regarded by Mahayanists on the incarnation of eternal Tathagata.

Buddhism—	Hinduism
1) Dharmakaya—	Nirguna Brahm
(2) Sambhogakaya—	Saguna Brahma
(3) Nirmanakaya—	Avatair

Based on R. Kimura—Ibid. PP. 203-208
Also Suzuki —"Outlines of Mahayan Buddhism" P. 265.

थी१। धान्य कटकके स्तूपका नाम ही महाचैत्य था।

मंत्रयान और वज्रयान—धीरे-धीरे बौद्ध-धर्ममें मन्त्रका भी प्रवेश हुआ। ऐसा जान पड़ता है कि अलौकिक गुणवाले बुद्ध की सृष्टिके फलस्वरूप मन्त्रोंकी प्रधानता बढ़ी; मंत्र और हठयोग बौद्ध-धर्म प्रविष्ट हो गये। बादमें यही सम्प्रदाय मंत्रयान (नरम) और वज्रयान [गरम] के नामसे प्रसिद्ध हुए। मन्त्रयान महायानसे विकसित हुआ और "मंजुश्री मूल कल्प" में हम अनेकानेक मन्त्र तन्त्रोंका विधान देखते हैं। तिब्बती ग्रन्थमें कहा गया है कि बुद्धने बोधिके प्रथम वर्षमें ऋषिपतनमें श्रावक-धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन किया; तेरहवें वर्ष राजगृहके गृद्ध-कूट-पर्वत पर महायान-धर्म चक्र-प्रवर्त्तन किया; और सोलहवें वर्षमें मन्त्रयान तृतीय-धर्म-चक्र प्रवर्त्तन श्री धान्य-कटकमें किया२। सातवीं शताब्दी तक मंत्रयानकी प्रधानता रही और उसके बाद ही वज्रयानका रूप शुरू हुआ। तिब्बती ग्रन्थमें लिखा है कि वज्रयानकी धर्मचक्र प्रवर्त्तन बुद्धने श्री धान्यकटकमें किया था। मद्य मंत्र, हठयोग और स्त्री वज्रायन के मुख्य रूप हैं३। चौरासी

---

१ अमरावतीमें मिले शिलालेख—

श्रीपर्वते महाशैले दक्षिणा-पथ-संज्ञके।
श्रीधान्यकटके चैत्ये जिन धातु-धरे भुवि॥

२ राहुल सांकृत्यायन—पुरातत्व-निबन्धावली पृष्ठ १४०

३ वहीं पृष्ठ १४३—

"प्राणिनश्च त्वया घात्या वक्तव्यं च मृषा वचः।
अदत्तं च त्वया ग्राह्यं सेवनं योषितामपि॥

—गुह्य समाज तंत्र

सिद्धोंके आदि पुरुष सरहने वज्रयानको एक सार्वजनीन धर्म बना दिया ।

ह्रास—उपरोक्त अध्ययनसे हमें बौद्ध-धर्मके विकासका पता चलता है। नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयोंमें भी इस धर्मकी प्रधानता थी, इसमें सन्देह नहीं। यहींके विद्वानोंने तिब्बतमें बौद्ध-धर्मका प्रचार किया१। किन्तु इतनी प्रधानता के बावजूद भी यह धर्म यहाँ ठहर नहीं सका। इसके ह्रासके कारण पर विचार करना भी आवश्यक है। ह्रासका सर्वप्रथम कारण था ब्राह्मणों और ब्राह्मण धर्मावलम्बी राजाओंका विरोध। बौद्ध-धर्मके अन्दर अनेक सम्प्रदायोंका जन्म हो चुका था और परस्पर विरोध भी बढ़ गया था। मठ भी पापाचार और षड्यन्त्रका अड्डा बन चुका था। अब ब्राह्मणों ने बुद्धको अवतार मानकर अपनी श्रेणीमें रखा तब उनकी महिमा प्रायः नष्ट हो गई। बौद्ध-धर्ममें भी देवी-देवताओंका भरमार हो गया। पाल-वंशके अन्त होते ही बौद्ध-धर्मपरसे राजाओंका संरक्षण भी हट गया और मुसलमानोंके आक्रमण से भी बौद्ध-धर्मको काफी चोट लगी। इस प्रकार यह धर्म विलीन हुआ। स्थानाभावके कारण इसका विशद विश्लेषण यहाँ नहीं किया जा रहा है२।

---

१ लेखकका लेख—Some Eminent Buddhisht Teachers (G. D. coege Magazine—3rd June)

२ Dr. P. C. Bagchi (Orientalia vol 3-Pt 2—p. 413-426) Gives the following causes of decline—

(i) Ineffcient church organisation,—

(ii) The introduction of notions and rites by foriegn nations who adopted

बुद्धकालीन सभ्यता—अब हम बुद्ध-कालीन सभ्यतापर विचार करेंगे। प्राचीन बौद्ध-साहित्यमें तत्कालीन सभ्यताकी झाँकी मिलती है। जन-संख्याका अधिकांश ग्रामोंमें रहता था। ग्रामके समीप बनपर गाँववालोंका स्वत्व होता था। पशुओंको चरानेके लिये एक गोपालक होता था जो ग्राम-वासियोंका सार्वजनिक नौकर था। छोटे-छोटे कृषक अपनी भूमिके जोतने-बोने आदिके स्वामी थे। कृषक ग्रामभोजक द्वारा अपना कर राजाको प्रदान करता था। ग्रामके सार्वजनिक कार्योंमें स्त्रियाँ भी सहायता करती थीं। जीवन सादा और सुखी था। मगध, कौशाम्बी, वैशाली, श्रावस्ती, चम्पा, कपिलवस्तु, उज्जैयिनी, वाराणसी, अयोध्या, मथुरा तक्षशिला इत्यादि प्रसिद्ध नगर थे। नगर साधारणतः एक दीवारसे घिरे होते थे। नगरोंका जीवन सामूहिक और मनोरंजक था। उनके उद्योग-धन्धे गाँव-वालोंसे भिन्न थे। साधारणतया लोगोंका पेशा कृषि था, परन्तु अन्यान्य धन्धे भी लोग करते थे। सोना, चांदी और रत्नोंपर कटावके अनेक काम होते थे। बड़े-बड़े भवन और प्रासाद भी बनाये जाते थे।

---

or favoured the Buddhist faith but never completely renounced their old beliefs and habits. (iii) The theory of impermanence contributed to the loss of inner vitality.

(iv) Failure to furnish the conception of a deity......

Its stamp on Indian mind could not be eradicated.

उस समयके शिल्पियोंमें एक प्रकारका संगठन था जिसे 'श्रेणी' कहते थे। लगभग १८ श्रेणियोंका नाम जातकोंमें सुरक्षित है। उस समय भारतका वाणिज्य-सम्बन्ध संसारके अनेक देशों से था। राज-मार्गोंका भी उल्लेख बौद्ध-साहित्य में मिलता है। इनमें से एक श्रावस्ती (अवध) से प्रतिष्ठान (हैदराबाद) तक जाता, दूसरा श्रावस्ती से मगध में राजगृह तक और तीसरा श्रावस्ती से तक्षशिला तक जाता था। सिक्का का प्रचलन हो चुका था। सिक्का ताँबाके होते थे जिसपर कई प्रकारके चिह्न अङ्कित थे। सोनेके सिक्के भी उस कालमें चलते थे। 'मासक' और 'काकनिका' नामके दो प्रकारके सिक्के और भी चलते थे। इनका रूप चौकोर था।

शासन-विधानमें गणतन्त्र१ और राजतन्त्र२ प्रणालियोंकी प्रधानता थी। गण-राष्ट्रका शासन एक प्रकारकी संस्थापिका सभा द्वारा होता था जिसकी बैठक संथागारों में होती। उनमें बैठनेका प्रबन्ध आसन-प्रज्ञापक नामक एक अधिकारी करते। कार्यक्रमका आरम्भ प्रस्तावकी नियमित ज्ञप्ति देने पर होता था। वक्तव्य केवल प्रस्ताव के सम्बन्ध में ही हो सकते थे। प्रस्ताव

---

(१) पाली-ग्रंथोंमें निम्नलिखित गणराज्यों का वर्णन मिलता है—कपिलवत्थुके शाक्य, सुंसुमगिरीके भग्ग, अल्लुकप्पके बुली, केस पुत्तके कालाम (बुद्धके आलार कालाम इसी गणके थे), राम-ग्रामके कोलिय, पावाके मल्ल, कुशीनाराके मल्ल, पिप्पलिवनके मोरिय, मिथिलाके विदेह, वैशालीके लिच्छवी।

(२) राजतन्त्र-प्रणाली कौशाम्बी (वत्स), अवन्ती, कोशल और मगध में थी।

को 'प्रतिज्ञा' कहते थे। संथागारमें मताधिकार शलाका (टिकटों) द्वारा होती थी। इनको एकत्र करनेवाला "सलाका गाहापक" कहलाता था। न्यायालय में निम्नलिखितपदाधिकारी लोग थे—विनिच्च महामात (न्यायाधीश), वोहारिक (वकील), प्रवीण (सूत्रधर) और अष्ठकुलका (आठ अफसरोंकी समिति)। इसके अलावा सेनापति, उपराजा और राजा होते थे। कानूनको व्यवहार कहा जाता था। राजतन्त्र-प्रणालीमें राजा द्वारा शासन होता था। प्रयेक राजा अपनी राज्य-सीमा को बढ़ानेका प्रयत्न करता था जिसका फल यह हुआ कि स्वयं उन्हींमें युद्ध होने लगा और कालान्तरमें एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना हुई। उत्तर भारतमें बिम्बिसारके आधिपत्यमें मगध-साम्राज्यका विकास हुआ। उसका शासन सुसंगठित था। राज्यके उच्चस्थ पदाधिकारियोंके आचरणोंपर सूक्ष्म दृष्टि रखी जाती थी। दण्ड-विधान कठोर था।

दशम अध्याय

बौद्ध-दर्शन

बुद्ध के दार्शनिक विचार उनके धर्मोपदेश पर ही अवलम्बित हैं। उनके धर्मोपदेशों की विवेचना और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण हम पहले कर चुके हैं, अतः उन्हें यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। यहाँ उनके आत्मा एवं जगत सम्बन्धी विचारोंका ही उल्लेख किया जायगा। इन सबकी स्वयं बुद्ध ने विवेचना की थी। उनके मुख्य दार्शनिक विचार चार हैं—(क) प्रतीत्य समुत्पाद, (ख) कर्म, (ग) क्षणिकवाद एवं (घ) आत्मा का अनस्तित्व। उनका दार्शनिक विचार एक शब्द में यह है—"अनित्य, दुःख, अनात्म"[1]।

(क) *प्रतीत्य समुत्पादः*—"अस्मिन् सति इदं भवति"[2] इसके होने पर यह होता है, ऐसा बुद्ध का विचार है। एकके विनाशके बाद दूसरेकी उत्पत्ति, इसी नियमको बुद्धने प्रतीत्य-समुत्पाद का नाम दिया है। प्रत्येक उत्पादका कोई प्रत्यय है। प्रतीत्य-समुत्पाद कार्य-कारण नियमको अविच्छिन्न नहीं वरन् विच्छिन्न प्रवाह[3] मानता है। प्रत्येक घटनाके

१—अंगुत्तर निकाय ३/१/३४

२—मज्झिम निकाय १/४/८; प्रत्युत=किसी वस्तु के उपस्थित होने पर; समुत्पाद=किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। (विशुद्धि-मग्ग-१७वाँ अध्याय)

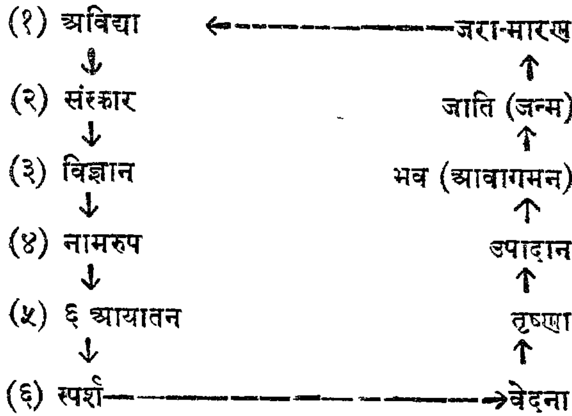
३—Discontinuous Continuity—; इसके आधार पर नागार्जुन ने अपने शून्यवाद को विकसित किया।

लिये कुछ कारण अवश्य रहता है क्योंकि कारण के बिना घटना का आविर्भाव नहीं हो सकता है। यही सिद्धान्त बौद्ध-दर्शन का आधार है। बुद्ध ने कहा है—"जो प्रतीत्य-समुत्पाद को देखता है, वह धर्म को देखता है; जो धर्म को देखता है, वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है। यह पाँच उपादान स्कंद (रुप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) प्रतीत्य-समुत्पन्न है"[1]। प्रतीत्य समुत्पादमें आत्माका स्थान नहीं हैं और बुद्धने इसे अपने उपदेशों में अच्छी तरह समझाया है[2]। जिस-जिस प्रत्ययसे विज्ञान (जीव) चेतना उत्पन्न होती है, वही उसकी संज्ञा है। अविद्या का कारण समझाते हुये बुद्ध ने कहा—"सभी आहारों का निदान (कारण) है, तृष्णा......उसका निदान वेदना......उसका निदान स्पर्श......उसका निदान ६ आयातन (पाँच इन्द्रियाँ और मन)......उसका निदान नाम और रुप........उसका निदान विज्ञान......उसका निदान संस्कार......उसका निदान अविद्या"। अविद्या अपने चक्र को १२ अंगों में दुहराती है और इसे ही द्वादशांग-प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हैं[3]।

१—मज्झिम-निकाय १/३/८

२—१हीं १/४/८ (महातण्हा-संश्वय सुतन्त)

३—राहुल-साँकृत्यायन-दर्शन-दिग्दर्शन पृष्ठ-५१५; Pischel compared and identified each link in the chain with a corresponding Sankhya or Yoga term and held that all was borrowed from Sankhya-yoga. The conception of Sankhya Prakriti is not found in Buddihsm (Thomas-opticiti. p.193-94) Maxmullar says—"We have looked in vain for any definite similarities between the systems of Kapila and the metaphysics of the Buddhists" (Chips from a German workshop" I, 226)



तृष्णा की उत्पतिके प्रसंगमें बुद्धने कहा है—"बच्चा बड़ा होने पर पाँच प्रकारके विषय भोगों (रूप, शब्द, रस, गंध, स्पर्श) का सेवन करता है। वह अनुरोध, विरोध में पड़ा सुखमय, दुखमय, नसुख-न-दुखमय वेदनाओं को अनुभव करता है, उसका अभिनन्दन करता है और इस प्रकार उसे तृष्णा उत्पन्न होती है"।

सभी घटनाओंका कुछ न कुछ कारण अवश्य रहता है। इस नियम को ही बौद्ध-दर्शनमें धर्म कहा गया है। यह स्वयं परिचालित होता है। यह किसी वस्तु पर अवलम्बित नहीं है और यह शाश्वतवाद में भी विश्वास नहीं करता। बुद्ध किसी वस्तु के अस्तित्व में कोई सन्देह नहीं करते किन्तु किसीको नित्य नहीं मानते। पूर्ण नित्यवाद एवं पूर्ण विनाशवादको वे एकान्तिक मानते हैं। बुद्ध दोनों एकान्तिक मार्गों को छोड़कर मध्यमार्गका अनुसरण करना चाहते हैं[1]। उन्होंने कहा "आदि

१– संयुक्त निकाय—२२;

और अन्तका विचार करना निरर्थक है"[१]। उनका यह दार्शनिक विचार क्रान्तिकारी समझा जाता था। इससे ही कर्मवाद की स्थापना हुई।

(ख) कर्म:—प्रतीत्य-समुत्पादके अनुसार मनुष्यका वर्तमान जीवन उसकी पूर्वावस्थाका परिणाम समझा जा सकता है। वर्तमान जीवन पूर्ववर्ती कर्मोंका ही फल है। इस जीवन का भविष्य जीवनके साथ वही सम्बन्ध है जो पूर्ववर्ती जीवन का इस जीवनसे है। वर्तमान जीवनके कारण ही भविष्य जीवनकी उत्पत्ति होती है। कर्मबाद प्रतीत्य-समुत्पादका एक विशेष रूप है। बुद्ध के अनुसार कर्म दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार का कर्म राग, द्वेष तथा मोहके कारण होता है और दूसरा बिना राग, मोह द्वेष आदि के। प्रथम प्रकारका कर्म हमारी विषयानुरक्ति की वृद्धि करता है। दूसरे प्रकारका कर्म अनासक्त भावसे संसारको अनित्य समझ कर किया जाता है जिससे पुनर्जन्म की सम्भावना नहीं रहती।

(ग) क्षणिक वाद:—तत्वों का विभाजन बुद्धने तीन प्रकार से किया—(अ) स्कन्ध, (आ) आयतन और (इ) धातु। स्कन्ध पाँच हैं—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान। रूप में पृथ्वी आदि चारों महाभूत सम्मिलित हैं। विज्ञान चेतना है। सुख-दुख आदिका जो अनुभव होता है, उसे वेदना कहते हैं। संज्ञा अभिज्ञान को कहते हैं। संस्कार वासना को कहते हैं। वेदना संज्ञा और संस्कार चेतना की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ हैं[२]। संज्ञा, विज्ञान और वेदना ये तीनों मिले जुले हैं। बुद्ध ने इन स्कन्धों

१—Baddhism was never a mere theoretical structure to a curiosity to know how the world goes round. (Thomas opt. civt. p.192)

(२) मज्झिम निकाय (महावेदल्ल-सुत) १।५।३।

को अनित्य कहा है। आयातन भी बारह हैं यथा छै इन्द्रियाँ (चक्षु) श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया और मन) और छै उनके विषय (रुप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य) और धर्म=(वेदना, संज्ञा संस्कार)। धातु अठारह हैं यथा उपरोक्त छै इन्द्रियाँ और उनके छै विषय और इन्द्रियाँ तथा विषयों के सम्पर्क से होने वाले छै विज्ञान (=चक्षु-विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, काय-विज्ञान और मन-विज्ञान) ये सभी अनित्य हैं[1]।

बुद्ध के अनुसार सभी वस्तु परिवर्तनशील एवं नाशवान हैं। प्रतीत्य-समुत्पाद के अनुसार कारण के नष्ट होने पर उसका भी नाश हो जाता है। उनके अनित्यवाद को ही क्षणिकवाद का रूप दिया गया है। संसार की सभी वस्तुयें प्रति क्षण बदलती रहती हैं। क्योंकि किसी भी वस्तु से प्रतिक्षण एक ही प्रकार के परिणाम की सम्भावना नहीं रहती है। प्रत्येक वस्तु की सत्ता क्षण ही भर रहती है। रुप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान, नित्य, ध्रुव, शाश्वत एवं अविकारी नहीं हैं। उनका अनित्यवाद एक का नाश और दूसरे का बिलकुल नया उत्पाद है[2]।

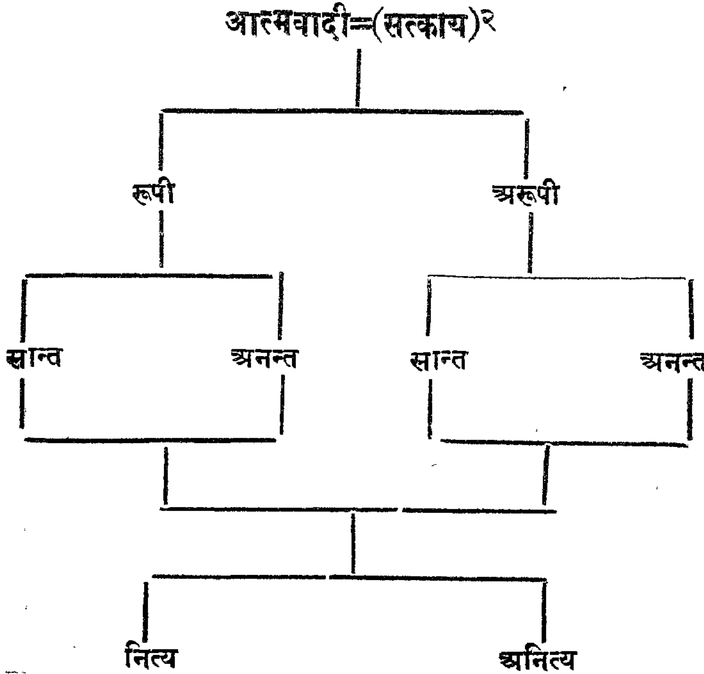
(घ) *आत्मा का अनस्तित्व:*—उपनिषद् में 'आत्मा' का प्रचार जोरों से हुआ था। लोगों में यह विश्वास जम चुका था कि आत्मा एक स्थायी वस्तु है। प्रतीत्य-समुत्पाद के कारण बुद्ध आत्माकी नित्यया को नही मानते। बौद्ध दर्शन में आत्मा से विज्ञान-प्रवाह का बोध होता है। वे आत्मा को अप्रमाणित समझते थे। मनुष्य के अतिरिक्त आत्मा नामक कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य पंचतत्व का संग्रह है। उनके उपदेश

१—दीघ्घनिकाय (महानिदान-सुत्त) २।१५।—;बुद्ध-चर्या (रा०-सा०)१२२

२—अंगुत्तर निकाय ३।१।२४; संयुक्त निकाय १६; १२।७

का सार ही था दुख और दुख-निरोध। प्रतीत्य-समुत्पाद और अष्टांगिक मार्ग पर ही बौद्ध धर्म का सार निहित है[१]।

नित्यता-वादियों के अत्मा-सम्बन्धी विचारों को युद्ध ने दो भागों में बांटा है। एक में आत्मा को रूपी (इन्द्रयगोचर) और दूसरे में अरूपी माना जाता है। फिर इन दोनों विचारवालों में कुछ आत्माको अनन्त मानते हैं और कुछ सान्त-नित्यवादी और अनित्यवादी।



१—With the rejection of divinity in the self, the self himself the man the, peson, the spirit using mind and body was also rejected, Mrs. Rhys Davids in Editorial Notes to kindred saying Vol (3)

आत्मवाद के लिये सत्काय-दृष्टि शब्दका भी बुद्ध ने व्यवहार किया है। सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिये बुद्ध सत्काय के नष्ट होने की आवश्यकता समझते थे। उनकी शिष्या धम्म-दिन्ना ने पाँच स्कन्दों को सत्काय कहा है और आवागमन की तृष्णा को सत्काय दृष्टि का कारण[3]। आत्मा के सम्बन्ध में बुद्ध ने कहा था—"अयं भिक्खवे। केवलो परिपूरो बाल-धम्मो" अर्थात् भिक्षुओ, यह केवल भरपूर बाल-धर्म है[4]। उन्होंने आत्माको अनित्य एवँ अध्रुव माना है। रूप अनात्मा है, वेदना अनात्मा है, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान सारे धर्म अनात्मा हैं[5]।

इन चार मुख्य दार्शनिक-विचारों पर प्रकाश डालने के बाद अब हम उनके अन्यान्य दार्शनिक दृष्टिकोणों पर विचार करेंगे। उनके अनात्मवादसे हमें यह नहीं समझना चाहिये कि वे भौतिकवादी थे। उन्होंने स्वयं कहा है[6] "वही जीव है, वह शरीर है", (दोनों एक है) ऐसा मत होने पर ब्रह्मचर्यवास नहीं हो सकता। 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है', ऐसा मत (=दृष्टि) होने पर ब्रह्मचर्यवास नहीं हो सकता है।,, बुद्ध ने अपने को अभौतिकवादी अनात्मवादी की स्थिति में रखा। उनके अनित्य, अनात्म एवं प्रतीत्य-समुत्पाद दर्शन में ईश्वर का भी स्थान नहीं था। बुद्ध के पूर्व उपनिषद् में आत्मा,

---

(१) दिग्घोनिकाय (महानिदान सुत्त) २।१५

(२) रा० सांकृत्यान वहीं पृष्ठ ५१६।

(३) मज्झिमनिकाय (चूल वेदल्ल सुत्त) १।५।४

(४) वहीं १।१।२

(५) वहीं १।४।५ (चूल सचक-सुत्त)

(६) अंगुतरनिकाय ३

ईश्वर एवँ पुनर्जन्म का विकास पूर्ण रूपेण हो चुका था[1]। ब्रह्मा या ईश्वर, आत्मा, और सत् पर बुद्ध के विचार निम्नांकित है। उन्होंने एक भार्गव-गोत्र परिव्राजक से कहा था—

"भार्गव! जो श्रमण-ब्राह्मण ईश्वर या ब्राह्मा के कर्त्तापन के मतको श्रेष्ठ बतलाते हैं, उनके पास जाकर मैं यह पूछता हूँ—'क्या सचमुच आप लोग ईश्वर के कर्त्तापन को श्रेष्ठ बतलाते हैं'? वे 'हाँ' कहते हैं। उनसे मैं फिर पूछता हूँ—'आपलोग कैसे ईश्वर या ब्राह्मा के कर्त्तापन को श्रेष्ठ बतलाते हैं?' वे मुझसे पूछने लगते हैं, मैं उनको उत्तर देता हूँ—'बहुत दिनों के बीतने पर इस लोक का प्रलय होता है...... (फिर) बहुत काल बीतने पर इस लोक की उत्पत्ति होती है। उत्पति होने पर शून्य ब्रह्म-विमान (=ब्रह्मा का उड़ता-फिरता घर) प्रकट होता है। तब कोई प्राणी आयु के क्षीण होने से उस शून्य ब्रह्म-विमान में उत्पन्न होता है। वह वहाँ बहुत दिनों तक रहता है[2]। बहुत दिनों तक अकेला रहने के कारण, उसका जी ऊब जाता है और भय मालूम होने लगता है[3]। 'अहो दूसरे प्राणी भी यहाँ आवें।........इस प्रकार ही तो आप लोग ईश्वर का कर्त्तापन बतलाते हैं"[4]। कुछ प्रश्नों को बुद्ध ने अकथनीय अथवा अव्याकृत कहा है (देखिये पृष्ठ ११४)

(१) प्रश्नोपनिषद् १।३–१३ (प्रजापतिका तप); तैत्तिरीय, २।६ (ब्रह्मा की कामना); ऐतरेय १।१ (आत्मा पहले अकेला था)

(२) दीघनिकाय ३।१ (पाथिक सुत्त)।

(३) मिलाइये—बृहदारण्यक उपनिषद १।४।१-२ "आत्मा ही पहले था... वह भय खाने लगा.....उसने दूसरे की इच्छा की"।

(४) ईश्वरके सम्बन्धमें बुद्धके विचारके लिये देखिये—दीघनिकाय १।११ (केवट्ट-सुत्त); मज्झिम-निकाय १।५।६ (ब्रह्मनिमान्तिक-सुत्त); तेविज्ज-सुत्त (दी० नि० १।१३) (५) अंगुत्तर-निकाय ३।७।५

मालुंक्य पुत्त ने बुद्ध से इन दस अवस्थाओं या दश अव्याकृत बातों के विषय में प्रश्न किया था। बुद्ध ने उत्तर दिया—"मैंने इसे अव्याकृत इसलिये कहा है क्योंकि इनके विषय में कहना सार्थक नहीं, भिक्षु-चर्या के लिये उपयोगी नहीं और निर्वाण के लिये आवश्यक नहीं"। बौद्ध दार्शनिक प्रत्यक्ष और अनुमान के अतिरिक्त तीसरे प्रमाण को नहीं मानते। उनके विचार-स्वातंत्र्य का प्रमाण भी बौद्ध साहित्य में मिलता है। बुद्ध ने केशपुत्र ग्राम के कालामों से कहा था—

"कालामो! तुम्हारा सन्देह ठीक है। सन्देह के स्थान में ही तुम्हें सन्देह उत्पन्न हुआ है। कालामो! मत तुम श्रुत (=सुने वचनों, वेदों) के कारण (किसी बात को मानो), मत तर्कके कारण से, मत नय-हेतु से, मत (वक्ता के) आकार से, मत अपने चिर-विचारित मत के अनुकूल होने से, मत (वक्ता के) भव्य-रूप होने से, 'मत, श्रमण हमारा गुरु है' इससे। जब कालामो! तुम स्वयं जानो कि ये धर्म (=काम या बात) अच्छे, अदोष, विज्ञों से आनंदित हैं, यह लेने, ग्रहण करने पर हित, सुख के लिये होते हैं, तो कालामो तुम उन्हें स्वीकार करो"। बुद्ध सर्वज्ञता के भी विरुद्ध थे। उन्होंने स्वयं कहा है—"ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं है जो एक ही बार सब जानेगा, सब देखेगा या सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होगा[1]।" बुद्ध ने यह भी कहा था कि जिस विषय की जानकारी न हो उस पर चुप रहना चाहिये।

उनके चरित्रके अध्ययन करने पर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि उनकी जिज्ञासा अनुभव पर आधारित थी। उनका विचार था कि सत्यकी खोज जिन्दगी में होनी चाहिये। तर्क पर अपने विचारों को आधारित कर उन्होंने उसे अन्तिम परिणाम तक पहुँचाया। उनके दर्शनमें विशाल लोक-हित की भावना थी।

(१) मज्झिम निकाय २।४।१०

उनके दार्शनिक विचारोंमें अन्धविश्वास को प्रश्रय नहीं मिला। वे मानव-जीवन के मूल तत्वोंका अन्वेषण करना चाहते थे। उनके दार्शनिक विचारों को ऐहिकवाद, प्रतीतिवाद, एवं अनुभववाद कहा गया है[1]। इसका कारण यह है कि वे इस लोक और इस जीवन की उन्नति करना चाहते थे और वे प्रत्यक्ष-प्रतीति द्वारा प्राप्त ज्ञान को निश्चय मानते थे। वे कुछ दार्शनिक प्रश्नों का समाधान नहीं करना चाहते थे किन्तु उनके बाद बौद्ध-दर्शन में कुछ परिवर्तन लाया गया और उसमें महायानियों का ज्यादा हाथ था। धीरे-धीरे अनेक शाखाएँ हो गईं जिनमें चार प्रधान थे—

नागार्जुन, आर्यदेव वृद्ध पालित इत्यादि	(क) शून्यवादी या माध्यमिक	[2] महायान सम्प्रदाय आठ शाखायें	प्रधान शाखायें
असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति और शान्ति रक्षित	(ख) विज्ञानवादी या सौत्रान्तिक		
कोई प्रसिद्ध एवँ उल्लेखनीय नहीं	(ग) वांह्यानुमेयवादी या सौत्रान्तिक	हीनयान सम्प्रदाय २१ शाखायें	
संघभद्र, वसुबन्धु (का अभिधर्मकोष)	(घ) वाह्य प्रत्यक्षवादी या वैभाषिक		

(१) Positivism, Phenomenalism, Empiricism

(२) सम्मितीय = चैत्यवादी (महासंघिक) ई० पू० ३ इसदी

अन्धक

वैपुन्य	पूर्वशैलीय	अपरशैलीय	राजगिरिक	सिद्धार्थक-ई-पू०-१सदी

महायान——————ईसवी १ सदी

शून्यवाद के प्रवर्त्तक थे प्रसिद्ध दार्शनिक नागार्जुन[४]। वे दक्षिण के रहने वाले थे और आन्ध्रराजा गौतमी पुत्र यज्ञश्रीके समकालीन थे। शून्यवाद के अनुसार किसी भी वस्तु का स्थिर अस्तित्व नहीं है। बौद्धोत्तर दार्शनिक इससे यह समझते थे कि संसार शून्यमय है। माधवाचार्य ने भी इस प्रकार की युक्ति दी है। ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान परस्पर आश्रित हैं। ज्ञात वस्तु यदि असत्य है तो ज्ञाता तथा ज्ञान भी असत्य है। माध्यमिक शून्यवाद इन्द्रियों से प्रत्यक्ष जगत को असत्य मानता है। शून्यता भी वर्षनातीत है। यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि वस्तुओं का यथार्थ स्वरुप (क) सत्य है, या (ख) असत्य है, या (ग) सत्य तथा असत्य दोनों है, या (घ) न तो सत्य न तो असत्य है। वस्तुओं का स्वरूप इन चार कोटियों से रहित होने के कारण शून्य कहा जाता है। इस वर्णनातीत को प्रमाणित करने के लिये प्रतीत्य-समुत्पाद की सहायता ली गई है। नागार्जुन के अनुसार प्रतीत्य-समुत्पाद ही शून्यता है[५]। वस्तुओं का कोई भी ऐसा धर्म नहीं जिसकी उत्पत्ति किसी और पर निर्भर न हो। सभी धर्म शून्य हैं[६]। वस्तुओं के परावलम्बन को एवँ उसकी निरन्तर परिवर्तन-शीलता को शून्य कहते हैं। शून्यताका माहात्म्य नागार्जुन ने इस प्रकार बतलाया है— "जो इस शून्यता को समझ सकता है, वह सभी अर्थों को समझ सकता है। जो शून्यता को नहीं समझता, वह कुछ भी नहीं समझ

---

(१) देखिये लेखक का "Some Eminent Buddhist teachers"

(२) माध्यमिक शास्त्र, अध्याय २४ कारिका १८

(३) वहीं, कारिका १६

सकता"[१]। शून्यता को समझने वाला ही प्रतीत्य-समुत्पाद को समझ सकता है और उसको समझने वाला ही चार आर्य सत्यों को समझ सकता है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि नागार्जुन का शून्यता से अभिप्राय है प्रतीत्य-समुत्पाद। नागार्जुन प्रतीत्य-समुत्पाद के दो अर्थ लेते हैं—(क) प्रत्यय (=हेतु या कारण) से उत्पन्न "सभी वस्तुयें प्रतीत्य-समुत्पन्न हैं" का अर्थ है कि सभी वस्तुयें अपनी उत्पति=अपनी सत्ताको पानेके लिये दूसरे प्रत्यय या हेतु पर आश्रित हैं। (ख) प्रतीत्य-समुत्पाद का दूसरा अर्थ क्षणिकता है। प्रतीत्य-समुत्पाद को ही मध्यम-मार्ग कहा गया है और नागार्जुन ने शून्यवाद को माध्यमिक कहा है। नागार्जुन कहते हैं- "दो प्रकार के सत्य हैं जिन पर बुद्ध के धर्म-सम्बन्धी उपदेश निर्भर हैं। एक संवृति-सत्य है[२]। यह साधारण मनुष्यों के लिये है। दूसरा पारमार्थिक सत्य है। जो व्यक्ति इन दोनों सत्यों के भेद को नहीं जानते वे बुद्ध की शिक्षाओं के गूढ़ रहस्यों को नहीं समझ सकते हैं[३]"। निर्वाण के विषय में नागार्जुन का कथन है कि जो अज्ञात है, जिसकी प्राप्ति नयी नहीं है, जिसका विनाश नहीं है, जो नित्य भी नहीं है, जो निरुद्ध नहीं है, जो उत्पन्न भी नहीं है, उसका नाम निर्वाण है[४]। प्रोफेसर शेरवात्सकी[५] का विचार है कि नागार्जुन को

(१) प्रभवति च शून्यतेयं यस्य प्रभवन्ति तस्य सर्वार्थाः।
प्रभवति न तस्य किंचित् न भवति शून्यता यस्य॥ (विग्रह व्यावर्तिनी कारिका ७१)

(२) Emprical

(३) माध्यमिक शास्त्र, अध्याय २५, कारिका ३ (४) १हीं

(५) The Conception of Buddhist Niravan, Leningrad-1927

विश्व के प्रकाण्ड एवँ बड़े दार्शनिकों में स्थान मिलना चाहिये। वह नागार्जुनके विचारोंकी तुलना हेगेल और ब्रैडले से करता है। शेखात्सकीने शून्यताको सापेक्षता कहा है। प्रत्येक वस्तु सापेक्ष और परस्पराश्रित होने के कारण उसकी अपनी सत्ता नहीं रहती, इसलिये भी वह शून्य है।

योगाचार दर्शन के बीज वैपुल्य सूत्रों में पाये जाते हैं। वे लोग वाह्य जगतके अस्तित्वको न मानते हुये विज्ञान (=अभौतिक तत्व, मन) को एक मात्र पदार्थ मानते हैं। योगाचार के प्रथम प्रवर्त्तकके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। असंग और वसुबन्धुके प्रौढ़-ग्रन्थों के कारण ही यह दर्शन अत्यन्त प्रबल और प्रसिद्ध हो गया। असंगके महान मौलिक ग्रन्थ "योगाचार भूमि" से योगाचार दर्शनका प्रतिपादन हुआ। योगाचारों का विचार है कि वाह्य वस्तुओं के अस्तित्व को मानने से अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है। वाह्य-वस्तु या तो एक अणुमात्र है या अनेक अणुओं से बनी हुई है। अणु तो इतना सूक्ष्म होता है कि उसका प्रत्यक्ष सम्भव ही नहीं हो सकता है। अणुओं से बनी किसी पूरी वस्तु का भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। योगाचार को विज्ञानवाद[1] भी कहा गया है। विज्ञानवाद विज्ञान को ही परमार्थ तत्व मानता है और यह भी कि वह पाँच इन्द्रियोंके पाँच विज्ञानों तथा छठे मन-विज्ञान के अतिरिक्त एक सातवें आलय-विज्ञान को मानता है। आलय-विज्ञान वह तरंगित समुद्र है जिसमें तरंगों की भांति विश्व की सारी जड़-चेतन वस्तुयें प्रकट और विलीन होती रहती हैं।

---

(१) विज्ञानवाद असंग के पूर्व भी "लंकावतार" सूत्र और संधि-निर्मोचन-सूत्र' जैसे महायान सूत्रों में पाये जाते हैं। इन सूत्रों को बुद्ध-वचन कहा जाता है।

महायान सूत्र की गाथाओं द्वारा असंग ने बौद्ध-दर्शन के मूल सिद्धान्त अनित्यवाद या क्षणिक वादको बतलाया है। "क्षणिकके अर्थको लेकर प्रतीत्य-समुत्पाद" कहते हुए उन्होंने क्षणिक वाद शब्द से प्रतीत्य-समुत्पाद को स्वीकार किया है[1] इसके अनुसार विज्ञान का ही एकमात्र अस्तित्व है। आलय-विज्ञान परिवर्तन शील चितवृत्तियों का एक प्रवाह है, क्षणिकता के कारण उसे बराबर नया रूप धारण करना पड़ता है, जिसके ही कारण यह जगत-वैचित्रय है।

सौत्रान्तिक अपनेको बुद्धके उपदेशोंका अनुयायी कहते हैं। वे वाह्य विज्ञानवाद से उलटे वाह्यार्थवादी हैं अर्थात् क्षणिक रूप ही मौलिक तत्व हैं। वे लोग चित्त एवं व्राह्य-जगत दोनों को ही मानते हैं। वे लोग वाह्य-वस्तुओं का अस्तित्व मानना नितान्त आवश्यक समझते हैं। वाह्य-वस्तुओं के अनेक आकार होने के कारण ही ज्ञान के भिन्न-भिन्न आकार होते हैं। ज्ञान के चार कारण या प्रत्यय हैं—(क) आलम्बन, (ख) समनन्तर, (ग) अधिपति और (घ) सहकारी प्रत्यय हैं। व्राह्य-विषयक ज्ञान का आलम्बन कारण है। ज्ञान का आकार उसीसे उत्पन्न होता है। ज्ञान के अव्यवहित पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था से ज्ञान में चेतना आती है। इसलिए दूसरे कारणका नाम समनन्तर प्रत्यय है। बिना इन्द्रियसे वाह्य-ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिए इन्द्रियों को ज्ञान का अधिपति प्रत्यय कहा जाता है। सहायक कारणोंका भी होना ज्ञानके लिए आवश्यक है। सौत्रान्तिकके अनुसार सुत्त-पिटक ही इस मतका मुख्य आधार है।

---

(१) योगाचार भूमि—"प्रत्ययत इत्वरात्यय संगत उत्पादः प्रतीत्य समुत्पादः क्षणिकार्थमधिकृत्य। बुद्ध ने कहा है—"प्रतीयत्समुत्पाद" गम्भीर है (दीर्घयानिकाय २।५५) असंग कहता है—प्रतीत्य समुत्पाद क्षणभंगुर है (क्षणभंगुरश्च प्रतीत्य समुत्पादः)

वैभाषिक भी सौत्रान्तिक की तरह चित्त एवं बाह्य-वस्तु के अस्तित्वको मानते हैं। इनके अनुसार वस्तुओंका ज्ञान प्रत्यक्ष को छोड़कर अन्य किसी उपायसे नहीं हो सकता है। केवल मानसिक प्रतिरूपों के आधार पर उनका अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता है। जिसने कभी कोई बाह्य वस्तु नहीं देखी है वह तो यह समझेगा कि मानसिक अवस्था ही मौलिक एवं स्वतन्त्र सत्ता है और उसका अस्तित्व किसी बाह्य वस्तु पर निर्भर नहीं है। वैभाषिकों के अनुसार बाह्य-वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव है इसलिये इस मत को बाह्य-प्रत्यक्ष वाद कहते हैं।

उपसंहार—बुद्ध के उपदेशोंसे ही बौद्ध-दर्शनकी उत्पत्ति हुई। दुख को सत्य मान कर बुद्ध ने अपना उपदेश शुरू किया और उसके निवारणके लिये आर्य अष्टांगिक मार्गकी व्याख्या बतलाई जिसके द्वारा ही अविद्या एवं तृष्णा पर विजय प्राप्त की जा सकती है। बुद्ध, दार्शनिक समस्याओं पर, उतना ज्यादा जोर नहीं देते थे किन्तु वे दार्शनिक बिचारों से अलग भी नहीं रह सके। बौद्ध-ग्रन्थों से यह पता चलता है कि उन्होंने निम्नोक्त दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

(१) सभी विषयों का कारण है अर्थात् कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो स्वयम्भूत हो।

(२) सभी वस्तुयें परिवर्तनशील हैं; ज्यों-ज्यों कारण में परिवर्तन आता है त्यों त्यों उन वस्तुओं में भी परिवर्तन होता जाता है।

(३) कुछ भी नित्य नहीं है।

(४) अतः न कोई आत्मा है, न ईश्वर है, न अन्य ही कोई स्थायी सत्ता है।

(५) वर्त्तमान जीवन का क्रम चलता रहता है। इससे कर्म के अनुसार आगामी जीवन की उत्पत्ति होती है।

एकादश अध्याय

बौद्ध-साहित्य

यह तो निश्चित है कि बौद्ध साहित्यका निर्माण ऐतिहासिक युगमें हुआ। बुद्धने स्वयं कोई ग्रन्थ नहीं लिखा था। किन्तु पाली साहित्यमें जो कुछ है वह बुद्धके बचनोंका संग्रह या उसकी व्याख्या है। ये संग्रह समय-समय पर बौद्ध-संगीतियों[1] के आचार्यों के निर्णयानुसार संग्रहित हुए थे। पाली-ग्रन्थों में नौ-संगीतियों का उल्लेख पाया जाता है। स्थविर महाकश्यप के उद्योगसे राजगृहमें जो प्रथम संगीति हुई उसमें धर्म एवं विनय-पिटक के प्राचीनतम भाग निर्धारित हुये। वैशालीकी द्वितीय बौद्ध-संगीति[2] में छोटे-छोटे नियमों का संकलन हुआ। दश नियमों[3] के अतिरिक्त विनयकी आवृत्ति भी इसमें हुई। अशोक द्वारा बुलाई गई संगीति[4] में तीन पिटकों का निर्माण हुआ और इन्हें ही संक्षेप में त्रिपिटक कहते हैं। इसके बाद

---

(१) इस संगीति का सबसे प्राचीन विवरण चुल्लवग्ग में मिलता है।

(२) वहीं ; दीपवंश और महावंश।

(३) एक नियम सींग में नमक भर कर ले जाने का था। श्रावस्ती में कथित सुत्त-विभंभ के अनुसार यह बात नियम-विरुद्ध है। बुद्ध ने सारिपुत्त को ऐसा करने से मना किया था।

(४) इसके पूर्व बृजिपुत्रों के द्वारा संगीति बुलाई गई थी। उसके बाद अशोक संगीति की बैठक हुई। स्थविश्वादियों के सम्प्रदाय को छोड़ कर और किसी सम्प्रदायके ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

बौद्ध-साहित्य की रचना संस्कृत में भी हुई। हम पाली और संस्कृत दोनों पर अलग-अलग विचार करेंगे।

पाली-साहित्यमें बुद्ध-वचनों के छः प्रकार के विभाग किये गये हैं। डाक्टर वेणीमाधव वरुआके ये विभाग निम्नलिखित है—(क) उपदेश और आदेश के अनुसार बुद्ध-वचन दो प्रकार के हैं : धर्म और विनय ; (ख) काल पर्याय-क्रम से तीन प्रकार के हैं : प्रथम (बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् पहले-पहल निकले हुए वाक्य), अन्तिम (मृत्यु-काल के उपदेश) और मध्यम (अर्थात् इन दोनों के बीच समस्त जीवन के दिये हुये उपदेश) ; (ग) पिटक के अनुसार तीन प्रकार : सुत्त, विनय और अभिधम्म ; (घ) निकाय या आगम के अनुसार पाँच प्रकार : दीग्घ निकाय (दीर्घागम) मज्भिम निकाय (मध्यमागम) ; संयुक्त निकाय (संयुक्तागम) ; अंगुत्तर निकाय (एकोत्तरागम) खुद्द-निकाय (क्षुद्रकागम) ; (ङ) अंग या श्रेणी के अनुसार नौ प्रकार—सुत्त, गेय्य, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिबुत्तक (इन्युक्तक), अब्भुत धम्म (अद्भुत धर्म), वेदल्ल (वेदल्य) ; (च) पाठ या परिच्छेद गणना के अनुसार ८४००० धर्मस्कन्ध।

बौद्ध-धर्म का प्राचीनतम वाङ्मय विनय और धर्म था जो अब विनय-पिटक और सुत्त-पिटक के अन्तर्गत है। अशोक-कालीन कथावत्थु (जिसकी रचना तिस्स ने की थी) में अठारह सम्प्रदयायों के मुकाबिले में थेरवाद का समर्थन किया गया है। थेरवाद का सब वाङ्मय पाली में है। त्रिपिटिकमें बुद्धके अमूल्य विचार सुरक्षित हैं। शील-सम्बन्धी शिक्षायें विनय में, चित्त बिषयक उपदेश सूत्र में और प्रज्ञा-सम्बन्धी शिक्षायें अभिधर्म में सुरक्षित हैं। विनय-पिटक में निम्नलिखित ग्रन्थ सुरक्षित हैं—

(१) पाराजिक कण्ड (२) पाचित्तिय कण्ड	विभङ्ग[1] या सुत्त विभङ्ग महा विभङ्ग और भिक्खु विभंग	उनमें से प्रथम के सात और दूसरे के छै अंश हैं, जिनमें प्रत्येक के एक-एक प्रकार के धम्म (नियम) कहे हैं और उनमें पाराजिक और पाचित्तिय मुख्य हैं।
(३) महावग्ग (४) चुल्लवग्ग	खन्दक[2]	महावग्ग में बड़ी शिक्षा और भिक्षुओं के कर्त्तव्य आदि का विवरण है और चुल्लवग्ग में छोटी शिक्षायें जैसे भोजनादि के बाद हाथ धोना इत्यादि हैं।

(५) पारिवार इसमें विनय का सार है और विनय-विषयक प्रश्न हैं। यह बाद का बना हुआ परिशिष्ट ग्रन्थ है। सिंहली-भिक्षु ने इसे विनय-पिटक में जोड़ दिया।

---

(१) सम्पूर्ण विभंग इतिहास-वर्णन शैली में है—बुद्ध उस समय अमुक स्थान अमुक दशा में थे, तब ऐसी घटना हुई, तब उन्होंने ऐसा नियम बनाया। पाराजिक वे अपराध हैं जिनके करने से भिक्षु पतित हो जाते हैं। पाचित्तिय में छोटे अपराधों के प्रायश्चित का विधान है।

(२) इनमें संघ-व्यवस्था के नियम हैं।

सुत्त पिटक में धम्म की वास्तविक शिक्षायें सुरक्षित हैं। इस पिटक में निम्नलिखित पांच निकाय या आगम हैं—

ये नियाय सूत्रों के संग्रह हैं।

(१) दीग्घोनिकाय—जिसमें तीन खन्ध हैं और उनमें से कुछ ३४ लम्बें सुत्त हैं। सुत्र-सिद्ध महापरिनिब्बाण सुत्त इसी में से एक हैं।

(२) मज्झिम-निकाय—जिसमें तीन पञ्चासिका हैं, और उनमें से कुल १५२ मध्यम लम्बाई के सुत्त हैं।

(३) अंगुत्तर-निकाय—जिसमें कुल सुत्त वर्णित विषय कीबढ़ती संख्या (१ से ११ तक) के क्रम से रखे गये हैं।

(४) संयुक्त निकाय—जिसके सुत्त संयुक्त समूहों में अर्थात् विषयवार बाँटें गये हैं।

(५) खुद्दक-निकाय—जिसमें निम्नलिखित १५ छोटे और विविध पुस्तकें हैं—(१) खुद्दक-पाठक (२) धम्म पद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक (५) सुत्त निपात, (६) विमान वत्थु, (७) पेतवत्थु (८) थेरगाथा, (९) थेरीगाथा, (१०) जातक (११) निद्देश, (१२) पटिसंभिदा, (१३ अपदान, (१४) बुद्ध वंश और (१५) चरिया पिटक।

अर्थ कथाओंमें सूत्रके अनेक अर्थ दिये गये हैं। सूत्र उसे कहते हैं जो सूचना दें, जो सुष्ठु भाव से कहा गया हो, जो

---

(१) दिव्यावान चार आगामों-दीर्घ, मध्यम, संयुक्त और एकोत्तर का स्पष्ट उल्लेख है। दिव्यावान सर्वास्तिवाद का ग्रन्थ है। महापंडित सिल्वाँ लेवी ने यह सिद्ध किया हैं कि इस सम्प्रदाय के पास भी क्षुद्रनिकाय नामक आगम वर्तमान था।

फलप्रसवकारी हो, जिससे अर्थ निःसृत हो रहा हो इत्यादि। निकायों में या तो बुद्ध देव के उपदेशों की बात है या इतिहास-सम्वाद के रूप में बातचीत। इस प्रकार बड़ी सरलता के साथ प्रश्नोत्तर छल से बुद्ध गूढ़ से गूढ़ विषयों को समझा देते हैं। खुद्दक-निकाय के उल्लिखित ग्रन्थों में से कुछ तो बहुत प्रसिद्ध हैं—यथा धम्मपद[2] और सुत्त-निपात। ये बौद्ध-धर्म की गीता हैं। उदान उन उक्त भरी उक्तियों को कहते हैं जो आपसे आप मुँह से निकल पड़ी हो। इतिवुतक में बुद्ध की उक्तियों का संग्रह है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से जातक बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और इनमें करीब साढ़े पाँच सौ कहानियों का संग्रह है। जातक[3] की कहानियाँ वास्तबमें बुद्धके पहले की है और संसार के वाङ्मय में जन साधारण की कहानियों का वह सबसे पुराना बड़ा संग्रह है। अपदान=अवदान में ऐतिहासिक शिक्षादायक घटनाओं का वर्णन है। बुद्ध-वंश में पहले २४ बोधि सत्वों और पचीसवें गौतम-बुद्ध के जीवन का संक्षिप्त वृत्तान्त हैं। प्रथम चार निकायों में वर्णन की शैली एक-सी है। कहीं बुद्ध के वजाय सारिपुत्त, महाकस्सप आदि के भी उपदेश हैं। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के लेखों[4] में पंचनेकायिक, पेटकी आदि शब्द पाये जाते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि उस समय पञ्चकायों का निर्माण हो चुका था।

अभिधम्म पिटक का संग्रह अशोक के समय में हुआ था। बौद्ध दर्शन और परिभाषा के समझने में यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी

---

(२) देखिये परिशिष्ट—मूल और उसका हिन्दी अनुवाद।

(३) प्रौस्वोल ने इसका ६ खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

(४) Epigraphica Indica 2, 93; Rhys Davids "Buddhist India" P. 167.

है। महाबोधि वंश की तालिका के अनुसार निम्नलिखित सात ग्रन्थ अभिधम्म-पिटक के अन्तर्गत हैं—

(१) धम्म संगणि (२) विभंग (३) कत्थावत्तु (४) पुग्गल पञ्चत्ति (५) धातु कथा (६) चमक (७) पट्ठान या महा पट्ठान	दार्शनिक और आध्यात्मिक शास्त्रों का सुन्दर विश्लेषण किया गया है।

त्रिपिटक के आधार पर रचित अनु पिटक या अनुपालि ग्रन्थ है और इनमें अधिकांश लंका के भिक्षुओं के लिखे हुए ग्रन्थ हैं। भारत में रचित प्रसिद्ध अनुपालि ग्रन्थ मिलिन्द पण्ण-हो है। इसकी प्रतिष्ठा हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदायों में है। इसका विश्वके वार्तालाप-साहित्यमें विशिष्ट स्थान है। नेतिप्रकरण (नेतिगंध या नेति) इस प्रकारकी दूसरी रचना है, जिसका निर्माण भारत वर्ष में हुआ। इशमें बुद्ध देव की शिक्षाओं का क्रमबद्ध विवरण दिया गया है। बुद्ध के शिष्य महाकच्चायन को इसका कर्त्ता माना गया है। पाँचवीं शताब्दी में मगधका बुद्ध-घोष लंका गया और वहाँ अशोकके पुत्र महेन्द्र द्वारा मूल पालीसे अनुवादित जो सिंह की अट्ठकथायें थीं, उनके आधार पर फिर पाली अट्ठकथायें लिखीं। उसके बचे हुये कामको फिर बुद्ध दत्त, धम्मपाल, महानामा, नव मोग्गलान और चुल्लु बुद्ध-घोष ने पूरा किया। बुद्ध-घोष बोधगया के निकट के रहने वाले थे। ये श्रेष्ठ कोटि के भाष्यकार थे। इनके लिखे हुये म्निोक्त ग्रन्थ हैं—बिसुद्धि मग्गो, समन्त, पासादिका। (विनय-पिटक), सुमंगल विलासिनी

(संयुक्त), मनोरथ पूरनी (अंगुत्तर) केश्वा वितरणी (पालि) इत्यादि। बौद्ध होने के बाद ये गया से लंका गये थे। इनके बाद भी लंका में बहुत ग्रन्थों का निर्माण हुआ।

बुद्ध का आदेश था कि उनके अनुयायी उनकी शिक्षाओं को अपनी-अपनी भाषा में कहें सुनें। अतः यह सम्भव है कि प्रत्येक बाद का वाङ्मय अपने प्रान्त की भाषा में रहा होगा। सर्वास्तिवाद प्रसिद्ध सम्प्रदाय था और वास्तव में तीन सर्वास्तिवाद थे।

(क) मगध का सर्वास्तिवाद—

(ख) मौर्य-सम्राज्य के पतन काल में आर्य-सर्वास्तिवाद मथुरा में था। उनके ग्रन्थ संस्कृत में थे। अशोकावादान उन्हीं की पुस्तक है।

(ग) कनिष्क के समय का मूल-सर्वास्तिवाद। यह गान्धार और काश्मीर में प्रचलित था। मूल-सर्वास्तिवादियों के पारस्परिक मतभेद को मिटाने के लिये चतुर्थ बौद्ध संगीति में महा विभाषा नामक त्रिपिटक बड़ा भाष्य तैयार हुआ था। इसीसे ये लोग वैभाषिक कहलाये थे।

महायान सम्प्रदाय के विकासके साथ साथ संस्कृत में भी बोद्ध-ग्रन्थों का निर्माण होने लगा। केवल त्रिपिटक ही नहीं बल्कि नाटक, काव्य और स्तोत्र भी संस्कृत में लिखे जाने लगे। प्रसिद्ध बौद्ध कवि एवं दार्शनिक अश्वघोष का "बुद्ध चरित" एवं "सोदरानन्द" संस्कृत काव्य के भूषण हैं। इसके अतिरिक्त वज्रसूची नामक उनके एक ग्रन्थ में जाति या वर्ण व्यवस्था को अस्वाभाविक बतलाया गया है। मातृचेत का "अध्यशतकं" भी संस्कृत में ही है। हीनयान का 'महावस्तु' महासांधिक सम्प्रदाय की लोकोत्तरवादी शाखाका विनय-पिटिक है। सारी पुस्तक

मिश्र संस्कृत में लिखी गई है। ललित-विस्तार महायान सम्प्रदाय का ग्रन्थ है।

बुद्धत्व प्राप्त के तीन मार्ग बतलाये गये हैं—अर्हतयान, बुद्धयान, और सम्मासम्बुद्ध-यान। नागार्जुन ने प्रथम दो यानों को हीन कह कर तीसरे यान की प्रशंसा की और उसे महायान कहा। उस महायान की प्रशंसा में नये "सूत्र" संस्कृत में बनाये गये। उनमें प्रसिद्ध सूत्र हैं—रत्नकूट-सूत्र जो तिब्बती अनुवाद में पाये जाते हैं, बैमुल्य-सूत्र (ललित विस्तार), जो नेपाल में पाये गये और सद्धर्मापुण्डरीक, करुणापुण्डरीक और प्रज्ञापारमितासूत्र इत्यादि। अवदान-साहित्य में बुद्ध-देव के पूर्ववर्ती जन्मों की उल्लेखयोग्य घटनाओं का निबन्धन होता है। इनमें कल्पद्रुमावदानमाला, रत्नावदानमाला, अशोकावदानमाला इत्यादि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उपगुप्त और अशोक की ३४ कहानियों की पुस्तक है 'भद्रकन्यावदान'। बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का गुण गान करनेवाला एक प्रसिद्ध महायान "अवलोकितेश्वर-गुण-काण्ड" नामक पुस्तक है।

इनके अतिरिक्त दार्शनिक महायान सूत्र भी हैं। सबसे महत्वपूर्ण हैं प्रज्ञापारमितायें। इनका प्रतिपाद्य विषय है बोधिसत्व की छै प्रकार की पारमिता या पूर्णता और विशेष भाव से प्रज्ञा या ज्ञान की पूर्णता। जिस प्रकार प्रज्ञा पारमितायें शून्यवाद का प्रचार करती हैं, उसी प्रकार सद्धर्म लंकावतारसूत्र विज्ञानवाद का। महायान के प्रसिद्ध आचार्य थे अश्वघोष, मातृचेत, आर्य सूर, नागार्जुन, आर्यदेव, बसुबन्धु, असंग इत्यादि। कुमारजीव द्वारा किये बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद अब भी वहाँ सुरक्षित है। तिब्बत में बहुत से संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद पाये गये हैं। तिब्बत में सातवीं-आठवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म पहुँचा था। वहाँ बौद्ध-ग्रन्थ दो भागों में विभक्त

किये गये—कैंजुर और तैंजुर। प्रथम में मूल ग्रन्थों के अनुवाद हैं और दूसरे में व्याख्या-परक ग्रन्थ और व्यवहार सम्बन्धी पुस्तिकायें हैं। कैंजुर के सात विभाग हैं—विनय, प्रज्ञापारमिता, अवतंसक, रत्नकूट, निर्वाण, सूत्र और तंत्र। ये सभी संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद हैं। इस प्रकार नेपाल, चीन, कोरिया और जापान में आनेकानेक बौद्ध ग्रन्थ सुरक्षित हैं। चीनी यात्री हुयेन संग महायान सूत्र के २२४ ग्रन्थ, अभिधर्म के १६२, विनय और अभिधर्म जातीय १४; महासांघिक के इस श्रेणी के १५, मह-शास्त्रक सम्प्रदाय २२, काश्यपीय के १७, धर्मगुप्त सम्प्रदायके ४२ और सर्वास्तिवाद के ६७ ग्रन्थ अपने साथ चीन ले गये। इनके द्वारा वहाँ भी बौद्-सम्प्रदाय के अनेकानेक ग्रन्थों का संकलन हुआ। इन समस्त उद्यमों से हम बौद्धों के संस्कृत साहित्य की विशालता का पता लगा सकते हैं।

चीन में (षष्ठ शताब्दी) अवतंसक सम्प्रदाय का उदय हुआ। और इसका और जापान के केगन सम्प्रदाय का सर्व-मान्य-सूत्र बुद्धावतंसक है। इसकी चर्चा महाव्युत्पत्ति नामक बौद्ध-कोष में हुई है। चीनी परम्परा के अनुसार ६ अवतंसक सूत्र थे। गण्डव्यूहु नामक महायान सूत्र चीनी अनुवाद से मिलता है। जिस प्रकार प्रज्ञापारमितायें शून्यवादका प्रचार करती हैं उसी प्रकार सद्धर्म लंकावतार-सूत्र विज्ञानवाद का। इसके अतिरिद्ध अनेकानेक बौद्धों का स्तोत्र-साहित्य भी पाया जाता है। धारणी मंत्रों की पुस्तकें हैं।

वज्रयान तान्त्रिक बौद्ध मत या बौद्ध वाम मार्ग का नाम है जो आधुनिक काल में तिब्बत और मंगोलिया में प्रचलित है। तांत्रिक बौद्ध-मत का प्रथम ग्रन्थ 'आर्य मंजु श्री मूलकल्प' है और इसकी गिनती वैपुल्य-सूत्रों में है। वाम प्रवृति महायान

में ही प्रारम्भ हुई। फिर गुह्य समाज या तथागत-गुह्य या अष्टादश पटल नामक ग्रन्थ बने जिनमें पहले पहल वज्रयान का नाम है। उसके बाद साँतवीं-आठवी-नौवीं शताब्दियों में चौरासी सिद्ध हुये[१]। उनमें गुह्यसिद्ध के लेखक पद्मवज्र, उनके समकालीन ललितवज्र, कम्बलपा, कक्कूरिपा; पद्मवज्र के शिष्य अनंग वज्र, उसके शिष्य उड्डियान के राजा इन्द्रभूति, पद्म-संभव और शान्तिरक्षित के नाम तिब्बती वाङ्मय में प्रसिद्ध हैं। बौद्ध-साहित्य में मंत्रों का समावेश कैसे हुआ, इस प्रश्न पर भी कुछ कह देना आवश्यक है। पाली ब्रह्मजाल सुत्त से ज्ञात होता है कि बुद्ध के समय में भी शान्ति-सौभाग्य के लिये पूजा प्रकरण प्रचलित थे। बुद्ध ने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया था किन्तु उनके काल कवलित होने के बाद अलौकिक गुण वाले बुद्ध की सृष्टि का उपक्रम बढ़ने लगा। स्थविरवादियों ने "अटानाटीय सुत्र"[२] से इसे प्रारम्भ किया। बाद अठारह प्राचीन बौद्ध सम्प्रदायों ने सूत्रोंमें अद्भुत शक्तियाँ माननी शुरु कीं[३]।

---

(१) देखिये राहुल सांकृत्यायन कृत "पुरातत्व निबन्धावली" और महा-महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री कृत "बौद्ध गान ओ दोहा" (बंगला)

(२)दीघनिकाय, ३२ जिसमें यक्षों और देवताओं से बुद्ध का संवाद वर्णित है।

(३) मंत्रयान काल—सूत्र-रूप में मन्त्र ई० पू० ४००—१०० ई० पू०
धारणी मन्त्र—ई०पू०१००—४०० ई०
यन्त्र-मन्त्र—ई० ४००—७०० ई०

परिशिष्ठ (क)

श्रावस्ती और जेतवन

श्रावस्ती—बुद्धके समयमें श्रावस्ती कोसल की राजधानी थी। इसके सम्बन्ध में त्रिपिटक, अट्ठकथा, फाहियान और यून्-च्वंग के यात्रा-विवरणों, ब्राह्मण और बौद्ध ग्रन्थों तथा जैन-ग्रन्थों में भी बहुत कुछ मिलता है। यह बुद्ध के धर्म-प्रचार का प्रधान केन्द्र था। बुद्ध ने पैंतालीस वर्षावासों में पच्चीस यहीं बिताये और सूत्रों तथा विनयके अधिक भागोंका भी उन्होंने यहीं उपदेश किया। अट्ठकथाके अनुसार चौदहवाँ, तथा इक्कीसवें से चौतालीसवें वर्षावास उन्होंने यहीं बिताये। मज्झिम निकायके सब्बासव सुत्त[1] में श्रावस्ती के नाम करण के विषय में निम्नलिखित बातें हैं—

"सावत्थी (श्रावस्ती) सवत्थ ऋषि की निवासवाली नगरी है, जैसे काकन्दी माकन्दी। यह अक्षर-चिन्तकों वैमाकरणों का मत है। अर्थकथा चार्य कहते हैं—जो कुछ भी मनुष्यों के उपयोग परिभोग हैं, सब यहां हैं, इसलिये इसे सावत्थी (सब्बं अत्थि) कहते हैं" पाली ग्रन्थों म कितनी जगहों पर श्रावस्ती की दूसरे नगरों से दूरी थी उल्लिखित है। "राजगृह कपिलवस्तु से साठ योजन, श्रावस्ती पन्द्रह योजन। बुद्ध, राजगृह से पैंतालीस योजन आकर श्रावस्ती में विहरते थे"[2]। यह साकेत से छै योजन था। श्रावस्ती अचिरवती (राप्ती) नदी के तट पर

(१) १।१।२

(२) मज्झिम निकाय-अट्ठकथा १।३।४

थी[3]। यह एक बड़ा नगर था। यहां अधिक संख्या बौद्धों की थी। श्रावस्ती में मुख्यतः चार दरवाजे थे—जिनमें तीन तो उत्तर पूर्व और एक दक्षिण दरवाजों के नाम से प्रसिद्ध था। इनमेंसे जेतवनसे नगरके आनेका दरवाजा दक्षिण द्वार था। पूर्वाराम पूरब दरवाजे के सामने था। इसके अतिरिक्त एक केवट द्वार का भी उल्लेज मिलता है।

बुद्ध जब उत्तर दरवाजे की ओर जाते थे तब लोग समझ लेते थे कि अब वे विचरण के लिये जा रहे हैं। पूरब का दरवाजा बहुत ही महत्त्व पूर्ण था क्योंकि इसके बाहर ही पूर्वाराम था। एकबार आनन्द श्रावस्ती में भिक्षा करके पूर्वाराम को आ रहे थे। उसी समय राजा प्रसेनजित् अपने हाथी पर सवार हो नगर से बाहर निकला और उसने पूर्वद्वार और पूर्वाराम के बीच ही में कहीं पर आनन्द को देखा। उसने आनन्द को वहां से अचिरावती के तट पर चलने की प्रार्थना की। बुद्ध सदा ही दक्षिण दरवाजेसे नगरमें प्रवेश कर, फिर पूर्वद्वार से निकल कर पूर्वाराममें जाते थे। जेतवन जाने का रास्ता दक्षिणद्वार था। श्रावस्तीमें राजकाराम, राजप्रासाद, अनाथपिण्डक और विशाखा के घर, राज-कहचरी, बाजार इत्यादि मुख्य स्थान थे।

राजकारामके विषयमें धम्पपदट्ठकथामें इस प्रकार कहा गया है—"बौद्ध भिक्षुणियों में सर्व श्रेष्ठा उत्पलवर्णा एक समय चारिकाके बाद अन्धवनमें वास कर रही थी। उस समय तक भिक्षुणियों के लिये अरण्यवास निषिद्ध नहीं ठहराया गया था। उत्पलवर्णा पर जासक्त उसके मामाके पुत्र नन्द ने उस पर बलात्कार किया! भगवान ने इस पर राजा प्रसेनजितसे

(३, लहावग्ग-चीवश्वखन्ध, ३२७

नगर के भीतर भिक्षुणी-संघ के लिये सिवास-स्थान बनाने को कहा। राजा ने नगर में एक तरफ आराम बनवा दिया। उसके बाद भिक्षुणियाँ नगर के भीतर ही वास करती थीं" (४।१। २३७-३८)। मज्झिम निकायमें इस प्रकार लिखा है—"महाप्रजापती गौतमी ने पाँच सौ भिक्षुणियोंकी जमातके साथ जेतवन में जाकर भगवान से भिक्षुणियों को उपदेश देनेके लिये प्रर्थाना की। भगवानने इस पर नन्दक को उपदेश देने के लिये राजकाराम भेजा।" (३।५।४)।

जेतवन:—यह बौद्ध-धर्म के अत्यन्त पवित्र स्थानों में से है। यह श्रावस्ती से दक्षिण तरफ था। त्रिपिटक में सुरक्षित बुद्ध के उपदेशों में सबसे अधिक जेतवन में हुये हैं। मज्झिम निकाय के १५० सुत्तों में ६५ जेतवन में ही कहे गये; संयुक्त और अंगुत्तर निकाय में तो तीन चतुर्थांश जेतवन में कहे गये हैं। भिक्षुओं के शिक्षापदों में भी अधिकतर यहीं दिये गये हैं याने ३५० शिक्षापदों में २६४ यहीं दिये गये। चुल्लुवग्ग में इसकी कथा है।

अनाथपिण्डक ने राजकुमार जेतसे किस प्रकार उसका उपवन लिया, यह पहले लिखा जा चुका है। उसने वहाँ विहार, परिवेण, कोठे, उपस्थान शाला, कप्पिथ-कुटी, पाखाना, पेशाबखाना, चंक्रम, चंक्रमणशाला, उदपान, उदपानशाला, जंताघर जंतावर-शाला, पुष्करणियाँ और मण्डप बनवाये। भगवान जेतवन में पहुँचे। गृहपतिने उन्हें खाद्य-भोज्य से अपने हाथों तर्पित कर, जेतवनको आगत अनागत चातुर्दिश संघ के लिये दान किया।

बोधिके पहले भागमें धगवान बुद्धके महान लाभ-सत्कार को देखकर तीर्थिक लोगोंने सोचा, यह इतनी पूजा शील-

समाधि के कारण नहीं है। यह तो इसी भूमि (जेतबन) का माहात्म्य है। यदि हम भी जेतवन के पास अपना आराम बना सकें तो हमें भी लाभ-सत्कार प्राप्त होगा। तीर्थिकों ने अपने सेवकोंसे कहकर एक लाख कार्पापण इकट्ठा किया। फिर राजा को घूस देकर जेतवन के समीप तीर्थिकाराम बनवाने की आज्ञा ले ली। आराम बनाने के समय उन लोगोंने शोरगुल मचाना शुरू किया। बुद्धने गंधकुटी से निकलकर चबुतरे पर आकर आनन्दसे पूछा—ये कौन हैं आनन्द! इतना कोलाहल करते हैं, मानो केवट मछली मार रहे हों। आनन्द ने कहा तीर्थिक जेतवन के समीप तीर्थिकाराम बना रहे हैं। "आनन्द, ये शासनके विरोधी भिक्षु-संघके विहारमें गड़बड़ डालेंगे। राजा से कहकर इन्हें हटा दो। आनन्द भिक्षु-संघ के साथ राजा के पास पहुँचे। घूस खानेके कारण राजा बाहर न निकला। फिर बुद्ध ने सारिपुत्र और मोग्गलान को भेजा किन्तु राजा उनके भी सामने न आये। तब स्वयं बुद्ध भिक्षु-संघ के साथ पहुँचे और वहाँ भोजन के बाद उपदेश देकर कहा—"प्रव्रजितों को आपसमें लड़ाना अच्छा नहीं।" राजाने वहाँ से तीर्थिकों को निकाल दिया और बाद में राजाने वहीं आराम बनवा कर भिक्षु-संघ को अर्पण किया। कहीं-कहीं पर उसीको जेतवन पिट्ठि विहार कहा गया है।

श्रावस्ती या जेतवनमें बुद्ध जहाँ निवास करते उसे ही गंधकुटी कहा जाता। यह स्थान अपने समयमें सर्वोत्तम रहा होगा। भारहुतके स्तूप में जेतवनके चित्रसे इसकी कल्पना हो सकती है। मध्याह्न भोजनोपरान्त उपदेश के बाद बुद्ध गन्धकुटी में चले जाते थे। गन्धकुटी का परिवेण बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान था। वहाँ गृहस्थों के लिये भी उपदेश होता था। अनाथ पिण्डकके पहली बार लाये हुये कार्पापणोंसे जेतवनका

थोड़ा-सा हिस्सा बिना ढका ही रह गया जिसे कुमार जेतने अपने लिये माँग लिया और वहाँ अपने दाम से कोठा बनवाया। इसका नाम जेतवनवहिद्वार कोष्ठक पड़ा। यह गंधकुटी के सामने था। द्वार कोष्ठक के सामने जेतवन-पोक्खरणी थी। एक बार अकाल पड़ने पर बुद्धने वहाँ पानी बरसाया था। समीप ही वह स्थान था जहाँ जीतेजी देवदत्त का पृथ्वी में समाना कहा गया है। मरणासन्न देवदत्त को अन्तमें अपने किये का पश्चाताप हुआ था। और वह बुद्ध के दर्शनके लिये गया था किन्तु जेतवन के दरवाजे पर ही उसके प्राण छूट गये।

उपस्थानशाला में भिक्षुओं के बैठने का स्थान था। सायं-कालमें उपदेश देनेके लिये बुद्ध वहीं जाते थे। इसी को धर्म-सभा-मंडल भी कहते थे। यह गंधकुटी के पास थी। सभी कोई शामको यहाँ एकत्रित होते थे। अग्निशाला इत्यादि स्थान भी अलग-अलग थे। तथागत ने जेतवनमें सर्व प्रथम वर्षावास बोधि के चौदहवें वर्ष में किया था। संयुक्त निकायमें राजा प्रसेनजितसे बुद्धकी भेंट होने की बात इस प्रकार है— "भगवान जेतवन में विहरते थे। राजा प्रसेनजित भगवान के पास जा सम्भोदन करके एक तरफ बैठ गया। उसने कहा— "भगवन आजसे मुझे अपना शरणागत उपासक धारण करें।"

पूर्वाराम भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसके चारो तरफ चार दरवाजे थे। वहाँ राजा प्रसेनजित और दूसरे संभ्रान्त व्यक्ति भी उपस्थित होते थे। इसके बनाने में नौ मास लगे थे और मोग्गलान इसके तत्वविधायक थे। पूर्वाराम विशाखाने बनवाया था जिस प्रकार सुदत्त सेठ अनाथ-पिण्डक कहलाया उसी प्रकार विशाखा मिगार माता के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस नाम के पड़ने की कथा पहले लिखी जा चुकी है।

ीर्थकाराम भी एक बड़ा आराम था जिसमें
तक परिव्राजक निवास करते थे। यह
ाहर था। यहाँ बैठकर नाना प्रकार की दार्श-
होती थीं। संयुक्त निकाय (५१।१।३) से पता
है कि सुतुनतीर पर भी भिक्षुओंका कोई विहार था।
ावस्तीका एक प्रसिद्ध स्थान अन्धवन भी था। "काश्यप सम्यक-सम्बुद्ध के चैत्य की मरम्मतके लिये धन एकत्रित कराकर आते हुये यशोधर नामक धर्म भाणक आर्यपुद्गल की आँखें निकालकर, वहाँ (स्वयं) अंधे हुये पाँच सौ चोरों के बसने से.........अन्धवन नाम पड़ा। यहाँ एकान्त प्रिय भिक्षु जाया करते थे।" (संयुक्त निकाय ५।१।१०, भट्ठ-कथा ११४८)।

जिसे कुमार जेतने
ोठा बनवाया।
गंधकुटी के
ी थी।

परिशिष्ट (ख)

भारतवर्ष में बौद्ध खण्डहर एवं प्रसिद्ध स्था

(१) नासिक से प्राय: पाँच मील की दूरी पर पाण्डव गुफा है। उसकी बाईं ओर कितने ही महायान देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। बड़ी चैत्यशाला की छोरमें विशाल बुद्ध प्रतिमा है। एक चैत्यशालाके चैत्य को खोद कर ब्राह्मण देवता की प्रतिमा बनाई गई है।

(२) बेरूल (आधुनिक नाम 'एलोरा') में १२ बौद्ध-गुफायें हैं।

(३) साँची—(क) यह वही स्थान है जहाँ अशोक के पुत्र महेन्द्रसिंह नमें धर्म प्रचारार्थ सदाके लिए प्रस्थान करने के पूर्व कितने ही समय तक रहे थे।

(ख) यहाँ बुद्ध का शुद्धतम धर्म (स्थविर-वाद) मगध छोड़ शताब्दियों तक रहा।

(ग) यहीं तथागत के दो प्रधान शिष्यों सारिपुत्त एवं मोग्गलान की शरीर-अस्थियाँ विशाल सुन्दर स्तूपों में रखी गई थीं। बाद में उसे वहाँ से लन्दन-म्यूजियम में लाया गया। पुनः इसे भारत में लाकर यहाँ रखा गया है। यहाँ के सभी स्तूप देखने योग्य हैं।

(४) कन्नौज—अनेकानेक बुद्ध प्रतिमायें हैं। ऐतिहासिक ध्वंसावशेषके अनेकानेक दृश्य हैं।

(५) सेकिसा—यहाँ अशोक के समय का एक स्तूप है।

यहाँका राजा उदयन बुद्ध के समय
देश की राजधानी थी। यहाँ बुद्धका
ध्वंसावशेष अब भी हैं। बुद्ध वहाँ घोषिता-
वहाँ पर खुदाईका काम चल रहा है।
ऊपरी चट्टानों पर कितनी छोटी-छोटी मूर्त्तियाँ खुदी
हैं। वहाँ पुराने स्तूप का ध्वंस है।

(ख) गढ़वा—पुरानी कौशाम्बी में बुद्ध के तीन 'आराम' थे। कहा जाता है कि उदयन की रानी बुद्ध की एक श्रद्धालु-उपासिका श्यामावती सखियों के साथ अपनी सौत मागन्दी द्वारा जलवा दी गई थी। श्यामावती बुद्ध के ८० प्रसिद्ध शिष्य-शिष्याओं में से एक थी।

(७) बनारस—बौद्ध-वाङ्मय में सारनाथ बनारस को ऋषिपतन कहा जाता है। वहीं बुद्ध ने धर्म-चक्र प्रवर्त्तन किया।

(८) राजगृह—(क) बौद्ध वाङ्मय में राजगृह के वेणुवन, सप्तपर्णी गुहा, पिप्पली गुहा, वैभार, तपोदा इत्यादि स्थानों का उल्लेख है।

(ख) तथागत ने वेणुवनको संघके लिए पहला आराम पाया था।

(ग) बुद्ध का एक प्रधान शिष्य महाकश्यप ने पिप्पली गुहा को अपने लिए प्रिय स्थान बनाया था।

(घ) गृद्ध-कूट पर तथागतकी सेवामें जाने के लिये राज-मार्ग को मगध-सम्राट् बिम्बिसार ने बनाया था।

(ङ) यहीं बौद्धों की प्रथम-संगीति हुई थी।

(९) सिलाव (पटना)—ब्रह्मजाल सुत्त के उपदेश के स्थान अम्बलट्ठिका तथा महाकाश्यप के प्रव्रज्या-स्थान बहुपुत्रक-चैत्य में से कोई एक है।

वहाँ भगवानदास के हाते में ...
का नया शिला लेख है। जिसे कुमार जेतने

(१०) नालन्दा—प्रसिद्ध विश्वविद्यालय कोठा बनवाया।
एवं दर्शनका केन्द्र था। वहाँ का स्तूप अभी भी गंधकुटी के
ध्वंसावशेष देखने योग्य है। कई शताब्दियों तक यह थी।
राष्ट्रीय विद्या-केन्द्र बना रहा।

(११) वैशाली—(क) इसके समीप बखरा में अशोक स्तम्भ है जहाँ किसी समय महावन की कुटागार शाला थी जिसमें तथागत ने कितनी बार बास किया था।

(ख) जगत-प्रसिद्ध प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का सूर्योदय यहीं हुआ था।

(ग) वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अम्बपाली ने अपने आम्रवन में भगवान बुद्ध का स्वागत किया था।

(१२) कुशीनारा—गोरखपुर जिले में हैं। बुद्ध का महापरिनिर्वाण यहीं हुआ था।

(१३) लुम्बिनी—इसी स्थान को तथागत ने अपने जन्म से पवित्र किया था। उस स्थान पर अब रुम्मिन देई गाँव है। अशोक ने यहाँ आकर पूजा की थी।

(१४) श्रावस्ती—कोशल देश की राजधानी थी और यहीं बुद्ध को जेतवन दान मिला था।

(१५) बोधगया—यहाँ बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था।

(१६) रामपुरवा—(क) मोतिहारी जिले में है। यहाँ दो अशोक स्तम्भ हैं।

(ख) समीप में ही पिपरिया गाँव है। पिप्पली वन के मोरियोंने भी कुशीनारा में भगवान बुद्धकी धातुमें एक

इस ग्रंथ के लेखक

श्री युत प्रो० राधाकृष्ण चौधरी एम० ए०, पुराणु०

लिखित अन्यान्य पुस्तकों की सूची—

१. Political History of Japan.
२. Some Topics from Ancient Indian History.
३. ब्रिटेन का वैधानिक इतिहास।
४. ब्रिटेन की शासन-पद्धति।
५. भारत में स्थानीय शासन।
   (श्री युत् तारकेश्वरनाथ सिंह एम्० ए० के सहयोग से लि
६. विश्व-इतिहास की रूप-रेखा।
७. A Short study in Kautilya's Arthashastra
८. History of Bihar.
९. Law & justice in Ancient India.
१०. भारतीय इतिहास का वैज्ञानिक अनुशीलन।
११. मैथिली निबंधावली।

नि. प्र. सं० — ७ से ११ तक की पुस्तकें प्रेस में हैं और पुस्तकें तो अप्राप्य हैं।